बीएड प्रथम वर्ष

संकाय और विषयों को समझना

(UNDERSTANDING DISCIPLINES AND SUBJECTS)

GEDE-05

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Lata Malviya
   Professor
   IES University, Bhopal (M.P.)

2. Dr. Meena Barse
   Assistant Professor
   Sant Hirdaram Girls College, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Chitra Sharma
   Principal
   Ever Green Education Society, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Jyoti S. Parashar
   Assistant Professor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

4. Dr. Lata Malviya
   Professor
   IES University, Bhopal (M.P.)

5. Dr. Meena Barse
   Assistant Professor
   Sant Hirdaram Girls College, Bhopal (M.P.)

6. Dr. Chitra Sharma
   Principal
   Ever Green Education Society, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITERS

Dr Tejaswinee Anil Kadam, Ex-Professor, School of Education Yashwantrao Chavan Maharashtra Open University, Nashik
Units: (1-2)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

संकाय और विषयों को समझना

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 संकाय और संकायात्मक ज्ञान विद्याशाखा : अर्थ एवं परिभाषाएं विद्याशाखा : उदय, विकास एवं स्वरूप विद्याशाखा की विशेषताएं विद्याशाखाओं की स्थापना का गठन करने की प्रणाली या पद्धति तथा जांच–पड़ताल एवं वैधता, ज्ञान संकल्पना, विद्याशाखा संरचना, ज्ञान की तार्किकता एवं दांव; संकाय या विद्याशाखीय ज्ञान का विकास : सामाजिक–राजनीतिक विश्लेषण संकाय या विद्याशाखीय ज्ञान के रूप में प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, गणित और भाषा का ऐतिहासिक विकास तथा सामाजिक–राजनीतिक विश्लेषण विद्याशाखीय ज्ञान की आलोचनाएं/समीक्षा विद्याशाखीय ज्ञान : विशेषताएं सार्वभौमिकता, वस्तुनिष्ठता, मूल्य तटस्थता, संस्कृति अवैयक्तिकता पृच्छा क्षमता एवं प्रमाण विद्याशाखीय ज्ञान और विद्यालयी पाठ्यचर्या विद्यालयी विषय ज्ञान की विद्याशाखीय प्रकृति : आलोचनात्मक आकलन शैक्षिक प्रवाह/मार्ग व्यावसायिक मार्ग/प्रवाह	**इकाई 1** : शैक्षिक संकाय : प्रकृति, विकास एवं विशेषताएं **(पृष्ठ 3–62)**
इकाई–2 विद्यालयी विषयों में ज्ञान का संगठन : विद्याशाखीय दिशा निर्देश विषयज्ञान की विभिन्न प्रकृतियों द्वारा पाठ्यक्रम/ज्ञान का निर्माण उदयोन्मुख प्रवाह में विद्याशाखीय ज्ञान विद्यालयी ज्ञान के विभिन्न कार्य	**इकाई 2** : ज्ञान : विद्यालयी विषयों में ज्ञान का संगठन, प्रकार, पाठ्यक्रम **(पृष्ठ 63–137)**

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1 शैक्षिक संकाय : प्रकृति, विकास एवं विशेषताएं **3–62**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 संकाय और संकायात्मक ज्ञान
1.2.1 विद्याशाखा : अर्थ एवं परिभाषाएं
1.2.2 विद्याशाखा : उदय, विकास एवं स्वरूप
1.2.3 विद्याशाखा की विशेषताएं
1.2.4 विद्याशाखाओं की स्थापना का गठन करने की प्रणाली या पद्धति तथा जांच–पड़ताल एवं वैधता
1.2.5 ज्ञान संकल्पना
1.2.6 विद्याशाखा संरचना, ज्ञान की तार्किकता एवं दांव
1.3 संकाय या विद्याशाखीय ज्ञान का विकास : सामाजिक–राजनीतिक विश्लेषण
1.3.1 संकाय या विद्याशाखीय ज्ञान के रूप में प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, गणित और भाषा का ऐतिहासिक विकास तथा सामाजिक–राजनीतिक विश्लेषण
1.3.2 विद्याशाखीय ज्ञान की आलोचनाएं/समीक्षा
1.4 विद्याशाखीय ज्ञान : विशेषताएं
1.4.1 सार्वभौमिकता
1.4.2 वस्तुनिष्ठता
1.4.3 मूल्य तटस्थता
1.4.4 संस्कृति
1.4.5 अवैयक्तिकता
1.4.6 पृच्छा क्षमता एवं प्रमाण
1.5 विद्याशाखीय ज्ञान और विद्यालयी पाठ्यचर्या
1.5.1 विद्यालयी विषय ज्ञान की विद्याशाखीय प्रकृति : आलोचनात्मक आकलन
1.5.2 शैक्षिक प्रवाह/मार्ग
1.5.3 व्यावसायिक मार्ग/प्रवाह
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 ज्ञान : विद्यालयी विषयों में ज्ञान का संगठन, प्रकार, पाठ्यक्रम **63–137**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 विद्यालयी विषयों में ज्ञान का संगठन : विद्याशाखीय दिशा निर्देश
2.3 विषयज्ञान की विभिन्न प्रकृतियों द्वारा पाठ्यक्रम/ज्ञान का निर्माण
2.4 उदयोन्मुख प्रवाह में विद्याशाखीय ज्ञान
2.5 विद्यालयी ज्ञान के विभिन्न कार्य

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'संकाय और विषयों को समझना' का लेखन विश्वविद्यालय के बी.एड. प्रथम वर्ष के निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार किया गया है।

शिक्षा का मानव जीवन के लिए बहुत अधिक महत्व है। यह मानव के मस्तिष्क को विकसित करने का कार्य करती है। शिक्षा किसी भी मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक विकास में अत्यंत सहायक सिद्ध होती है। शिक्षा प्रक्रिया के तीन मुख्य घटक होते हैं– प्रदाता, ज्ञेय और ज्ञाता। प्रदाता जो ज्ञान प्रदान करता है अर्थात शिक्षक। ज्ञेय अर्थात ज्ञान और ज्ञाता अर्थात ज्ञान प्राप्त करने वाला विद्यार्थी। ज्ञान की प्रक्रिया दाता से ज्ञाता तक चलती है। विद्यार्थियों के लिए ज्ञान प्राप्ति कराने में संकाय या विद्याशाखाओं का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

ज्ञान स्वभावतः सर्वत्र व्यापक होता है। ज्ञान रूपी वृक्ष से ही अनेक विद्याशाखाओं का निर्माण किया गया है, जैसे– मानवशास्त्र, राज्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र आदि। ज्ञान के इस विस्तृत रूप और संग्रहण से ज्ञान को सुव्यवस्थित रूप से संगठित किया गया है। उसमें से ही विभिन्न विद्याशाखाओं का निर्माण हुआ। कक्षा कक्ष में जब कोई शिक्षक विषय का अध्ययन कराता है, तो वह विषय स्वतंत्र रूप में न होकर विभिन्न विद्याशाखाओं से जुड़ा होता है।

प्रस्तुत पुस्तक में संकाय और विषयों की समझ से संबंधित सभी अहम पहलुओं का सांगोपांग अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक अध्याय के आरंभ में संदर्भित विषय का परिचय व उद्देश्य स्पष्ट कर दिया गया है। अध्याय के बीच–बीच में शिक्षार्थियों के स्व–मूल्यांकन के लिए 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तंभ के तहत वैकल्पिक प्रश्न भी दिए गए हैं।

अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पाठ्यक्रम को दो इकाइयों में समायोजित किया गया है। इन इकाइयों का विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई में संकाय और संकायात्मक या विद्याशाखीय ज्ञान, विद्याशाखीय ज्ञान के विकास का सामाजिक–राजनीतिक विश्लेषण, विद्याशाखीय ज्ञान की विशेषताओं का विवेचन किया गया है। इसके साथ ही विद्याशाखीय ज्ञान एवं विद्यालयी विषयों के परस्पर संबंध का अध्ययन किया गया है।

दूसरी इकाई में विद्यालयी विषयों में ज्ञान का संगठन, विद्याशाखीय दिशा–निर्देश, विषय ज्ञान की विभिन्न प्रकृतियों द्वारा पाठयक्रम या ज्ञान का निर्माण, उदयोन्मुख प्रवाह में विद्याशाखीय ज्ञान का अध्ययन किया गया है। साथ ही विद्यालयी ज्ञान के विभिन्न कार्यों का निरूपण किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में संकाय और विषयों की समझ से संबंधित आवश्यक पहलुओं का विश्लेषण सरल एवं रोचक रूप से किया गया है। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक अध्येताओं का ज्ञानवर्धन कर उनके मार्गदर्शन में सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 शैक्षिक संकाय : प्रकृति, विकास एवं विशेषताएं

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 संकाय और संकायात्मक ज्ञान
 1.2.1 विद्याशाखा : अर्थ एवं परिभाषाएं
 1.2.2 विद्याशाखा : उदय, विकास एवं स्वरूप
 1.2.3 विद्याशाखा की विशेषताएं
 1.2.4 विद्याशाखाओं की स्थापना का गठन करने की प्रणाली या पद्धति तथा जांच–पड़ताल एवं वैधता
 1.2.5 ज्ञान संकल्पना
 1.2.6 विद्याशाखा संरचना, ज्ञान की तार्किकता एवं दांव
1.3 संकाय या विद्याशाखीय ज्ञान का विकास : सामाजिक–राजनीतिक विश्लेषण
 1.3.1 संकाय या विद्याशाखीय ज्ञान के रूप में प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, गणित और भाषा का ऐतिहासिक विकास तथा सामाजिक–राजनीतिक विश्लेषण
 1.3.2 विद्याशाखीय ज्ञान की आलोचनाएं/समीक्षा
1.4 विद्याशाखीय ज्ञान : विशेषताएं
 1.4.1 सार्वभौमिकता
 1.4.2 वस्तुनिष्ठता
 1.4.3 मूल्य तटस्थता
 1.4.4 संस्कृति
 1.4.5 अवैयक्तिकता
 1.4.6 पृच्छा क्षमता एवं प्रमाण
1.5 विद्याशाखीय ज्ञान और विद्यालयी पाठ्यचर्या
 1.5.1 विद्यालयी विषय ज्ञान की विद्याशाखीय प्रकृति : आलोचनात्मक आकलन
 1.5.2 शैक्षिक प्रवाह/मार्ग
 1.5.3 व्यावसायिक मार्ग/प्रवाह
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

सामान्यतः शिक्षा प्रक्रिया में तीन प्रमुख घटक होते हैं– दाता, ज्ञेय और ज्ञाता। दाता यानी ज्ञान देने वाला– अध्यापक, ज्ञेय यानी ज्ञान और ज्ञाता। आशय या संदेश (जो हम पढ़ाते हैं) यानी लेने वाला– शिष्य/विद्यार्थी। ज्ञान का संक्रमण दाता से ज्ञाता तक होता है। मानववंश के प्रारंभ से ही मानव ने अनेक बातें जान लेने की कोशिश की और इसी तरह ज्ञानकणों का संग्रह करने लगा। उसमें से उसने संस्कृति तैयार की और आने वाली पीढ़ी को यह संस्कृति विरासत के रूप में भेंट दी गई। नई पीढ़ियां इसमें और बढ़ते हुए ज्ञान को आगे लेती गई और इस तरह ज्ञान का संग्रह बढ़ता चला गया।

टिप्पणी

'ज्ञान' यानी वास्तविक घटनाओं का अध्ययन करना। उसके बाद उनका स्मरण करना अत्यावश्यक है। प्लेटो के अनुसार जब ज्ञान की परिभाषा करते हैं तो 3 बातों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। (क) ज्ञान समर्थनिय होना चाहिए। (ख) ज्ञान हमेशा सत्य हो। (ग) ज्ञान हमेशा विश्वास रखने योग्य हो। ज्ञान के 3 महत्वपूर्ण घटक होते हैं– अध्यापक, जानकारी और छात्र।

पीटर ड्रकर (व्यवस्थापन तत्वज्ञ) ने इसे 'आधुनिक ज्ञान का विस्फोट' यह संबोधन दिया। हर 10 सालों में यह ज्ञान दोगुना होता गया। आधुनिक काल में यह 5 वर्षों में ही होने लगा। इसी तरह ज्ञान के संदर्भ एवं संबंध बदलने लगे।

हर प्रकार का ज्ञान देश, काल, परिस्थिति एवं संबंधित व्यक्ति के संदर्भ में होने लगा, जो कालातीत एवं व्यक्ति निरपेक्ष होता है क्योंकि ज्ञान में उस देश, काल एवं वस्तुस्थिति की निर्धारित जानकारी, घटनाएं तथा ऐसी ही कुछ अन्य बातें भी समाविष्ट होती हैं। ज्ञान प्राप्ति हेतु अध्ययन एवं अनुभव की आवश्यकता होती है। संग्रहित किया गया ज्ञान एक व्यक्ति यदि संपूर्ण आयु भी खर्च करे तो भी ज्ञात नहीं हो सकता, वैसे ही उस पर एक आयु में प्रभुत्व भी प्राप्त नहीं कर सकता इसलिए केवल कुछ भाग पर प्रभुत्व पाने हेतु 500 सालों से इस ज्ञान का अलग–अलग संग्रहण किया गया। ज्ञान को वर्गीकृत कर उसके कोष तैयार किए जा सकते हैं, यह विचार विचारवंतों ने तथा तत्वज्ञों ने किया। इस तरह धीरे–धीरे ज्ञान का सर्वसामान्य स्वरूप निर्देशित होता गया एवं विकास की दिशा निश्चित होती गई। जानकारियां प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा, दूसरों की बातें सुनकर तथा वाचन के द्वारा प्राप्त होती हैं परंतु केवल 'जानकारी' ज्ञान नहीं होती।

प्रस्तुत इकाई में संकाय और संकायात्मक या विद्याशाखीय ज्ञान, विद्याशाखीय ज्ञान के विकास का सामाजिक–राजनीतिक विश्लेषण, विद्याशाखीय ज्ञान की विशेषताएं और विद्याशाखीय ज्ञान एवं विद्यालयी विषयों के परस्पर संबंध का अध्ययन किया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- संकाय और विद्याशाखीय ज्ञान से भलीभांति परिचित हो पाएंगे;
- विद्याशाखीय ज्ञान के विकास का सामाजिक–राजनीतिक विश्लेषण कर पाएंगे;
- विद्याशाखीय ज्ञान की विशेषताओं से अवगत हो पाएंगे;
- विद्याशाखीय ज्ञान और विद्यालयी विषयों के परस्पर संबंध को समझ पाएंगे।

1.2 संकाय और संकायात्मक ज्ञान

यहां पर संकाय और संकायात्मक ज्ञान का विवेचन किया जा रहा है।

1.2.1 विद्याशाखा : अर्थ एवं परिभाषा

केवल जानकारी होना 'ज्ञान' नहीं होता, ज्ञान में तत्व, नियम, अपपत्तियां (Theories) आदि को समाविष्ट किया जाता है। ज्ञान पर प्रक्रिया करना तथा निष्कर्ष निकालना, ज्ञान के मूलभूत अंग माने जाते हैं। उसके बाद ज्ञान को वर्गीकृत किया जाता है।

वर्गीकृत किया गया ज्ञान थोड़ा और कम, दूसरे से अलग तथा संदर्भयुक्त होने के कारण उसका अभ्यास करना तथा उस पर प्रभुत्व प्राप्त करना, यह किसी भी व्यक्ति को उसके जीवनकाल में सहज ही हो गया। इतना ही नहीं, बल्कि उसे अधिक से अधिक ग्रहण करने का प्रयास भी सफल होने लगा। प्रत्येक तत्वज्ञ व्यक्ति अपने विचार, प्रयोग, निरीक्षण, मापन तथा अनुमान के आधार पर यह काम करने लगा। इस दृष्टिकोण से ज्ञान का बंटवारा विद्या यानी विद्याशाखा में किया जाने लगा। जैसे– मानव–विषयी ज्ञान–मानव्य विद्या, समाज विषयी ज्ञान– समाज विद्या, अर्थ विषयक या संपत्ति विषयक ज्ञान–अर्थ विद्या।

कोई भी विद्या ज्ञान के अनुशासन का प्रतीक है। ज्ञान में एकसूत्रता, अनुशासन तथा इनका परस्पर संबंध होता है। इनके बिना विद्याओं का विचार नहीं किया जा सकता। इसलिए 300 सालों से तत्वज्ञान, व्याकरण, राजनीति इस तरह संकाय या विद्याशाखाओं का अलग–अलग विचार–विमर्श होने लगा।

उसके बाद के काल में संकाय या विद्याशाखाओं का उदय हुआ। आज भी नई–नई विद्याशाखाओं का निर्माण हो रहा है।

अर्थ

"आशय क्षेत्र, कार्य प्रणाली, प्रशिक्षण एवं शिक्षा इनके बारे में अध्यापनीय पार्श्वभूमि पर होने वाले विशिष्ट अध्यापन योग्य ज्ञान संचय को 'विद्याशाखा' कहते हैं।" वैसे तो विद्याशाखा का अंग्रेजी में पारिभाषिक शब्द है– Discipline, इसका शब्दार्थ के अनुसार कुछ लोग अलग–अलग अर्थ करते हैं, जैसे– अनुशासन, ज्ञानानुशासन।

परिभाषा

संकाय या विद्याशाखा की परिभाषा को इस प्रकार समझा जा सकता है–

"विशिष्ट आशय घटक, क्रिया, घटना और नियम इनकी संरचना को विद्याशाखा कहते हैं।"

"विशिष्ट ज्ञान का क्षेत्र एवं ज्ञान निर्माण करने की विशिष्ट प्रणाली को विद्याशाखा कहते हैं।"

इन व्याख्याओं/परिभाषाओं से एक सर्वसमावेशक परिभाषा है– "विद्याशाखा अभ्यास की एक ऐसी व्यवस्था है, जो ज्ञान के पीढ़ी–दर–पीढ़ी संक्रमित होने में मदद करती है ताकि आशय क्षेत्र, कार्यप्रणाली, प्रशिक्षण, शिक्षा, घटना एवं नियमों के आधार से इस क्षेत्र से अनुसंधान भी सुसाध्य होता है।"

1.2.2 विद्याशाखा : उदय, विकास एवं स्वरूप

ज्ञान स्वभावतः सर्वव्यापक होता है, पहले यह धारणा थी। इन ज्ञान वृक्षों से ही विद्याशाखाएं बनाई गई।

टिप्पणी

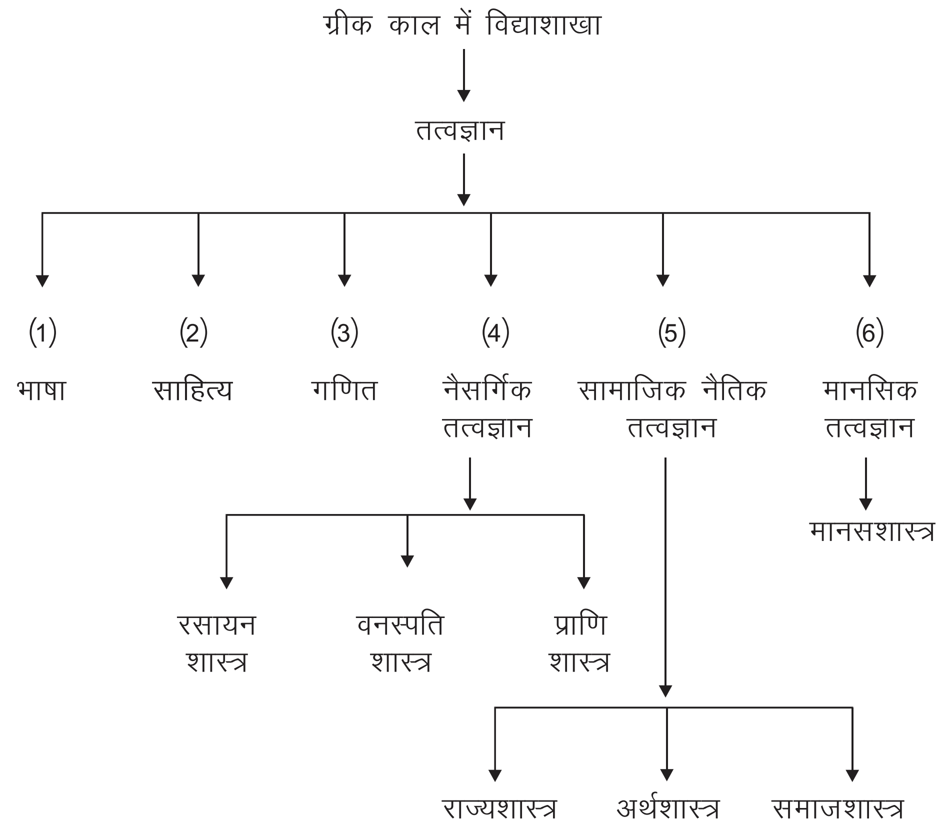

उदय

प्राचीन काल में ग्रीक संस्कृति काल में केवल तत्वज्ञान ही एकमेव विद्याशाखा थी। उसमें से भाषा, साहित्य एवं गणित कुछ काल के बाद अलग हुए। मात्र विज्ञान, रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, प्राणिशास्त्र विद्याशाखाएं नैसर्गिक तत्वज्ञान की उपशाखा में ही समाविष्ट थी। वैसे ही राज्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि सभी समाजशास्त्र नैतिक तत्वज्ञान इस उपशाखा में समाहित थे।

इस तरह ज्ञान का पुनरुज्जीवन होता रहा। धीरे–धीरे समाज में धार्मिक सुधार भी होने लगे। शिक्षा के द्वारा नये–नये वैज्ञानिक शोध होने लगे। तंत्रविज्ञान की प्रगति के कारण शिक्षा एवं अन्य क्षेत्र व विषयों की समझ में बदलाव आने लगे। छपाई के तंत्र तथा यंत्रों का शोध एवं निर्माण होकर सभी जगह ज्ञान का संग्रहण करना आसान हुआ। ज्ञान का निर्माण ज्ञान का वितरण प्रसार यह क्रियाएं सहजता से मानव ने साध्य की।

ज्ञान के इस विस्तार से तथा संग्रह से ज्ञान का सुव्यवस्थित संगठन करना आसान हुआ। इस प्रकार ग्रीक संस्कृति काल में विद्याशाखाओं के निर्माण की प्रक्रिया का विकास होकर विद्याशाखाओं का वर्गीकरण करना आसान हुआ। उसमें से ही विद्याशाखाओं का उदय होने लगा।

विकास एवं स्वरूप : फ्रांसिस बेकन– इनकी उद्गामी पद्धति के द्वारा सामाजिक जीवन व भौतिक, नैसर्गिक पर्यावरण आदि के अभ्यास में अमूलाग्र बदलाव आने लगे। विज्ञान, रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, प्राणिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र ऐसे भौतिक निसर्गशास्त्रों का निर्माण हुआ। वैसे ही मानवशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राज्यशास्त्र ये तत्वज्ञान से अलग हुए।

आज जो विद्याशाखाएं उपलब्ध हैं उनको तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है–

विद्याशाखाओं का वर्गीकरण

भौतिक एवं नैसर्गिक शास्त्र

- पर्यावरण के अज्ञात परस्पर संबंधों का शोध
- घटने वाली घटना, प्रक्रिया, इनका वैज्ञानिक शोध आदि

सामाजिकशास्त्र

- गणित यह पूर्णतः मानव रचित, अमूर्त प्रक्रिया है
- मानव का Invention
- शिक्षाशास्त्र आदि

मानव्य विद्याशास्त्र

- विभिन्न भाषाएं
- ललितकलाएं आदि

आकृति में निर्देशित किये गये अनुसार विद्याशाखाएं समावेशित होती गई। विद्याशाखाएं उपशाखाओं से बनती हैं। अनुसंधान/शोध करने के कारण मूल (Basic) विद्याशाखाएं विकसित होकर नये रूप में दिखती जाती हैं। यह प्रक्रिया होते समय मूल शाखा (Basic) और नई विद्याशाखा (New Discipline) एक–दूसरे की आंतर–विद्याशाखाएं (Interdisciplines) होती हैं।

जैसे–जैसे विद्याशाखाओं का उदय होता गया, वैसे–वैसे शुरुआत से ही नई विद्याशाखा ही मूल विद्याशाखा की उपशाखा के रूप में निर्मित होने लगी है। एक से अधिक विद्याशाखाओं को एकत्रित होकर अन्य स्वतंत्र विद्याशाखाओं में रूपांतरित होने के लिए या स्वतंत्र स्थान प्राप्ति के लिए कुछ मुख्य विशेषताएं भी प्राप्त करनी होती हैं।

नवीन विद्याशाखाओं के निर्माण के कारण

नई–नई विद्याशाखाएं निम्न कारणों से निर्मित होती हैं–

1. नए–नए क्षेत्रों में अनुसंधान के कारण नई शाखाओं का उदय होता है। उदाहरणस्वरूप जैसे– समुद्र का अभ्यास करने वाली विद्याशाखा ओशनोग्राफी। यह ऐसे ही नए क्षेत्र में अनुसंधान से निर्मित हुई विद्याशाखा है।
2. कुछ क्षेत्र पहले से ही अस्तित्व में होते है। उन क्षेत्रों की ओर नई दृष्टि के साथ देखने से स्वतंत्र रूप धारण किया जाता है। जैसे– शिक्षाशास्त्र में नये–नये तंत्रों का उपयोग करने से शैक्षिक तंत्रविज्ञान इस नई विद्याशाखा का उदय हुआ। हो सकता है कि इस विद्याशाखा का आने वाले समय में स्वतंत्र विद्याशाखा के रूप में रूपांतरण हो।
3. नए ज्ञान और नए कौशल विकसित होने की आवश्यकता का निर्माण होना। उदाहरण– संगणक के निर्माण के बाद संगणक का ज्ञान एवं कौशल्य निर्माण करने की तथा उसे प्राप्त करने की आवश्यकता निर्मित होने पर संगणक शास्त्र नामक नई विद्याशाखा तैयार हुई।

1.2.3 विद्याशाखा की विशेषताएं

जब कोई अध्यापक कक्षा में विषयों का अध्यापन कराता है, तो वह विषय स्वतंत्र नहीं होता; वह कई विद्याशाखाओं से जुड़ा होता है। विद्याशाखा के विभिन्न घटकों एवं आशय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, इसलिए विद्याशाखा की विशेषताएं जानना आवश्यक है, जो निम्न हैं–

टिप्पणी

1. **आशयवस्तु का अभ्यास** : प्रत्येक विद्याशाखा सुनिश्चित रूप से आशय वस्तु का अभ्यास कराती है, जिससे विशिष्ट घटना, वस्तु, क्रिया–प्रक्रिया, मनुष्य जीवन तथा सामाजिक घटकों का भी अभ्यास किया जाता है।
2. **गृहितक** : समस्याओं तथा आवश्यकताओं का स्वरूप और अर्थनिर्वचन की वृत्ति के बारे में प्रत्येक विद्याशाखा अपने कुछ गृहितक दर्शाती है।
3. **प्रमाणक एवं कार्यप्रणाली** : विद्याशाखा के अपने प्रमाणक एवं कार्यप्रणालियाँ होती हैं। विद्याशाखा की क्रियाएं (Activities) गृहितकों (Assmptions) से संबंधित होती हैं। इन्हीं परस्पर संबंधों के कारण प्रमाणक व कार्यप्रणालियाँ विकसित होती हैं।
4. **बौद्धिक एवं सामाजिक कार्य** : प्रत्येक विद्याशाखा के विशिष्ट बौद्धिक तथा सामाजिक निर्धारित विहित कार्य होते हैं।
5. **पृच्छा, ज्ञान, साधन, मार्ग, प्रणाली** : प्रत्येक विद्याशाखा में पृच्छा (Inquiry) होती है। ज्ञान निर्मिति की प्रक्रिया होती है। विद्याशाखा को अधिक अच्छे से समझने के लिए अनुसंधानों द्वारा साधनों का निर्माण किया जाता है। इसकी प्रस्तुति के कुछ अपने मार्ग (Way) निर्धारित होते हैं। इन विद्याशाखाओं को छात्रों तक पहुँचाने की एक प्रणाली (System/Methodology) विकसित की जाती है। उदाहरण– अध्यापक पाठ्यक्रम के आधार से किताबों में दिए गए आशय को छात्रों तक पहुँचाने हेतु आशयानुकूल साधनों का उपयोग कर विशिष्ट अध्यापन पद्धति के द्वारा ज्ञान बढ़ाते हैं।

   इसी तरह विद्याशाखा में पृच्छा का अवलंबन कर नए ज्ञान का निर्माण होकर विद्याशाखा में नये आयाम एवं आशय लाए जाते हैं।
6. **स्पष्टीकरण देने वाले नियम** : पृच्छा पद्धतियों का उपयोग कर विभिन्न घटनाएं क्यों घटती हैं? इसका स्पष्टीकरण देने वाले नियम भी विद्याशाखा में निर्धारित किए जाते हैं।
7. **संकल्पनाएं, सामान्यीकरण तथा उपपत्तियों का निर्माण** : विद्याशाखा की पृच्छा से विविध संकल्पनाएं, उनके सामान्यीकरण तथा उपपत्तियों का निर्माण होता है तथा उनका सुव्यवस्थित ढंग से सुसंगठन भी किया जाता है।

इन्हीं विशेषताओं से विद्याशाखा की संरचना तैयार होती है।

विद्याशाखा के कारक या घटक तथा कारकों के अभ्यास के उद्देश्य

विद्याशाखा के मुख्य कारक या घटक तीन प्रकार के होते हैं–

1. विषय–वस्तु
2. गृहितक
3. पृच्छा पद्धति

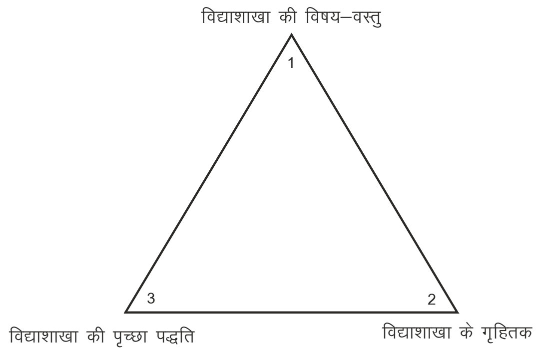

तीन कारक इस प्रकार हैं–

1. विषय–वस्तु : प्रत्येक विद्याशाखा की विषय–वस्तु उस विद्याशाखा की परिभाषा से स्पष्ट होती है। व्यापकता (Scope) भी स्पष्ट होती है। विद्याशाखा में किसका अभ्यास किया जाता है, यह 'विषय–वस्तु' कारक से स्पष्ट होता है। उदाहरण के लिए–

- जीवशास्त्र : इस शास्त्र में सजीवों का अभ्यास करने वाला शास्त्र आता है।
- अर्थशास्त्र : इसमें व्यक्ति तथा राष्ट्र की संपत्ति का स्वरूप, उसके कारण, मार्ग, इनकी पृच्छा करने वाला शास्त्र आता है।
- इतिहास : इस विद्याशाखा में भूतकालीन घटनाओं के कारण, उनके परिणाम, उनका आनुक्रमिक वर्णन तथा सुसंगतता की पृच्छा वाला शास्त्र आता है।
- शिक्षाशास्त्र : इसमें मानवों द्वारा हेतुपूर्वक आयोजित शिक्षा प्रक्रिया तथा सामाजिक उपप्रणाली का अभ्यास किया जाता है। शिक्षा प्रक्रिया में ज्ञान एवं संस्कृति का संक्रमण, नए ज्ञान की निर्मिति तथा ज्ञान निर्माण की क्षमता का विकास करना और मानवी मध्यस्थों के द्वारा समाज एवं वास्तविक दुनिया में परिवर्तन लाना आदि का समावेश होता है।

उपर्युक्त दिए गए उदाहरणों के तौर पर विषयों के अंतर्गत जो भी अधोरेखित (Underlined) शब्द दिए गए हैं– वही 'विषय–वस्तु' होते हैं।

(2) गृहितक : कुछ तथ्य (Facts) या बातें जिन्हें हम गृहित (Assume) मानते हैं, उनमें से गृहितक तैयार होते हैं। प्रत्येक विद्याशाखा का अपने विषय–वस्तु की ओर देखने का दृष्टिकोण एवं पृच्छा की पद्धति इन गृहितकों पर आधारित होती है। उदाहरण के लिए– विज्ञान, विद्याशाखा के गृहितकों पर नजर डालेंगे–

- हम जिस दुनिया में रहते हैं, वह दुनिया हमें वास्तविक रूप में प्रतीत होती है।
- निसर्ग में जो समानताएं होती हैं उनके कारण एक ही घटना कई जगहों पर घट जाती है तथा एक ही परिस्थिति में, एक ही प्रकार से घटने की शंकाएं (Possibility) होती हैं।
- वैज्ञानिक सिद्धांतों या तत्वों की सत्यता की जांच–पड़ताल विभिन्न प्रमाणों (Proof) के साथ निरीक्षणों द्वारा की जा सकती है।
- विश्व में घटने वाली घटनाओं में नियमितता एवं क्रमबद्धता होती है।

(3) पृच्छा पद्धति : विद्याशाखा का एक महत्वपूर्ण कारक है– ज्ञान निर्मिति का शोध तथा अर्थनिर्वचन की पद्धति। प्रत्येक विद्याशाखा में स्थूल रूप से कुछ पद्धतियां अपनाई

गई हैं, जो प्रत्येक विद्याशाखा के लिए अनुसंधानों द्वारा निर्धारित की जाती हैं। इन पद्धतियों को स्वीकार करने से उस विद्याशाखा में ज्ञान की वृद्धि होती रहती है। इसे ही पृच्छा कहते हैं। उदाहरण के लिए–

टिप्पणी

- नैसर्गिक विज्ञान का शोध वैज्ञानिक पद्धति से किया जाता है।
- तत्वज्ञान का शोध तर्कशास्त्र के आधार पर किया जाता है।
- इतिहास का शोध भूतकालीन घटनाओं की चिकित्सा एवं अर्थनिर्वचन के आधार पर किया जाता है।

कारकों के अभ्यास के उद्देश्य : विद्याशाखा के कारकों द्वारा निम्न उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं–

1. किसी भी विद्याशाखा द्वारा मानव, प्रकृति, रचना, इनकी वृद्धि तथा विकास की दिशा, इन्हीं के संबंधित समस्याओं को समझना, इन समस्याओं के निराकरण हेतु विभिन्न उपाय, उपागमों की खोज, उपायों का उपयोजन, प्रयोग करके समाधान तथा निष्कर्षों के आधार पर समायोजन पाना।
2. विद्याशाखा के माध्यम से मानव की 'स्व' कल्पना को जानना तथा उसे अपनी विभिन्न शक्तियों की जान–पहचान कराना मानव की उसकी क्रियाशीलताओं का उपयोजन या उपभोग करने में सहायता करना।
3. विद्याशाखा के अभ्यास द्वारा व्यक्तियों के बीच होने वाली आंतर्क्रियात्मकता को सही ढंग से समझने में मदद करना तथा सामूहिक आंतर्क्रियाओं के लिए प्रेरित करना।
4. विद्याशाखा अभ्यास द्वारा व्यक्ति तथा समाज के संबंधों को जानकर उचित रूप से उनकी आंतर्क्रियाओं का परिचालन करना तथा अनुकूल व्यवहार निर्माण में क्षमता प्राप्त करना।
5. सामाजिक संबंधों की प्रकृति, सामाजिक संरचना तथा सामाजिक संगठन को समझना, समाज के विभिन्न घटकों में सामंजस्य एवं एकरूपता की वृद्धि लाना।
6. मानव को उसकी संस्कृति से अवगत कराना, संस्कृति को समझकर उसे ग्रहण एवं धारण करने की क्षमता बढ़ाना। संस्कृति के अनुकूल जीवनयापन करने में मदद करना। संस्कृति संक्रमण हेतु किए जाने वाले प्रयासों से परिचित कराना।
7. आधुनिकता तथा जागतिकीकरण के अनुसार मानवीय मूल्यों, सद्गुणों, विशेषताओं आदि को समझना, परखना तथा उन्हें स्थापित करने हेतु प्रयास करना।
8. विद्याशाखाओं के अभ्यास द्वारा शैक्षिक प्रणालियों की जानकारी, शिक्षा विकास की दिशा को जानना, वर्तमान एवं भविष्यकाल की मांग के अनुसार जनसामान्यों के शिक्षा उद्देश्यों को पूरा करना। विभिन्न विद्याशाखाओं की शैक्षिक निष्पत्तियों के हेतु सुधार एवं अनुसंधान के लिए प्रयत्नशील रहना।

अध्यापकों को चाहिए कि वे अपने विषय की विद्याशाखा का संपूर्णतया अभ्यास करें तथा उसके आनुषंगिक विद्यार्थियों के जैविक, शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, भावनात्मक एवं शैक्षिक विकास का अध्ययन एवं प्रयास करें।

1.2.4 विद्याशाखाओं की स्थापना का गठन करने की प्रणाली या पद्धति तथा जांच–पड़ताल एवं वैधता

अलग–अलग पृच्छा पद्धतियों से तथा उनके उपयोग से प्रत्येक विद्याशाखा बड़े रूप में ज्ञान की निर्मिति करती है। इस ज्ञान में समाविष्ट घटक होते हैं–

1. जानकारी
2. संकल्पना
3. तत्व
4. सिद्धांत
5. निगम
6. सूत्र
7. संकेत
8. आत्माविष्कार
9. रचना
10. प्रक्रिया
11. पद्धति / प्रणाली
12. मध्यवर्ति कल्पना
13. कौशल्य
14. अर्थनिर्वचन
15. सृजनात्मक निर्मिति

ज्ञान के संचय में इन सभी घटकों पर एकत्रित रूप से विचार करना अत्यावश्यक एवं अनिवार्य होता है। इस प्रकार से ज्ञान नई पीढ़ी में संक्रमित करना आसान होता है। नई पीढ़ी द्वारा ज्ञान में वृद्धि करने का काम किया जाता है। ज्ञान संचय एवं वृद्धि की प्रक्रिया को 'संरचना' भी कहते हैं।

"किसी भी विद्याशाखा की मूलभूत कल्पनाएं, संकल्पना, विविध संकल्पनाओं का परस्पर संबंध एवं तत्वों के आधारों द्वारा की गई ज्ञान की रचना को ही संरचना कहते हैं।"

जेरोम ब्रुनर की परिभाषा से पता चलता है कि केवल जानकारी, संकल्पनाएं, तत्व, मध्यवर्ती कल्पना होना जरूरी नहीं बल्कि उनका परस्पर संबंध बहुत महत्वपूर्ण होता है।

आसुबेल के अनुसार, "विद्याशाखाओं में विषय–वस्तु का जिस प्रकार से संगठन किया जाता है उसे उस विषय की विद्याशाखा की संरचना कहते हैं। यह ज्ञान सीखने वाले के मन में जिस तरह से संगठित किया जाता है उसी को 'बोधात्मक संरचना' कहते हैं।"

विद्याशाखा संरचना एवं सीखने वाले के मन में होने वाली संरचना एक–दूसरे के समानांतर होती हैं। विद्याशाखा संरचना में सारे घटक एक पिरामिड की तरह श्रेणीबद्ध पद्धति से रचनाकृत किए गए होते हैं।

विद्याशाखा संरचना परस्पर संबंधित होती है। संकल्पना–उपसंकल्पनाएं इनका परस्पर संबंध श्रेणीबद्ध होता है। वैसे ही एक संकल्पना का दूसरी संकल्पना से परस्पर संबंध बराबर भी होता है, तत्व–नियम का जुड़ाव भी होता है; इन्हीं से उपपत्तियों का निर्माण होता है।

कोई भी विद्याशाखा मानवीय जीवन, समाज एवं भौतिक घटकों की ओर देखने का एक महत्वपूर्ण जरिया है। इसलिए उस विद्याशाखा से जुड़े व्यक्ति, समाज एवं भौतिक घटकों की समस्याओं का संपूर्ण आकलन उस विद्याशाखा से होगा। यह कदापि आसान नहीं होता, बल्कि समस्या के निराकरण करने हेतु एक से ज्यादा विद्याशाखाओं को एकत्रित करना अत्यावश्यक भी होता है क्योंकि मूल ज्ञान का स्वरूप एक ही होता है।

टिप्पणी

1.2.5 ज्ञान संकल्पना

'ज्ञान' मानवीय जिज्ञासा से उत्पन्न हुई कल्पना है। मनुष्य अपनी आयु के दौरान जो शोध करता है, उसमें से ज्ञान की निर्मिति होती है। इस सत्य का शोध–विज्ञान और तत्वज्ञान दोनों में से होता है– ऐसा कहा जाता है।

विश्व की निर्मिति कैसे हुई? विश्व का अंत कैसे होगा? सजीव निर्मिति का प्रयोजन क्या है? सजीवों के स्थित्यंतरों का कारण कौन–सा है? विश्व के मूलभूत नियम कौन से हैं? विश्व की रचना कैसी है? जीवन का मूलभूत अर्थ क्या है? ऐसे कई प्रश्न विज्ञान एवं तत्वज्ञान में एक समान आते हैं।

तत्वज्ञान अथवा दर्शन में यह तर्क एवं कल्पनाशक्ति द्वारा विचार करके तथा अमूर्त विचारों की एक के ऊपर एक चढ़ती श्रेणी द्वारा अंतिम सत्य तक जाने का प्रयास करते हैं, तो विज्ञान में प्रयोग, निरीक्षण, मापन, जांच–पड़ताल एवं निष्कर्ष इस पंचसूत्र का उपयोग करके सत्य की ओर बढ़ते जाते हैं।

अंतिम सत्य कहां और कैसा है? कितने करीब है? इसकी अभी भी दोनों को (दर्शन और विज्ञान) कल्पना नहीं है। तत्वज्ञान या दर्शन का मार्ग अमूर्त तथा पारलौकिक माना जाता है। मात्र विज्ञान का मार्ग मूर्त एवं व्यावहारिक माना जाता है। परिणामतः दर्शन के ज्ञान से विज्ञान के ज्ञान को समझ लेना सर्वसामान्य मानव की दृष्टि से अधिक सरल है।

ज्ञान का अर्थ : दर्शन (Philosophy) में ज्ञान की व्युत्पत्ति के बारे में समझाया गया है। वे ज्ञान की परिभाषा अथवा व्याख्या भी देते हैं। दर्शन की विज्ञान से जुड़ी एक शाखा के अध्ययन से ज्ञान का संबंध जोड़कर ज्ञान–मीमांसा उपशाखा की निर्मिति हुई है।

ज्ञान–मीमांसा (Epistemology)– एपिस्टेमोलॉजी की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द 'episteme' अर्थात ज्ञान तथा 'logy' विज्ञान से हुई है। ज्ञान–मीमांसा दर्शनशास्त्र का एक क्षेत्र है, जो मानवीय ज्ञान के औचित्य से संबंधित है। यह दर्शन के पृच्छा/पड़ताल का वह क्षेत्र है, जो ज्ञान की उत्पत्ति, प्रकृति, ज्ञान की विधियां, वैधता एवं सीमाओं का अन्वेषण करता है।

• **ज्ञान (Knowledge):** ज्ञान शब्द का प्रयोग विभिन्न रूपों में किया जाता है। शेलर (1999) ने ज्ञान को जानने हेतु तीन रीतियां बनाई हैं–

1. मनोवैज्ञानिक विश्वास समर्थित ज्ञान,
2. प्राविधिक ज्ञान
3. जानकारी

1 मनोवैज्ञानिक विश्वास समर्थित ज्ञान में मनोवैज्ञानिक धारणा या विश्वास की अभिव्यक्ति ही 'ज्ञान' कहलाती है। उदाहरणस्वरूप– 'मैं कहता था, आज बरसात होगी।'

2 किसी कार्य को करने की योग्यता ज्ञान कहलाती है। उदाहरण स्वरूप– 'मैं चक्की चलाना/ट्रेन चलाना जानता हूं।' यह ज्ञान ही प्राविधिक ज्ञान कहलाता है।

3 'जानकारी' भी ज्ञान कहलाती है जैसे– 'महाराष्ट्र की राजधानी मुंबई', भारत की राजधानी दिल्ली' है।

ये जानकारियाँ ज्ञान के रूप में होती हैं।

टिप्पणी

- **सर्वसामान्य ज्ञान की परिभाषा**

1. "सामान्यतः हम जो देखते हैं, समझते हैं, सोचते हैं, इन्हीं के आधार पर क्रियाएं करते हैं, वह सब कुछ ज्ञान है।"
2. "प्राप्त तथ्यों (Facts), सिद्धांतों (Principles) तथा नियमों (Rules) के एकत्रित परिणामों को ज्ञान कहा जाता है।"
3. "Information, Understanding and Skills that you have gained through learning or experience."

   "सीखकर या अनुभव द्वारा आप जो जानकारी पाते हैं, उससे जो समझ आती है व जो प्राप्त होता है, वही है ज्ञान, विद्या।"
4. Knowledge means "the state of knowing about a particular fact or situation." "विशिष्ट वास्तविक तथा परिस्थिति की जानकारी होने की अवस्था या समझ ही ज्ञान होता है।"
5. "Acquaintance with facts, truths or principles as from study or investigation; general erudition." (Dictionary-Cambridge.org)

जैन, बौद्ध, सांख्य और न्याय दर्शन के अनुसार ज्ञान

जैन दर्शन के अनुसार ज्ञान की परिभाषा–

"द्रव्य के दो स्वरूप अस्तिकाय (जीव एवं अजीव) और अनस्तिकाय (काल) के वास्तविक स्वरूप एवं उनके आपसी संबंधों को जानना ही ज्ञान है।"

बौद्ध दर्शन के अनुसार ज्ञान की परिभाषा

भगवान गौतम बुद्ध के दर्शनानुसार– "यह संसार दुःखमय है, मनुष्य की इच्छाएं इन दुःखों का मूल कारण है। इसलिए सांसारिक दुः,खों से मुक्ति दिलाना निर्वाण कहलाता है।" इस हेतु बुद्ध का दर्शन केवल मनुष्य के वास्तविक जीवन की व्याख्या की ओर प्रवृत्त है।

"ज्ञान वह है जो मनुष्य को सांसारिक दुःखों से मुक्ति या छुटकारा दिलाएगा।"

सांख्य दर्शन के अनुसार ज्ञान की परिभाषा

सांख्य दर्शन के दो मूल तत्व होते हैं– 1. प्रकृति (जड़), 2. पुरुष (चेतना/आत्मा)।

"प्रकृति एवं पुरुष के वास्तविक स्वरूप एवं उनके भेदों को जानना ही ज्ञान कहलाता है।"

न्याय दर्शन के अनुसार– "प्रमा (यथार्थ ज्ञान) और अप्रमा (अयथार्थ ज्ञान) को जानना तथा उनके भेदों को जानना ही वास्तविक ज्ञान कहलाता है।"

पाश्चात्य आदर्शवादी दार्शनिक प्लेटो के अनुसार, "विचारों की दैवीय व्यवस्था और आत्मा–परमात्मा के स्वरूप को जानना ही सच्चा ज्ञान है।"

टिप्पणी

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं के आधार पर 'ज्ञान' की व्यापकता यह है कि–

- ज्ञान वास्तविक विश्वास का औचित्य है।
- मनुष्य को सत्य का ही ज्ञान हो सकता है।
- घटित मान्यताओं के अनुसार ज्ञान न्यायसंगत विश्वास होता है।
- ज्ञान को 'कथन' के रूप में भी अभिव्यक्त किया जा सकता है।

ज्ञान का सर्वमान्य स्वरूप एवं विकास

दर्शन से निर्मित ज्ञान की अपेक्षा विज्ञान से निर्मित ज्ञान को समझना बहुत ही आसान है।

विज्ञान में ज्ञान–निर्मिति के तथा ज्ञान संग्रह के तीन मूलभूत नियम माने जाते हैं। वे नियम हैं–

नियम 1 : विज्ञान सत्य की अंतिमता पर विश्वास नहीं करता, वह सत्य के सातत्य (Continuity) पर विश्वास रखता है।

नियम 2 : विज्ञान में सत्य सिद्धता ही होनी चाहिए, ऐसा आग्रह भी होता है।

नियम 3 : सत्य सार्वत्रिक होना चाहिए ऐसा विज्ञान का दंडक होता है।

इन तीन नियमों से यह पता चलता है कि दर्शन के अंतिम सत्य से अधिक विज्ञान चलते रहने वाला सत्य ढूंढ़कर निकालता है। इसका परिणाम यह होता है कि–

- विज्ञान का ज्ञान संग्रह प्रचंड वेग से बढ़ता है।
- प्रगति (Progress) का वेग भी प्रचंड होता है।
- विज्ञान में सत्य संबंधी जो ज्ञान एकत्रित होता है, वह देश, काल, परिस्थिति तथा व्यक्ति की क्षमताओं के अनुसार बदल सकता है, इसलिए किसी काल में प्राप्त किया हुआ ज्ञान आने वाली कालावधि में वैसा का वैसा ही रहेगा, यह कहा नहीं जा सकता।

जैसे–जैसे समय बदलता गया, परिस्थितियां बदली और मानव के विचार प्रगल्भ हुए, वैसे–वैसे ज्ञान की कक्षाएं कम–कम होती गई। इसलिए शुरुआती विचार, शोध जिन्होंने दिए, उनका मूल्य एवं महत्व कम नहीं होता।

ज्ञान दो प्रकार का होता है– 1. मूलभूत ज्ञान (Fundamental knowledge) 2. उपयोजित ज्ञान (Applied Knowledge)

1. **मूलभूत ज्ञान** : पूरे विश्व में घटने वाली, निसर्ग में घटने वाली घटनाएं जिन नियमों के अनुसार घटती हैं, उन नियमों का शोधन (Discovery) मूलभत ज्ञान होता है। यह मूलतः विश्व का अंगभूत होता है। हमें केवल उसको ढूंढ़ निकालना तथा सुव्यवस्थित ढंग से रचने का प्रयास करना होता है।
2. **उपयोजित ज्ञान** : मूल नियम एवं तत्व का उपयोग करके मानवीय कल्याण हेतु, सुख समृद्धि हेतु तथा मानव के फायदे हेतु ज्ञान की मदद से ऐसी कुछ नई कल्पनाएं की जाती है, साधन तैयार किए जाते हैं जिनके द्वारा मानव जीवन के समृद्ध होने में मदद मिलती है; ऐसे ज्ञान को उपयोजित ज्ञान कहते हैं।

उपयोजित ज्ञान मानव के उपयोग के उद्देश्य से निर्मित किया गया किंतु उसके पीछे मानव की सृजनशीलता का आनंद भी कार्यरत रहता है।

उपयोजित ज्ञान कभी–कभी स्वार्थ हेतु से उपयोग में लाया जाता है फिर भी उसका समावेश अलग–अलग विद्याशाखाओं में किया जाता है।

विभिन्न विद्याशाखाओं की ज्ञान रूपी वृक्ष की अनेक डालियां, उन डालियों से जुड़ी अन्य डालियां सतत बढ़ती हैं। ज्ञान की वृद्धि एवं विकास को सदैव बढ़ते रहना होता है। इसको परख कर स्वीकार करना तथा उसे सीखना, आत्मसात करने के लिए ज्ञान के उदर में बहुत बड़ी जगह है।

1907 में अमेरिका में लगे शोधों की तथा उस काल में निर्माण किए गए साधनों की सरकार के दरबार में (Governmnent) अभिलेख (Record) कर उस पर खुद का स्वामित्व (Right) प्रस्थापित करने के लिए स्वामित्व अधिकार लेना पड़ता था। 'पेटेंट ब्यूरो' का शासकीय कार्यालय था। 1907 में प्रचंड ज्ञान संग्रहित हुआ था।

थॉमस अल्वा एडिसन शास्त्रज्ञ के नाम पर 1000 शोधों का पेटेंट था। उस समय के पेटेंट ब्यूरो के प्रमुख ने अमेरिका के राष्ट्राध्यक्ष को एक पत्र लिखा, उसमें उन्होंने यह दावा किया था कि, "दुनिया भर के संपूर्ण ज्ञान का अब शोध लग चुका है, शोध खत्म हो चुके हैं। इसके आगे अब कोई नया ज्ञान निर्माण होने की संभावना नहीं। इसलिए पेटेंट ब्यूरो का कार्यालय बंद कर दिया जाए। मैं मेरे पद से इस्तिफा–आपके पास भेज रहा हूं।"

पेटेंट ब्यूरो के इस प्रमुख व्यक्ति का ज्ञान संबंधी आकलन कितना कम था, बीते सौ वर्षों में हम सबको उसकी कल्पना सहजता से हो गई है।

उसके बाद दूरदर्शन, टेपरीकॉर्डर, कृत्रिम धागों के कपड़े का शोध किया गया और आज हम सब उनका उपयोग कर रहे हैं।

एटम बम, हाइड्रोजन बम, कृत्रिम उपग्रह– ये सभी बातें उस समय कल्पना में भी नहीं थी। आज सर्वसामान्यों को भी ये सभी बातें पता है। तब के ज्ञान से आज उपलब्ध ज्ञान का कई गुना ज्यादा विस्तार हो चुका है।

'शोध (Search) खत्म हो गए हैं' ऐसा कहने वाले देश में आज की घड़ी में अमेरिका में 25 लाख लोग केवल शोधों पर ही काम कर रहे हैं। हर रोज 100 हजार से ज्यादा शोधों का पेटेंट मांगा जा रहा है। यही ज्ञान का विकास है।

ज्ञान

1. ज्ञान विघर्ष्णू चंद्रकलाओं के समान है, परंतु यह अर्ध सत्य है क्योंकि धीरे–धीरे आकार बढ़ाने वाला चंद्रमा पूर्णिमा के दिन पूर्ण रूप धारण करता है और बाद में उसका क्षय होता जाता है। 'ज्ञान' वैसा नहीं है। वह बढ़ता जाता है, और विकसित होते रहना यह उसकी अखंडित चलने वाली प्रक्रिया है।
2. ज्ञान का अंतिम रूप कैसा होगा? ऐसा प्रश्न हमारे मन में आने के अलावा 'ज्ञान को अंतिम रूप प्राप्त हो सकता है क्या?' यह प्रश्न आना चाहिए। क्योंकि–
3. ज्ञान देश, काल, परिस्थिति तथा व्यक्ति निरपेक्ष होता है। कदाचित विश्व का अंत भी हो जाएगा मगर उसके बाद भी ज्ञान बचा रहेगा।

टिप्पणी

4. समुद्र के किनारे जितने रेत के कण हैं उनमें से सर्वकणों जितना ज्ञान जगत में है, मगर केवल एक मुट्ठि में समाने वाली रेत के जितना ही शोध अभी तक के ज्ञान को माना गया है।
5. ज्ञान स्वभावतः सर्वव्यापक होता है। ज्ञान की वृद्धि जैसे–जैसे होती गई वैसे–वैसे ज्ञानरूपी वृक्ष का विकास होता गया। उसका रूपांतरण प्रचंड वटवृक्ष में हुआ है। इस ज्ञान वटवृक्ष की अलग–अलग विद्याशाखाएं निर्मित हुई हैं। ज्ञान के वटवृक्ष की विभिन्न शाखाएं अलग–अलग विद्याशाखाएं होती हैं।

अतः नियमों का शोधन ही मूलभूत ज्ञान होता है, यह मूलतः विश्व का अंगभूत होता है। हमें केवल उसको ढूंढ़ निकालना तथा सुव्यवस्थित ढंग से रचने का प्रयास करना होता है।

ज्ञान के प्रकार

ज्ञान "अनुभव या संगति से कुछ जानने का तथ्य (Fact) एवं स्थिति ज्ञान है।"

दर्शनशास्त्र में ज्ञान के सिद्धांतों को ज्ञान का विस्फोट माना जाता है। मनुष्य की अध्ययन क्षमता से तथा अनुभव से ज्ञान प्राप्त होता है। कई उपकरणों के आधार से कौशल्य और क्षमताओं को विकसित करने हेतु 'ज्ञान प्राप्ति' के उद्देश्य को साध्य किया जा सकता है।

ज्ञान प्राप्ति की विधियों के आधार पर ज्ञान के प्रकार निर्धारित किए जा सकते हैं। वे प्रकार हैं–

1. पूर्ववर्ती ज्ञान (Prior knowledge)
2. परावर्ती ज्ञान (Reflective knowledge)
3. वैज्ञानिक ज्ञान (Scientific knowledge)
4. धार्मिक ज्ञान (Religious knowledge)
5. अनुभवजन्य ज्ञान (Experimental knowledge)
6. सहज ज्ञान (Liberal knowledge)
7. दार्शनिक ज्ञान (Philosophical knowledge)
8. तार्किक ज्ञान (Logical knowledge)
9. गणितीय ज्ञान (Mathematical knowledge)
10. शब्दार्थों का ज्ञान (Terminological knowledge)
11. प्रणालीगत ज्ञान (Methodological knowledge)
12. स्पष्ट ज्ञान (Clear knowledge)
13. तप ज्ञान (Tapa/Sadhana knowledge)
14. मौन ज्ञान (Silent knowledge)
15. अंतर्निहित ज्ञान (Implicit knowledge)
16. संवेदनशील ज्ञान (Sensational knowledge)

ज्ञान जैसे ग्रहण करने वालों की आकलन क्षमता पर अवलंबित होता है, वैसे ही अध्यापक की क्षमता पर भी होता है। इसलिए अलग–अलग शिक्षा समितियों द्वारा इन शाखाओं का भी विचार किया गया, जो अत्यंत महत्वपूर्ण है।

टिप्पणी

ज्ञान प्राप्ति या ज्ञानार्जन के स्रोत एवं विधियां

ज्ञानार्जन की कई विधियां होती हैं, उन्हीं के प्रकारों के अनुसार ज्ञानार्जन के कुछ महत्वपूर्ण स्रोतों की जानकारी हम निम्न प्रकार से प्राप्त कर पाएंगे–

1. अंतर्बुद्धि द्वारा ज्ञान
2. प्राधिकरण द्वारा ज्ञान
3. दृढ़ आग्रह द्वारा ज्ञान
4. तर्क द्वारा ज्ञान
5. अनुभव जन्य ज्ञान
6. प्रगटीकरण द्वारा ज्ञान
7. आस्था द्वारा ज्ञान

ज्ञान के वर्गीकरण के अनुसार ज्ञान के विभिन्न उपयोगों द्वारा भी प्रकार निर्धारित किए जा सकते हैं–

(क) **कथनात्मक ज्ञान** : जिन सत्य कथनों से 'क्या' (What) एवं 'किस' (Which) का ज्ञान प्राप्त होता है, वह कथनात्मक ज्ञान है।

(ख) **प्रक्रियात्मक ज्ञान** : जिन सत्य कथनों में 'कैसा' (How) द्वारा ज्ञान प्राप्त हो, वह प्रक्रियात्मक ज्ञान है।

(ग) **प्रत्यक्ष ज्ञान** : जब व्यक्तियों को अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है, वह प्रत्यक्ष ज्ञान है।

(उपर्युक्त जानकारियां पॉल एच. हर्स्ट तथा बर्ट्रेंड रसेल की मानवीय ज्ञान की अवधारणा से संकलित की गई है।)

ज्ञान निर्मिति की पद्धतियां अथवा विधियां

ज्ञान निर्मिति की प्रणालियों से अभिप्राय अलग–अलग विषयों के अनुसंधानों द्वारा सर्जनशील प्रणालियां हैं। विभिन्न विद्याशाखाओं के ज्ञान निर्मिति के मार्ग ही यह प्रणालियां होती हैं, जो निम्न रूप में दर्शाई गई हैं–

विद्याशाखाओं के ज्ञान निर्मिति के मार्ग

विद्याशाखा	ज्ञान निर्मिति के मार्ग
1. गणित	उद्गमन–अवगमन, समस्या निराकरण।
2. विज्ञान	वैज्ञानिक पद्धति, निरीक्षण प्रयोग।
3. समाजशास्त्र एवं राज्यशास्त्र	अनुसंधान, सामाजिक एवं राजकीय घटनाएं, सामाजिक अभ्यास साक्षात्कार, सामाजिक एवं राजकीय घटनाएं, सामाजिक अभ्यास, गुणात्मक तथा वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक प्रणालियों का शोध।

4. मानसशास्त्र	मानवी वर्तन का निरीक्षण, वर्णनात्मक निरीक्षण, व्यक्ति अभ्यास, समस्या निराकरण, प्रयोगात्मक पद्धति।
5. इतिहास	जानकारी, एकत्रीकरण, अर्थनिर्वचन, शोध, दावों का संकलन, उत्खनन में मिले चित्र, अवशेष, अनुभव, प्रवास वर्णन, ऐतिहासिक वर्णन, प्रशासनिक अनुलेख, शिल्प, मंदिर, स्तूप का अभ्यास।
6. भूगोल	सर्वेक्षण, विषय–अभ्यास, प्रादेशिक अभ्यास, सैद्धांतिक अभ्यास।
7. मराठी	आत्मचरित्र, व्यक्तिचित्र, यादें, यात्रा वर्णन, लघु निबंध, कथाएं, उपन्यास, आत्मकथन, आत्माविष्कारों एवं सर्जनशीलता, संकेत, परंपराएं, चिह्नों का अभ्यास।

ज्ञान निर्मिति के मार्गों की जानकारी

1. **समस्या निराकरण** : कोई भी समस्या है, तो वह क्यों है? उसके घटक/कारक कौन से हैं? उस समस्या का निराकरण कैसे करना है? उसके पर्याय कौन–से होंगे? अच्छा परिणाम क्या होगा? इसका शास्त्रशुद्ध विचार करना ही समस्या निराकरण होता है।
2. **उद्गमन–अवगामी पद्धति** : उद्गमन–विशेष की ओर से सर्वसामान्य की ओर जाना, मूर्त से अमूर्त की ओर तथा उदाहरण की ओर से नियम की ओर जाना, यह उद्गमन प्रणाली है।

   अवगमन– सर्वसामान्य से विशेष की ओर जाना। अवगामी में तर्क और विचार होता है।
3. **प्रयोगात्मक पद्धति** : किसी भी विशिष्ट बात का निश्चित परिणाम क्या होता है? यह प्रयोग द्वारा जांचना। यह प्रयोगात्मक पद्धति होती है।
4. **वैज्ञानिक शोध** : कुछ गृहितक एवं परिकल्पनाओं के आधार पर किसी बात को ढूंढ़ना, यही वैज्ञानिक शोध है।
5. **निरीक्षण** : किसी घटना के घटते हुए, वह घटना क्यों एवं कैसे घट रही है? उसका परिणाम बताकर विशिष्ट पद्धति द्वारा संरचित करना।
6. **शोध** : विशिष्ट घटना क्यों घटी? उसकी विविध अंगों से जानकारी प्राप्त करना या उसकी परिणामकता को जांचना।
7. **दस्तावेजों का अभ्यास** : प्रशासकीय कार्यालयों से या अन्य किसी प्राथमिक स्रोत द्वारा किसी घटना के संदर्भ में प्राप्त दस्तावेजों का विश्लेषण तथा तर्कसंगत विचार करके अर्थ लगाना और उसमें से प्राप्त जानकारी को संरचित करना।
8. **साक्षात्कार** : विशिष्ट उद्देश्य साध्य करने के लिए उस क्षेत्र की जानकारी रखने वाले व्यक्ति तथा उसमें प्रत्यक्ष सहभागी व्यक्ति से प्रश्न पूछकर जानकारी प्राप्त करना।
9. **सामाजिक तथा राजकीय घटनाओं का अभ्यास** : समाज में घटित विशिष्ट घटनाएं क्यों एवं कैसे घटती हैं, इसका अभ्यास करना।
10. **मानवी वर्तन निरीक्षण** : मानव का वर्तन कब, कैसे एवं क्यों घटता है इसका अलग–अलग परिस्थिति में निरीक्षण करके उसको संरचित करना व विशिष्ट

परिस्थिति में विशिष्ट स्वभाव के व्यक्ति का बर्ताव कैसा होगा, इसका अंदाजा लगा सकते हैं।

11. **वर्णनात्मक निरीक्षण** : कोई एक विशिष्ट घटना कैसे घटी? या किसी एक बात की निर्मिति कैसे हुई? इनका किया गया निरीक्षण वर्णनात्मक स्वरूप में सामने रखना।
12. **व्यक्ति अभ्यास** : सर्वसामान्य से अलग व्यक्ति या संस्थाएं, इनके विविध वैशिष्ट्यों के अनुसार, विविध अंगों से विचार किया जाता है। इस बारे में अनेक लोगों से जानकारी प्राप्त कर निष्कर्षों का अनुलेखन करना होता है।
13. **जानकारी का वर्गीकरण** : प्राप्त जानकारी विस्तृत होती है। जानकारी अलग–अलग नमूनों (Samples) में, विशिष्ट मुद्दों/सोपानों के अंतर्गत एकत्रित करके वर्गीकृत की जाती है।
14. **जानकारी का अर्थनिर्वचन** : किसी भी घटना के बाद उसकी निशानियां या संकेत अलग–अलग स्वरूपों में प्राप्त होते हैं। इन संकेतों के द्वारा तथा प्राप्त जानकारियों द्वारा तर्कसंगत विचार और अर्थ लगाया जाता है।
15. **साक्षी/दांव** : घटित घटना के बारे में प्रत्यक्ष दांव प्राप्त किए जाते हैं। उनके उपयोग से कुछ साधारण निष्कर्ष लिए जाते हैं। इनमें प्राचीन वस्तुएं, अवशेष, शिल्प/शिलालेख, स्तूप, दस्तावेज का समावेश होता है।
16. **अनुभव** : घटना को प्रत्यक्ष देखने वाले, साक्षी व्यक्ति का अनुभव–लेखन, कथन यह ज्ञान निर्मिति हेतु उपयुक्त होता है। वह संगठित करके पीढ़ी–दर–पीढ़ी संक्रमित होता है।
17. **सर्वेक्षण** : वर्तमान स्थिति में घटना कैसे घटी? उसका संबंधित घटकों पर/कारकों पर क्या परिणाम हुआ, इसका जायजा लेने के लिए उस विषय की व्यापक जानकारी पाने के लिए कार्य सर्वेक्षण किए जाते हैं।
18. **विषय अभ्यास** : किसी भी विशिष्ट विषय के विशिष्ट प्रश्नों को लेकर सटीक वाचन से नए ज्ञान की प्राप्ति होती है।
19. **यात्रा वर्णन** : कोई यात्रा, जिस मार्ग से की जाती है, उससे प्राप्त होने वाले ज्ञान का, जानकारियों का अनुलेखन किया जाए तो वह भी एक उपयुक्त जानकारी मानी जाती है।
20. **प्रादेशिक अभ्यास** : दुनिया भर में नैसर्गिक परिवर्तन के कारण बदलाव आते हैं, वैसे ही प्रादेशिक परिवर्तन भी आते दिखाई देते हैं। प्रत्येक प्रदेश की हवा, वातावरण एवं ऋतुओं के अभ्यास द्वारा तथा निरीक्षणों के द्वारा नए ज्ञान का निर्माण होता है।

1.2.6 विद्याशाखा संरचना, ज्ञान की तार्किकता एवं दांव

विस्तृत रूप में ज्ञान का निर्माण करने में विद्याशाखा का बहुत अधिक योगदान होता है।

विद्याशाखा संरचना (Structure of Discipline)

ब्रुनर के मतानुसार "मूलभूत कल्पना, संकल्पना एवं तत्व सीखने से उनका उपयोग छात्र एक से अधिक घटकों/इकाइयों, उपइकाइयों को सीखने के लिए करते हैं तथा वह परिणामकारक अध्ययन साबित होता है।"

टिप्पणी

आदर्श संरचना निकष (Criteria)

- विद्याशाखा संरचना बहुव्यापी तथा ज्यादा से ज्यादा समावेशक हो।
- विद्याशाखा अध्यापक के एवं अन्य संबंधित घटकों के आकलन की दृष्टि से आसान और सरल हो।
- विद्याशाखा अर्थपूर्ण हो।
- विद्याशाखा तार्किक एवं मनोवैज्ञानिक संबंधों पर आधारित होनी चाहिए।
- विद्याशाखा द्वारा विषय की मध्यवर्ति कल्पना एवं संकल्पना सुस्पष्ट हो।

उपर्युक्त निकषों में कुछ परस्पर विरोधी बातें दिखाई देती हैं, जैसे– सर्वसमावेशक तथा आसान, आकर्षकता एवं परस्पर संबंध।

संरचना बनाते समय उपर्युक्त सभी बातों का समतोल योग्य रीति से रखा जाना चाहिए।

संरचना तैयार करने की कृति

1. संरचना तैयार करने हेतु उसमें समाविष्ट होने वाले सभी तथा ज्यादा से ज्यादा घटकों/उपघटकों की जानकारी ले लेनी चाहिए।
2. घटकों में तार्किक संबंध निश्चित करें।
3. घटकों में संबंध अलग–अलग प्रकार के हो सकते हैं। उदाहरणस्वरूप–

   (a) A के बाद B मतलब $(A \rightarrow B)$

   (b) B और B परस्परावलंबी $(A \leftrightarrow B)$

   (c) A का अनेक घटकों से संबंध (B, C, D)

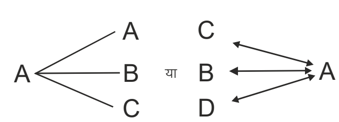

   (d) A में B, C, D समाविष्ट।

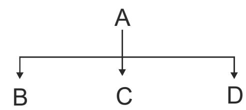

   घटकों में संबंध दर्शाते समय यह स्वरूप मनोवैज्ञानिक संबंधों पर किया जाना है, जैसे– मूर्त से अमूर्त की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर, पूर्ण से भाग की ओर।

4. विद्याशाखा संरचना की रचना चित्र रूप में ही दर्शायी जानी चाहिए। जैसे– फ्लो चार्ट (Flowchart), वृक्षाकृति, भौमितिक आकृति।
5. संरचना अधिक सृजनात्मक, आकर्षक, आकलनीय एवं लक्ष्यवेधक होनी चाहिए।

टिप्पणी

आकृतियां संरचना के नमूने

फ्लो चार्ट संरचना

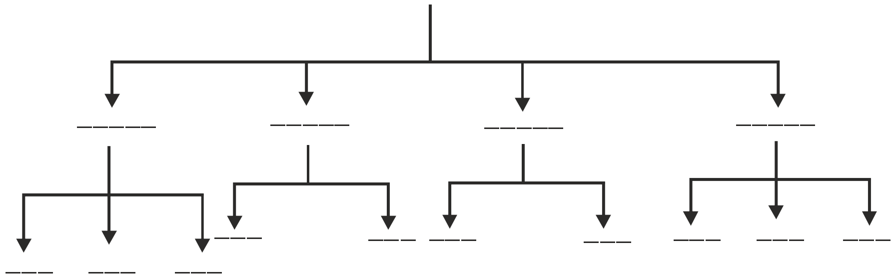

वृक्षाकृति संरचना

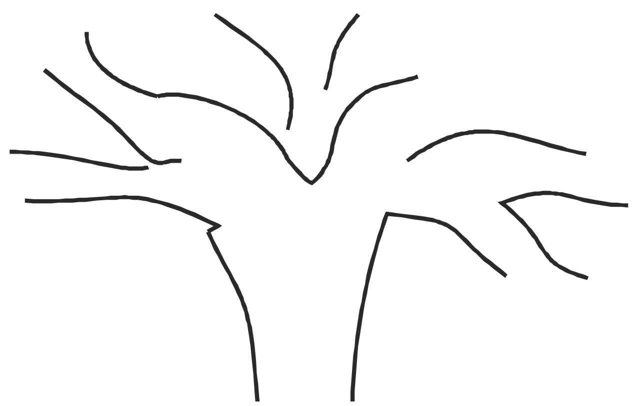

भौमितिक संरचना

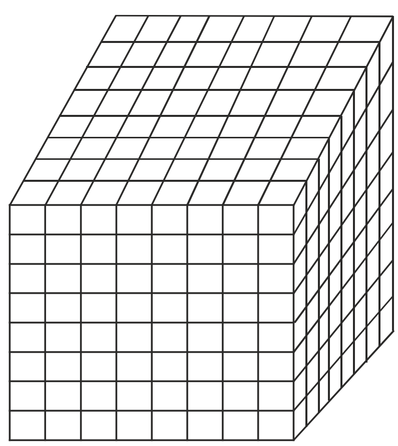

ज्ञान की तार्किकता एवं दांव

किसी भी संरचना में क्षेत्र, विधि तथा इतिहास सम्मिलित होता है–

1. संरचना विषय सामग्री एक विस्तार, एक घटना का क्षेत्र होता है। वह विषय क्षेत्र का वर्णन करता है तथा इसमें वास्तविकता के विभिन्न पक्ष शामिल होते हैं– वैज्ञानिक, तार्किक। इस विस्तार के विभिन्न स्तर भी होते हैं।
2. संरचनाशास्त्र की अपनी विधियां और जांच की पद्धतियां तथा ज्ञान के वैधता की नियमावली होती है।

   इन विधियों के उपयोग पुनः ज्ञान के स्वरूप को अंतर्निहित करते हैं जिसका यह वर्णन करती है।

3. प्रत्येक विद्याशाखा का कोई एक शास्त्र होता है, एक शास्त्र के नियम अन्य के साथ प्रयुक्त नहीं किए जाते परंतु विभिन्न संदर्भों में विधियों का समान अभ्यास शास्त्र तक उपयोग किया जा सकता है।

टिप्पणी

4. विद्याशाखांतर्गत शास्त्र का अपना इतिहास होता है, जो इसके ज्ञान, नियम एवं दर्शन के विस्तार का वर्णन करता है।

विद्याशाखाओं की निश्चित परिसीमाओं की व्याप्ति

विद्याशाखाओं की कोई निश्चित परिसीमाएं नहीं होती, न ही ये परिसीमाएं हममें से कोई निश्चित कर सकता है। शिक्षा चाहे कोई भी हो, विषय का अभ्यास तो करना पड़ता है। जैसे विषयों की कोई मर्यादाएं नहीं हैं, वैसे ही विद्याशाखाओं की परिसीमाओं की व्याप्ति भी निश्चित नहीं होती।

विद्याशाखा की संरचना का अभ्यास करते समय हमने जाना कि विद्याशाखा हमेशा अधूरी ही होती है, यह उसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इस अधूरी विद्याशाखा की संरचना को अभ्यासगण, वैज्ञानिक, संशोधक (Researchar) पूरी करने का प्रयास करते हैं। हमने देखा है कि, ज्ञान का कोई अंत नहीं होता। ज्ञान में दिन–प्रतिदिन वृद्धि होती ही रहती है। इसलिए विद्याशाखाओं की व्याप्ति भी दिन–प्रतिदिन वृद्धिगत होती रहती है।

जैसे–जैसे शिक्षा का विकास होता रहेगा वैसे–वैसे विषय अभ्यास होता रहेगा। आशय ज्ञान बढ़ता रहेगा। आशय ज्ञान की अभिवृद्धि से शिक्षा क्षेत्र और अधिक विस्तृत रूप में फैलता चला जाता है।

शिक्षा में सम्मिलित विषय ही विद्याशाखा कहलाता है। कई जगह विद्वान इसे 'ज्ञानानुशासन' भी संबोधित करते हैं। विभिन्न विद्वानों ने उनकी अभ्यासवृत्ति तथा ज्ञान–दर्शन के अनुसार विद्याशाखाओं का वर्गीकरण अलग–अलग ढंग से किया हुआ है।

विद्याशाखाओं का अभ्यास विश्वविद्यालय स्तरों पर सही ढंग से किया जाता है। शिक्षा के स्तर पर तो विद्याशाखाओं में सम्मिलित विषयों से जुड़ा आशय ज्ञान (Content Knowledge) तथा उससे जुड़े उप–घटक पढ़ाए/सिखाए जाते हैं। पारंपरिक विश्वविद्यालयों (Conventional Universities) में तथा मुक्त विश्वविद्यालयों (Open Universities) में कई विद्याशाखाओं द्वारा शिक्षणक्रम चलाए जाते हैं। इन विद्याशाखाओं को ही स्कूल के नाम से भी संबोधित किया जाता है। यहां स्कूल का मतलब पाठशाला न होकर विद्याशाखा (Discipline) के अर्थ में पाया जाता है। इन्हीं विद्याशाखाओं के अंतर्गत कई विषयों का अभ्यास छात्रों द्वारा किया जाता है।

वर्तमान विश्वविद्यालयों में शैक्षिक विद्याशाखाओं में निम्न विषयों को समाविष्ट कर वर्गीकरण किया गया दिखाई देता है।

1. **मानविकी और कला विद्याशाखा** (Humanities and Arts School): इस विद्याशाखा के अंतर्गत भाषा, साहित्य, धर्म, दर्शन, मानवविद्या, नीति, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र आते हैं।

   इसी से जुड़ी एक अन्य विद्याशाखा है– सामाजिक शास्त्र जिसमें समाजशास्त्र, मानसशास्त्र आदि विषयों का भी समावेश किया जाता है।

2. **विज्ञान और तंत्रविज्ञान/प्रौद्योगिकी विद्याशाखा** (Science and Technology/ Industrialisation School): इसके अंतर्गत भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, प्राणीशास्त्र, वनस्पति शास्त्र, प्राकृतिक विज्ञान और वैज्ञानिक तकनीकी जैसे विषयों का समावेश किया जाता है।
3. **गणित विद्याशाखा** (Mathematics School): इसमें अंकगणित, रेखागणित बीजगणित, सांख्यिकी का समावेश किया जाता है।
4. **वैद्यकीय चिकित्सा, विज्ञान विद्याशाखा** (School of Medical, Health Sciences): इस विद्याशाखा के अंतर्गत चिकित्सा (दवा) युनानी, होम्योपैथी, पशु चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, योग अभ्यास आदि विषयों को समाविष्ट किया जाता है।
5. **कृषि विज्ञान विद्याशाखा** (School of Agricultural Sciences): इस विद्याशाखा में कृषि, बागवानी, खेती से जुड़े सभी अभ्यास विषयों का समावेश किया गया है। वर्तमान समय में तो टेरेस गार्डनिंग, इंटरनल प्लांट्स, आउटडोर प्लांट्स को विकसित करने की विधियां प्रचलित होने से इस विद्याशाखा में सम्मिलित कर दिए गए हैं।
6. **विधि एवं न्याय विद्याशाखाएं** (School of Law and Justice): इस विद्याशाखा में निम्न विषयों का समावेश होता है– आपराधिक कानून, हिंदू कानून, मुस्लिम कानून, नागरिक कानून एवं अधिकार, क्षति का कानून, अंतर्राष्ट्रीय कानून, बाल एवं महिला विषय का कानून, घरेलू अत्याचार, बाल मजदूरी एवं बाल गुनहगार।
7. **वाणिज्य विद्याशाखा** (School of Commerce & Management): इस विद्याशाखा के अंतर्गत लेखा, बैंकिंग, बही–खाता/बुक कीपिंग, लेखपाल/ऑडिटिंग, टैक्सेशन, सी.ए., जी.डी.सी.ए., व्यवस्थापन संबंधित सभी शिक्षणक्रमों को समावेशित किया जाता है।
8. **ललित कला विद्याशाखा** (School of Fine Arts and Craft): इसके अंतर्गत ड्राईंग, पेंटिंग, संगीत, नृत्य, नाटक, शिल्पकलाएं आदि विषय समावेशित होते हैं।
9. **शिक्षाशास्त्र/शिक्षा विद्याशाखा** (School of Education): इस विद्याशाखा के अंतर्गत शिक्षाशास्त्र से जुड़े अध्यापक शिक्षक–प्रशिक्षण के सभी शिक्षणक्रम आते हैं, जैसे– डीईएलईडी, बी.एड., एम.एड., ईसीसीई, डी.एस.एम. (Diploma in School Management) सेवांतर्गत एवं सेवापूर्ण शिक्षक–प्रशिक्षण शिक्षणक्रम, विशेष अध्यापक शिक्षक प्रशिक्षण तथा बी.पी.एड एवं एम.पी.एड, अध्यापकों के उद्बोधन वर्ग (Orientation Course) एवं प्रबोधन वर्ग (Refresher Course) ऐसे कई शिक्षणक्रमों का समावेश किया जाता है।
10. **लोककलाएं विद्याशाखा** : भारत देश की विविधताओं के चलते प्रत्येक राज्य में स्थापित विद्यालयों में स्थानिक/संबंधित राज्य–कलाओं को विकसित करने तथा सांस्कृतिक धरोहर को संक्रमित करने हेतु लोककलाओं का शिक्षणक्रम विकसित कर चलाए जाने की सूचना दी जाती है। इसमें लोकसंगीत, लोककलाएं,

व्यावसायिक घरेलू उद्योगकर्ताओं को कलात्मक ढंग से सिखाकर प्रायोगिकता लाने के हर संभव प्रयास किए जाते हैं।

टिप्पणी

इस तरह से विश्वविद्यालयों में विभिन्न विद्याशाखाओं से जुड़े शिक्षणक्रमों तथा उनके अंतर्गत आने वाले विषयों का अध्ययन–अध्यापन कार्य चलता है। इसी के समानांतर विद्यालयों में भी विषयों के अभ्यास किए जाते हैं।

विद्यालयी शिक्षा में भाषाएं– सामान्य विज्ञान, सामाजिक शास्त्र (इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र) इन विषयों के साथ–साथ आजकल टेक्नोलॉजी, संगणक विज्ञान (ICT) तथा न्यूनतम कौशलों पर आधारित (Minimum Skill based) व्यावसायिक विषयों का समावेश किया जाने लगा है। किंतु इन परीक्षा पूरक विषयों से भी अलग कुछ विषय आते हैं, जिनकी परीक्षाएं नहीं ली जाती, केवल छात्रों के वर्तनादि निरीक्षण तथा व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से गुणांक या श्रेणियां देकर मूल्यांकन किया जाता है।

वे विषय होते हैं– मूल्य शिक्षा, समाजोपयोगी उत्पादक कार्य (S.U.P.W– Socially Useful Productive Work), समाजसेवा, व्यक्तित्व विकास से जुड़े– एन.एस.एस., एन.सीसी., आर.एस.पी., स्काऊट गाईड, होमगाड्र्स।

शिक्षा में विद्याशाखाओं के अंतर्गत आने वाले विषयों की व्याप्ति को निर्धारित करते समय कुछ विशेषताएं होती हैं, वे विशेषताएं हैं–

- प्रत्येक विद्याशाखा अध्ययन का विशिष्ट क्षेत्र है तथा उसकी विशिष्ट सामग्री विकसित की जाती है।
- प्रत्येक विद्याशाखा का पूर्वेतिहास एवं परंपराएं विनिर्दिष्ट होती हैं।
- प्रत्येक विद्याशाखा की संरचना के अंतर्गत एक अलग सोच, विचार एवं समझ होती है, यह सोच, समझ विशिष्ट क्षेत्र के साथ कार्य करती है।
- प्रत्येक विद्याशाखा की अपनी अनूठी संरचना सृजनात्मकता द्वारा बनाई गई होती है।
- प्रत्येक विद्याशाखा में शिक्षा अधिगम की स्वयं की विधियां विकसित की जाती हैं।
- प्रत्येक विद्याशाखा की अनुसंधान की अपनी विधि निर्धारित की जाती है।
- प्रत्येक विद्याशाखा के अनुसंधानों तथा अनूठे अनुभवों के आधार पर अपने स्वयं के विशिष्ट तरीकों को संगठित कर परिभाषित किया जाता है।
- प्रत्येक विद्याशाखा द्वारा शिक्षा के स्तर को विकसित करने का प्रयास किया जाता है।

अतः विद्याशाखा की संरचना तैयार करते समय उसके आशय को सम्मिलित करने वाली इकाइयों, उपइकाइयों में तार्किक संबंध विचाराधीन होने चाहिए। उसके बाद उनकी ससूत्र–रचना/बद्धता के साथ संरचना तैयार की जानी चाहिए। यह संरचना आकर्षक हो इसलिए वृक्षाकृति, भौमितिक आकृति प्रवाहकता (Flowchart) रूप में होनी चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

1. विशिष्ट ज्ञान का क्षेत्र एवं ज्ञान निर्माण करने की विशिष्ट प्रणाली को क्या कहते हैं?

   (क) विद्याशाखा (ख) अनुशासन

   (ग) ज्ञानानुशासन (घ) संरचना

2. आज जो विद्याशाखाएं उपलब्ध हैं उनको कितने भागों में वर्गीकृत किया गया है?

   (क) दो (ख) चार

   (ग) तीन (घ) पांच

3. विद्याशाखा के मुख्य घटक हैं—

   (क) विषय—वस्तु (ख) गृहितक

   (ग) पृच्छा पद्धति (घ) उपर्युकत सभी

1.3 संकाय या विद्याशाखीय ज्ञान का विकास : सामाजिक—राजनीतिक विश्लेषण

यहां पर संकाय या विद्याशाखीय ज्ञान के सामाजिक—राजनीतिक विश्लेषण के साथ—साथ प्राकृतिक सामाजिक, गणित तथा भाषा विज्ञानों के बारे में विवेचन किया जा रहा है।

1.3.1 संकाय या विद्याशाखीय ज्ञान के रूप में प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, गणित और भाषा का ऐतिहासिक विकास तथा सामाजिक—राजनीतिक विश्लेषण

विद्यालयों में विभिन्न विषयों की अध्यापनीय व्यवस्था द्वारा पाठ्यक्रम पूरा किया जाता है। अध्यापन की अपनी विशिष्ट प्रणाली होती है। पाठ्यक्रम का पूर्ण रूप से अध्यापन कर साध्य करना शिक्षा प्रणाली का मुख्य उद्देश्य होता है और शिक्षा से जुड़े मानवीय घटकों की यह जिम्मेदारी होती है।

शिक्षा प्रक्रिया, शैक्षिक विधाओं को स्वीकार करके उनमें सुयोग्य परिवर्तन करके नई विचारधाराएं एवं प्रगतिशील मान्यताओं को भी जोड़ा जाता है।

शिक्षा के अनेक उद्देश्य होते हैं। प्रत्येक राष्ट्र—समाज अपनी—अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ये उद्देश्य निश्चित करता है। इन उद्देश्यों को लेकर पाठशालाओं एवं महाविद्यालयों में विभिन्न विषयों के अध्यापन के हेतु भी निश्चित कराए जाते हैं।

''हमें क्या पढ़ाना है? क्यों पढ़ाना है? उसमें से छात्रों के लिए कौन से निश्चित परिवर्तन होने चाहिए'' यह अपेक्षिक है। दूसरे शब्दों में ''कोई भी विशिष्ट विषय पढ़ाने के कौन से उद्देश्य हों? उसमें विशिष्ट कक्षा के विशिष्ट घटकों के कौन से उद्देश्य हों?'' ऐसे प्रश्नों के विचारों को लेकर अध्यापन किया जाता है।

ब्लूम के द्वारा सुझाया गया उद्देश्यों का वर्गीकरण यहां उपयुक्त प्रतीत होता है, जिसमें निम्न बातों का समावेश किया गया है—

बोधात्मक एवं भावात्मक ज्ञान
↓
आकलन
↓
उपयोजन
↓
कौशल
↓
रसग्रहण
↓
अभिरुचि
↓
अभिवृत्ति

उद्देश्यों का वर्गीकरण (Taxonomy)

उपर्युक्त सभी अध्यापन कार्य के सर्वसामान्य उद्देश्य माने जाते हैं। उनको निश्चित रूप से पाने के लिए पाठ्यक्रम का संदर्भ लेना पड़ता है। पाठ्यक्रमों के उद्देश्यों के अनुसार दैनिक अध्यापन का आयोजन अपेक्षित होता है। इसलिए अध्यापकों द्वारा संपूर्ण विषयों के पाठ्यक्रम का अभ्यास/अध्ययन होना अत्यावश्यक होता है। शिक्षा प्रक्रिया अंतिमतः शिक्षकों द्वारा ही पूर्ण की जाती है।

पाठशाला स्तर पर पाठ्यक्रमों का निर्माण

प्रत्येक विद्याशाखा का विशिष्ट स्वरूप होता है। विद्याशाखा का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता किसी एक व्यक्ति के पास नहीं होती, इसलिए अपने विषय की विद्याशाखा का कौन–सा ज्ञान छात्रों को देना है? उनके द्वारा छात्रों में कौन–सा वर्तन परिवर्तन अपेक्षित है? कौन–कौन सी अभिरुचियों एवं अभिवृत्तियों का निर्माण उनमें हो। इसलिए विशिष्ट विद्याशाखाओं के शिक्षाविद् विचार करके पाठ्यक्रम का निर्माण करते हैं।

"विशिष्ट ध्येय, उद्दिष्टों के अनुसार किया गया विस्तृत एवं सुचारू अध्यापन 'अभिकल्प' यानी पाठ्यक्रम"।

यह सर्वसामान्य परिभाषा है। यह अभिकल्प (Design) जिन घटकों द्वारा किया जाता है वे पाठ्यक्रम के महत्वपूर्ण घटक माने जाते हैं। निम्न आकृति में देखिए–

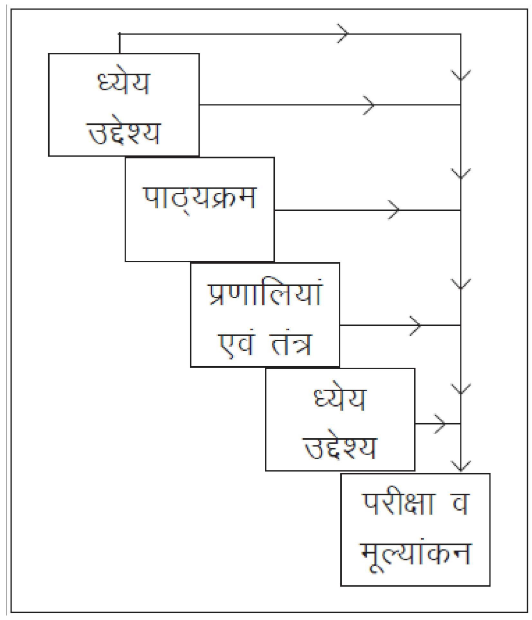

पाठ्यक्रम अभिकल्प

पाठ्यक्रम अभिकल्प में इन घटकों को विशिष्ट क्रम से रचा जाता है, उनको मिलाकर पाठ्यक्रम तैयार किया जाता है। इस आकृति के आधार पर पाठ्यक्रम की परिभाषा आगे दी जा रही है–

''निश्चित किए गए उद्देश्यों के अनुसार छात्रों के वर्तन में सुयोग्य दिशा से परिवर्तन लाने हेतु अध्यापकों का महत्वपूर्ण साधन 'पाठ्यक्रम' होता है।''

विद्याशाखीय ज्ञान का सामाजिक विश्लेषण

विद्याशाखाओं के समग्र निर्माण हेतु शिक्षा में पाठ्यक्रमों के अनुसंधानों से वर्तमान स्थिति में कुछ नये घटकों का उदय हुआ है। वे घटक हैं–

1. सामाजिक प्रेरणा एवं दबाव
2. मानव की विकासावस्था
3. अध्ययन का स्वरूप
4. ज्ञान का स्वरूप

1. सामाजिक प्रेरणा व दबाव– शिक्षा प्रणाली में अनेक प्रकार के दबाव हमें दिखाई देते हैं। जैसे–

- प्रकृति पर मानव का आक्रमण
- ऊर्जा समस्या
- जीवन मूल्यों का अभाव
- ग्रामीण एवं शहरी जीवनमान में फर्क
- शहर की तरफ बढ़ता जाने वाला जनसमुदाय
- सामाजिक न्याय एवं समानता
- धर्म एवं जातियों में संघर्ष और तनाव

टिप्पणी

- बढ़ते अपराधों की प्रवृत्तियां
- उद्योजकता का अभाव
- बढ़ती बेरोजगारी

इन दबावों के प्रभाव से शिक्षा प्रणाली अत्यधिक प्रभावित होती है। शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है, उसके द्वारा समाज में घटने वाले इन दबावों का विचार पाठ्यक्रम निर्माण में शिक्षाविदों को करना पड़ता है।

उदाहरणस्वरूप– बेरोजगारी समाज का महत्वपूर्ण अंग है। शिक्षा को उपजीविका का साधन माना जाता है, किंतु शिक्षा होकर भी यह समस्या युवा पीढ़ी को खोखला बना रही है।

2. मानव की विकासावस्था– जिनके लिए पाठ्यक्रमों का निर्माण किया जाता है, उनकी आयु एवं जीवनमान के बारे में संपूर्ण जानकारी शिक्षाविदों को होनी आवश्यक है। उनके वर्तन की कई प्रेरणाएं होती हैं। व्यक्ति की शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक तथा नैतिक विकास की अवस्थाएं कम होनी चाहिए।

एरिकसन आसुबेल, कोहलबर्ग एवं जीन पियाजे आदि मनोवैज्ञानिकों ने उनके दीर्घकालीन अनुसंधान के बाद मानवीय विकासावस्थाओं पर प्रकाश डाला है तथा उन्होंने ही अध्ययन के स्वरूप एवं ज्ञान के स्वरूप पर भी अपना ध्यान केंद्रित करके विकासावस्था को जोड़ा है। उनके ज्ञानभंडार की ओर लक्ष्य केंद्रित करके पाठ्यक्रम का निर्माण होना अपने आप में ही पाठ्यक्रम हेतु विद्याशाखाओं की उत्क्रांति का एक महत्वपूर्ण मार्ग पर चलना है।

पाठ्यक्रम आशय का संगठन करके तथा रचना एवं अपेक्षित अध्ययन हेतु अध्यापक द्वारा छात्रों एवं समाज तक पहुंचाने का महत्वपूर्ण साधन है। शिक्षा की विभिन्न प्रकृतियों द्वारा पाठ्यक्रम का निर्माण होना अत्यावश्यक है। इसमें मनोविज्ञान तथा वैज्ञानिक प्रवृत्ति का अभ्यास हो, पाठ्यक्रम की रचना के प्रकारों का विचार हो। समाजशास्त्रीय प्रवृत्ति द्वारा पाठ्यक्रम का निर्धारण हो। इस तरह शालेय स्तर पर विषयों के निर्धारण का विचार भी इनके अध्ययन में आ जाता है।

पाठ्यक्रमों की रूपरेखा में निम्न विषयों को समावेशित किया जाना आवश्यक है–

विषय सूची

1. सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विकास के तौर पर परिवार का अभ्यास (Study of family through Social, Political and Financial Development)
2. स्वास्थ्य शिक्षा (Health Education)
3. शारीरिक शिक्षा (Physical Education)
4. भाषा अभ्यास (Language Edn.)
5. गणित अभ्यास (Mathematics Edn.)
6. सामाजिक अध्ययन (Social Studies)
7. संगीत एवं कलाएं (Music & Arts)
8. जलवायु शिक्षा (Veporisation Education)

9. कृषि शिक्षा (Agricultural Edn.)
10. व्यवसाय एवं उद्योग (Business Edn.)
11. वाणिज्य एवं व्यापारिक शिक्षा (Commerce & Trade Edn.)
12. परिवहन शिक्षा (Transportion Edn.)
13. सामुदायिक स्वच्छता (Public Cleanliness Edn.)
14. जनसंख्या शिक्षा (Population Edn.)
15. प्रारंभिक विज्ञान शिक्षा (Primary Science Edn.)
16. पर्यावरण शिक्षा (Environmental Edn.)
17. राजनीतिक शिक्षा (Political Edn.)
18. खाद्य संबंधी उत्पादनीय क्षेत्र शिक्षा (Food Product Education)
16. जीवनशैली शिक्षा (Lifestyle Edn.)
20. विद्युतिकरण एवं सुविधा शिक्षा (Electric Generation Edn)
21. कपड़ा उद्योग व पोशाक निर्माण (Textile & Attire, Fashion Designing)
22. ऊर्जा निर्मिति (जनशक्ति, परमाणु शक्ति, वायुरूप ऊर्जा, जल ऊर्जा, पशु शक्ति) शिक्षा (Various Energies of Neuclear Energy Edn.)
23. यांत्रिक उद्योजकता शिक्षा (Mechanical Industrialisation Edn.)
24. राजनीतिक व्यवस्था शिक्षा (Political System Edn.)
25. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी शिक्षा (Science & Technology Edn.)
26. बुनियादी शिक्षा (Foundation Education)
27. प्रयोगात्मक कलाएं (Experimental Arts)
28. प्राणिशास्त्रीय विज्ञान (Zoological Science)
29. जिविकोपार्जित विषय शिक्षा (Living Subject Education)
30. सांस्कृतिक जीवन शिक्षा (Cultural Life Education)

शिक्षा विकसित करने हेतु ऐसी ही अनेक विद्याशाखाओं का निर्माण होता गया। शिक्षा व्यक्ति एवं समाज के लिए दो प्रकार के कार्य करती है– एक समाज की संस्कृति एवं परंपरा का संक्रमण और दूसरा सामाजिक विकास।

विद्याशाखीय ज्ञान का राजनीतिक विश्लेषण

मनुष्य समाज में हर तरह से अपना जीवन जीता है, विचार विनिमय के द्वारा विकसितता की ओर बढ़ता है। अनेक व्यक्तियों, संस्थाओं एवं संघटनाओं से व्यक्ति का संबंध होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपना–अपना आर्थिक व्यवहार, सुविधाएँ, ज्ञान वृद्धि की व्यावहारिकता के कारण बनाता है। इसी क्रियान्वयन से प्रत्येक व्यक्ति भौतिक विकास की भी अपेक्षा रखता है। इसकी नींव शिक्षा से जुड़ी होती है।

विद्याशाखीय ज्ञान हेतु विद्यालयी विषयों में नागरिक शिक्षा का समावेश अनिवार्य होता है, जिसके द्वारा छात्रों को चिंतनशील सामाजिक–राजनीतिक जानकारी मिलेगी। किसी प्रख्यात, प्रसिद्ध राजनीतिक व्यक्ति की विविध राजनीतिक दशाओं के अनुभव पर

भी प्रकाश डालते हुए आशयों का इकाइयों में समावेशन करने से राजनीतिक ज्ञान में वृद्धि हो सकती है।

टिप्पणी

राजनीति विज्ञान (Political Science) के द्वारा अनौपचारिक सामाजिक एवं राजनीतिक निर्णयों का निर्माण व गतिशीलताओं (Mobility) का निर्माण शिक्षा के विकास में पोषक होता है। संवैधानिक मूल्यों तथा अधिकारों को प्रजातंत्र न्याय एवं समानता के तत्वों से जोड़कर शिक्षा द्वारा विश्वास बढ़ाया जाता है।

शैक्षिक शास्त्र सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक अभ्यास के बिना निर्मित नहीं है। शिक्षा के लक्ष्य राष्ट्र की सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था के लक्ष्यों पर आधारित होते हैं। उन्हीं के आधार से शिक्षा व्यवस्था में अपेक्षित परिवर्तन लाए जाते हैं। जैसे– विद्यालयी शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक की संरचना का एकसमान होना। राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था हेतु राष्ट्रीय परिचर्या की रूपरेखा को अपनाना। राष्ट्रीय एकता, अंतर्राष्ट्रीय समझ एवं विश्वबंधुता, शिक्षा व्यवस्था के इन मूलभूत सिद्धांतों का प्रभाव शिक्षा पर होना। इस प्रकार राजनीतिक विचारधाराएं विविधता, समता एवं समानता के द्वारा देश की शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित करती हैं।

विद्याशाखीय ज्ञान को विकसित करने हेतु राजनीतिक व्यक्तियों एवं संस्थाओं द्वारा सभी शिक्षा स्तरों के वित्तीय संसाधनों को जुटाने तथा समुदायों का शिक्षा संबंधी व्ययों को जुटाने के प्रयास करने होते हैं। शिक्षा की लागत (Investments) को वहन करने हेतु समाज की आर्थिक स्थिति का विचार भी जोड़ा जाता है क्योंकि समाज के सदस्य ही अपने बच्चों को शिक्षा हेतु पाठशालाओं, विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में भेजते हैं।

राजनीतिक पक्ष, सरकारें जब शिक्षा संबंधी नीतियाँ बनाते हैं, तब प्रत्यक्ष सरकारी नियंत्रण एवं संवैधानिक कानूनों के निदेशक तत्व सबके लिए एक समान एवं बाध्य होते हैं। अतएव शिक्षा द्वारा तथा विषय अभ्यास द्वारा राजनीति के प्रति व्यक्तिगत लगाव व विकास में वृद्धि की जा सकती है। छात्रों को संवैधानिक अधिकारों के साथ–साथ देश के भविष्यकालीन नागरिक होने के नाते राजनीति के संदर्भ में जिम्मेदारियों का पालन करने का अहसास दिलाना अत्यावश्यक हो जाता है। विद्याशाखीय ज्ञान द्वारा विद्यालयी विषयाध्यापन से स्थानीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक विचारों के सन्मुख करना होगा।

1. प्राकृतिक विज्ञान

'विज्ञान' शब्द प्रयोग ही प्राकृतिक विज्ञान के नाम से जाना जाता है। प्राकृतिक विज्ञान प्रकृति और भौतिक संसार का व्यवस्थित ज्ञान है। इसी को नैसर्गिक विज्ञान कहते हैं। नैसर्गिक विज्ञान निरीक्षण एवं प्रयोगों से प्रयुक्त, प्रायोगिक दावों के आधार पर नैसर्गिक या प्राकृतिक समस्याओं का विवरण एवं आकलन से संबंधित विज्ञान की एक शाखा है।

अनुसंधान एवं निष्कर्षों की पुनरावृत्ति जैसे उपकरणों का उपयोग कर वैज्ञानिक प्रगति की वैधता सुनिश्चित की जाती है।

प्राकृतिक विज्ञान की प्रमुख शाखाएं हैं–

1. भौतिकी शास्त्र
2. रसायनशास्त्र

टिप्पणी

3. जीव विज्ञान या जीवशास्त्र

4. समाजशास्त्र

प्राकृतिक विज्ञान विद्याशाखा प्राकृतिक घटनाओं से संबंधित है, जैसे– सूर्य का उगना एवं अस्त होना। भूकम्प एवं आकाशीय तारे आदि प्राकृतिक घटनाओं के स्वाभाविक उदाहरण हैं। प्राकृतिक विज्ञान के प्रयोगों से विषयों से मिली सामग्री ग्राफ के माध्यम से सामने आती है। जीव विज्ञान के अंतर्गत जीवन के गतिविधियों के निष्कर्षों का विवरण देकर अध्ययन करते हैं। रासायनिक विज्ञान के अंतर्गत संश्लेषण, रासायनिक सूत्र व आंतरिक संरचनाएं भी शामिल होती हैं। वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग करके वर्तमान स्थिति में उपयुक्त सामग्री के चयन में वैज्ञानिक तथ्यों और सिद्धांतों का भरसक प्रयोग किया जाना भी आज की मांग है।

प्राकृतिक विज्ञान के अंतर्गत गणित भी आता है। बीजीय अनुपात, रेखांकन, ज्यामितीय (Geomatrical) सांख्यिकी आदि विज्ञान के उपयोग के साधन हैं। प्राकृतिक विज्ञान के समन्वय की गणना में उपयुक्त साधनों का प्रयोग किया जाता है। जीव विज्ञान के अंतर्गत जीवन की गतिविधियों के निष्कर्षों का वर्णन आता है। रसायनशास्त्र विज्ञान के अंतर्गत संश्लेषण, रासायनिक सूत्र, आंतरिक संरचना में गणित, ज्यामिती सहायक होते हैं।

2. सामाजिक विज्ञान

जिसमें मानव की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक गतिविधियों का अध्ययन किया जाता है, उसे सामाजिक विज्ञान कहते हैं।

इसके अंतर्गत पुरातात्विक खोजों, सामाजिक रीतिरिवाजों, जाति–धर्म, चुनाव–प्रणालियों, यातायात, कृषि, खनन आदि विभिन्न प्रकार के कार्यों का समावेश किया जाता है। मानव के अधिकार एवं कर्तव्यों की भी जानकारी दी जाती है। मानव के संपूर्ण विकास हेतु सामाजिक विकास का अध्ययन जरूरी होता है।

महत्व : सामाजिक विज्ञान का अध्ययन व्यक्ति की समाज में रहने की समझ विकसित करता है। मानव की एक–दूसरे के प्रति, पशु पक्षियों के प्रति, पर्यावरण के प्रति सामाजिक कार्यों और दायित्वों की समझ विकसित की जाती है। इस प्रकार एक स्वस्थ एवं विकसित समाज का निर्माण होता है।

सामाजिक विज्ञान में सम्मिलित विषय

- इतिहास
- भूगोल
- नागरिकशास्त्र
- अर्थशास्त्र

इतिहास : ऐतिहासिक घटनाओं में मानव का विकास, रीति–रिवाज, सभ्यता संस्कृति का ज्ञान, समय के साथ हुए परिवर्तन, पुरातात्विक स्थल, प्राचीन मानवीय सभ्यता का आकलन होने में मदद मिलती है।

प्रसिद्ध इतिहासकार हिरोडोट्स (Herodotus) को इतिहास का जनक माना जाता है, उन्होंने इतिहास में निम्न विषयों को समाविष्ट किया है–

टिप्पणी

- यूरोप में राष्ट्रवाद का उदय
- भारत में राष्ट्रवाद का उदय
- भूमंडलीय विश्व का निर्माण
- औद्योगीकरण का युग
- मुद्रण कला और आधुनिकता

विज्ञान एवं गणित जैसे विषयों को भी सामाजिक विज्ञान में समाहित करके इसके महत्व को विशद किया गया।

सामाजिक विज्ञान मनुष्य, मानव समाज, सामाजिक समूह एवं मनुष्य के सामाजिक संस्थाओं के साथ संबंध आदि से जुड़ा है। इतिहास में घटनाओं का विश्लेषण, आविष्कार एवं खोज के विस्फोट ने इतिहास के पाठ्यक्रम को बदल दिया है। सांस्कृतिक इतिहास पर विज्ञान के प्रभावों को भी देखा जाता है।

भूगोल : भूगोल यानी पृथ्वी का अध्ययन। इसमें पृथ्वी के बाह्य स्वरूप और उसके प्राकृतिक विभाग जैसे– पर्वत, पठार, देश–राष्ट्रों, नदियों, झीलों, समुद्र–वन, संपदा, पशु–पक्षियों की जानकारी का अध्ययन किया जाता है। भूगोल को भौगोलिक विज्ञान भी कहा जाता है। इसमें किसी भी वस्तु की सिद्धता का महत्व होता है।

भूगोल विद्याशाखा में निम्न विषयों को शामिल किया जाता है–

- संसाधन एवं विकास
- जल संसाधन
- जंगल एवं वन्य जीव संसाधन
- कृषि
- खनिज एवं ऊर्जा संसाधन
- विनिर्माण उद्योग
- राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की जीवन रेखाएं

जीवन में प्रत्यक्ष दिखने–वाले तथा घटने वाली घटनाओं का सटीक एवं कारण ढूंढ़ना ही भूगोल विद्याशाखा के अध्ययन में निर्धारित होता है।

भूगोल का यदि प्राकृतिक विज्ञान के सामाजिक–राजनीतिक विश्लेषण के द्वारा विचार किया जाए तो पर्यावरण विषय जुड़ जाता है।

नागरिकशास्त्र (लोकतांत्रिक राजनीति): इसमें मानव की राजनीति एवं सामाजिक कर्तव्यों तथा दायित्वों का अध्ययन किया जाता है। इसमें समाज में सम्मिलित जाति–धर्म, संगठन, चुनाव प्रणालियों का समावेश भी आता है।

इसका जनक यूनानी विद्वान अरस्तू को माना जाता है।

नागरिकशास्त्र में समावेशित विषय–

- सत्ता की साझेदारी
- संघवाद
- लोकतंत्र और विविधता
- जाति धर्म और लैंगिक विषय
- जनसंघर्ष और आंदोलन
- राजनीतिक दल

नागरिकशास्त्र अच्छी नागरिकता का अध्ययन है। यह नागरिकता के सैद्धांतिक, राजनीतिक एवं व्यावहारिक पक्षों का अध्ययन है। नागरिकशास्त्र में नागरिक कानूनों

और नागरिक संहित (Goodness) का अध्ययन तथा नागरिकों की भूमिका को दृष्टिगत रखते हुए सरकार का अध्ययन आदि सम्मिलित होते हैं।

अर्थशास्त्र : सामाजिक विज्ञान का महत्वपूर्ण संबंधित विषय है–अर्थशास्त्र। इसमें आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। जनसामान्यों का कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्रों में उत्पादन में सहभाग लेना। उत्पादित वस्तुओं का परिवहन एवं बिक्री, सरकारी योजनाओं का क्रियान्वयन इसमें आता है।

इसका जनक ब्रिटिश विद्वान एडम स्मिथ को माना जाता है।

अर्थशास्त्र में समावेशित विषय–

- विकास
- भरतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्र
- मुद्रा अभ्यास
- अर्थव्यवस्था व वैश्वीकरण
- उपभोक्ता अधिकार

अर्थशास्त्र में इनका समावेश किया जाता है।

सामाजिक विज्ञान विद्याशाखा से जुड़ी शाखाएं

नृविज्ञान (Anthropology)– इसमें अर्थशास्त्र (Economics), शिक्षाशास्त्र (Education), भूगोल (Geography), इतिहास (History) उपशाखाएं सम्मिलित हैं।

सामाजिक विज्ञान में तथ्यों का विश्लेषण एवं संश्लेषण किया जाता है। कार्य करने की प्रणाली का अध्ययन यहां जरूरी होता है। सामाजिक विज्ञान तथ्यों के कारण एवं परिणाम का संबंध स्पष्ट करके सामान्यीकरण करता है। इस प्रकार से व्यावहारिकता का ज्ञान प्रदान करता है।

अर्थशास्त्र– सामाजिक विज्ञान की वह शाखा है, जिसके अंतर्गत वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, वितरण, विनिमय और उपभोग का अध्ययन किया जाता है। अर्थशास्त्र की 'व्यष्टि अर्थशास्त्र' तथा 'समष्टि अर्थशास्त्र' ये दो प्रमुख शाखाएं होती हैं।

अंकगणित विज्ञान– अंकगणित विद्याशाखा पूर्ण रूप से तर्कसंगत एवं तार्किक है। गणितीय आकलन प्राकृतिक विज्ञान का ही अंश है। कई विषय हैं जो गणित के बिना पूर्ण नहीं हो सकते क्योंकि गणितीय विद्याशाखा का क्षेत्र अधिक व्यापक है। प्राकृतिक विज्ञान और गणित का समन्वय जोड़ा गया है। प्राकृतिक विज्ञान से मिली सामग्री (Data) को ग्राफ (Graph) के रूप में रूपांतरित किए जाने में गणित की सहायता मिलती है।

पाठशाला शिक्षा में गणित अत्यावश्यक विषय माना जाता है। यह दसवीं कक्षा तक अनिवार्य भी है। पाठशाला शिक्षा में गणित के साथ आने वाली समस्या का संबंध गणित की प्रकृति से है। इसीलिए प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण में यह दृष्टिकोण दृढ़ हो गया है कि, सभी स्तरों पर गणित की शिक्षा अनिवार्य हो ताकि छात्रों की गणितीय विचार प्रक्रिया विकसित हो।

अंकगणित विद्याशाखा में गणित शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं। गणित किन चीजों से निर्मित होता है। अंकों पर की जाने वाली क्रियाएं कौन सी हैं? केवल जोड़ना–घटाना, गुणन एवं भाग देना, यही गणन क्रियाएं गणित का मूल हैं? छात्रों की

टिप्पणी

सोच का गणितीकरण करना यह कोई एक बार घटने वाली घटना नहीं है। इसलिए गणितीय क्रियाएं गणित का अहं हिस्सा मानी जाती हैं।

पूर्वप्राथमिक तथा प्राथमिक कक्षाओं में गणितीय ज्ञान अमूर्त (Abstract) ही होता है। कुछ बुनियादी तत्व अमूर्त ही होते हैं। उनका अस्तित्व वस्तुओं तथा मानव मस्तिष्क से स्वतंत्र है।

गणित के अध्ययन से मस्तिष्क में तर्क करने की आदतें स्थापित होती हैं।

गणित शिक्षा के उद्देश्य

गणित पढ़ने वाले छात्रों में तर्कशक्ति को विकसित करना, गणितीय सिद्धांतों का प्रयोग एवं उपयोजन करना, तथ्यों को याद करना, तर्कशक्ति द्वारा प्राप्त परिणामों को स्पष्ट एवं शुद्धता से स्वीकार करना, छात्रों को अनुशासन प्रिय बनाना, प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आने वाले कार्यों में व्यवहार्यता का बोध गणित ज्ञान द्वारा संपादित करना गणित शिक्षा के उद्देश्य हैं।

रेने डेस्ककार्ट्स, बर्ट्रेंड रसेल, मार्टिन ह्यूज इन गणितीय विशेषज्ञों ने इस विद्याशाखा में अपना योगदान दिया है। जीन पियाजे, वाईगोत्सकी के योगदान से छात्रों की कक्षा में सक्रियता–निष्क्रियता का विचार होने लगा। गणित विषय में इसकी जरूरत का विचार महत्वपूर्ण रहा। यही सक्रियता ज्ञान निर्माण में पोषक होती है। ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में पुनर्आविष्कार होकर आशय ज्ञान में वृद्धि होती है।

गणित विद्याशाखा के अध्यापन हेतु उद्गमन एवं संकल्पना निर्मिति एवं सामान्य निष्कर्ष निकालने हेतु उद्गम प्रणाली का उपयोग किया जाता है तथा कुछ निश्चित नियमों, तत्वों का व्यवहार में उपयोग कर परखना यह अवगमन प्रणाली में आता है।

विशेषताएं

1. अंकों से बनी संख्याओं का अभिकलन (Computation) करने वाली एक शाखा।
2. संख्याओं का जोड़–घटाव, गुणा–भाग करने वाली विद्या।

4. भाषा विज्ञान

भाषा की रचना भाषायी कौशलों द्वारा निर्मित होती है। भाषा का उपयोग संप्रेषण एवं अभिव्यक्ति के लिए करना आवश्यक है। केवल भाषा के अभाव के कारण प्रगति में बाधा आती है। भाषा का उपयोग किसी भी चीज को सीखने, किसी भी विषय के अध्यापन में महत्वपूर्ण होता है।

साहित्य का माध्यम भाषा है तथा भाषा ही समाज का प्रतिबिंब होती है। भाषा के माध्यम से ही प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक छात्र अपना व्यक्तित्व बनाता है तथा जीवन के पहलुओं को उजागर करता है। अपनी सामाजिक–सांस्कृतिक धरोहर को सीखने एवं अपनाने के लिए भाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भाषा का सर्वस्वी संबंध साहित्य विधाओं से आता है। साहित्य के सृजनात्मक रूपों को ग्रहण करने में भाषा सहयोग देती है।

बेंजामिन ली व्होर्फ (Benjamin Lee Whorf) के अनुसार, भाषा विचार के अंतर्संबंधों का निर्धारण करती है। भाषायी प्रयोगों द्वारा भाषायी वर्गों एवं संरचनाओं की

उपलब्धता के आधार पर सभी भाषाओं में विचारों की गुणवत्ता का एक ही स्तर पर पाया जाना संभव है।

भाषा विज्ञान केवल भाषाध्ययनों में नहीं बल्कि साहित्याभ्यास में भी अत्यंत उपयोगी होता है। साहित्य में विभिन्न भाषाएं एवं विभिन्न प्रकार होते हैं। इनका निर्माण एवं संरक्षण का संपूर्ण ज्ञान भाषा विज्ञान के द्वारा किया जाता है।

उपयोगिता एवं महत्व

भाषा विज्ञान विद्याशाखा की उत्पत्ति एवं विकास के विचार में भाषाध्ययन मूलाधार होता है। अतः भाषा विज्ञान की उपयोगिता एवं लाभ सर्वोपरि होते हैं। विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों में अध्ययन एवं अनुकरण/अनुसरण में फर्क दिखाई देता है। भाषा विज्ञान से संपूर्ण शब्दों का ज्ञान होता है। शब्दों अक्षरों से संपूर्ण विकास धारा परिवर्तनीय बनती है। शब्दों के द्वारा ही भाषा का संपूर्ण बोध मनुष्य को अवगत होता है।

इसलिए भाषा विद्याशाखा द्वारा शब्दार्थ परिवर्तन की दिशाएँ एवं उनके कारणों का सम्पूर्ण बोध कराने के कारण भाषा विज्ञान विद्याशाखा की उपयोगिता सिद्ध होती है।

भाषा विज्ञान विद्याशाखा का विकास

भाषा विज्ञान की ऐतिहासिक खोज विभिन्न अन्वेषणों के द्वारा की जाती है। भाषाओं के मूल उद्‌गम एवं मूल स्रोंतो की खोज करते समय विभिन्न भाषा–भाषियों के रीति–रिवाज, स्रोतों, व्यवहार, खानपान, बौद्धिक विकास, राजनीतिक उपलब्धियां, धार्मिक एवं आर्थिक प्रगति की जानकारी प्राप्त होती है। भाषा विकास के विचार में प्राचीन संस्कृति व सभ्यता का परिचय, भाषा की शुद्धाशुद्धता, दस्तावेजीकरण तथा उसके विवेचन का समावेश होता है।

सबसे पहले यह कार्य पाणिनी ने अपने ''अष्टाध्यायी'' ग्रंथ में विनिर्दिष्ट किया है।

जीन पियाजे मनोवैज्ञानिक का मानना है कि, भाषा केवल विचारों का निर्धारण ही नहीं करती बल्कि, उच्च भाषा के द्वारा बालक/व्यक्ति आंतरिक निरूपण भी करते हैं। विचार प्रक्रिया में भाषा एकमात्र साधन होती है। भाषा को समझने के लिए 'विचार' एक महत्वपूर्ण तत्व है।

भाषा विद्याशाखा अध्ययन के रूप में दो प्रकार से कार्यरत होती है– (1) सैद्धांतिक पक्ष (Theoretical Linguistics) (2) व्यावहारिक पक्ष (Applied Linguistics)

भाषाशास्त्र विद्याशाखा

स्वरूप	**शाखाएं**
1. शैक्षिक अध्ययन के रूप में	1. सैद्धांतिक भाषाशास्त्र
2. विज्ञान के क्षेत्र के रूप में	2. वर्णनात्मक भाषाशास्त्र
3. सामाजिक विज्ञान के रूप में	2. व्यावहारिक भाषाशास्त्र

भाषाशास्त्र विद्याशाखा : स्वरूप व शाखाएं

अपनी मातृभाषा का आदर रखते हुए अन्य भाषाओं से भी प्रेम करें। तभी सच की भांति हम प्रगति कर सकेंगे तथा विद्याशाखाओं के अभ्यास/अध्ययन में गति ला सकेंगे।

1.3.2 विद्याशाखीय ज्ञान की आलोचनाएं / समीक्षा

प्राचीन भारतीय आश्रम शिक्षा प्रणाली, मध्ययुगीन धर्म संस्थात्मक शिक्षा पद्धति तथा आधुनिक ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली ऐसे तीन कालखंड भारत की शिक्षा प्रणाली में माने जाते हैं। वेद काल के चारों वेद भी ज्ञान ही हैं। वेद मतलब विभिन्न प्रकार का ज्ञान एवं अलग–अलग विद्याशाखाओं का ज्ञान।

प्राचीन काल में ग्रीक संस्कृति काल में 'तत्वज्ञान' दर्शनशास्त्र एकमेव विद्याशाखा थी। शुरू में जब कोई विद्याशाखा विकसित होती है तो वह एक उपशाखा होती है। धीरे–धीरे उसमें अनुसंधान होते–होते उसका रूपांतरण विद्याशाखाओं में होता है एवं नई विद्याशाखा में होता है। मूल विद्याशाखा एवं नई विद्याशाखा बनती है। इसी में से अंतर–विद्याशाखीय दृष्टिकोण (Interdisciplinary Approach) विकसित हुआ है।

पाठशाला पाठ्यक्रमों में विद्याशाखीय ज्ञान की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। पाठशाला स्तर पर विचार करते हुए हमने 10+2+3 का अभिकल्प संपूर्ण देशीय स्तर पर स्वीकारा हुआ है। माध्यमिक स्तर पर अलग–अलग शालेय विषयों का अभ्यास किया जाता है। उच्च माध्यमिक स्तर पर शाखानिहाय विषय योजना होने के कारण प्रत्येक शाखा में अभ्यास विषय के कई विकल्प चुनने का अवसर मिलता है।

विद्याशाखीय ज्ञान की शालेय पाठ्यक्रम में भूमिका समझ लेने के लिए अध्यापक का अध्ययन महत्वपूर्ण होता है।

विद्याशाखाओं का विकास इन दो बातों पर निर्भर होता है–

1. विद्याशाखा के ज्ञान का परिपूर्ण आकलन अध्यापक को होना चाहिए।
2. विद्याशाखा को क्यों स्वीकार करना है, उसके कारण, आवश्यकता एवं उपयुक्तता की जानकारी होनी चाहिए।

अध्यापक की भूमिका : छात्रों के दैनंदिन जीवन में आने वाली समस्याओं का निराकरण कैसे किया जाय? इस हेतु सर्वंकष बुद्धि का विकास तथा सर्जनशीलता का विकास विद्याशाखाओं के माध्यम से हो जाता है। यह अध्यापक द्वारा किया जाने वाला कार्य है।

विद्याशाखीय ज्ञान मानवीय बुद्धि की शक्तियों एवं उसकी सीमाओं से अवगत कराता है। मनुष्य इस विश्व को 'विश्व में अपने अस्तित्व को' जानने की इच्छा रखता है। ज्ञान की यह खोज मात्र अध्ययन हेतु या औपचारिक रूप में त्रुटियों को दूर करना नहीं है। विश्व एवं स्वयं की वास्तविकता का ज्ञान हमें जीवन के विभिन्न उद्देश्यों को पाने में सहायता करता है। यह ज्ञान हमारे जीवन को सुंदर और प्रसन्न बनाता है। विद्याशाखीय ज्ञान हमें असत्यता से मुक्त कराता है तथा विचारपूर्वक सत्य को पाने के लिए प्रेरित करता है। कुछ सिद्धांत भी प्रदान करता है। विद्याशाखा का ज्ञान मनुष्यों को सुकरात (Socretise) का सिद्धांत 'स्वयं को जानो' को समझने में सहायता प्रदान करता है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

4. प्राकृतिक विज्ञान की प्रमुख शाखाएं हैं–
   (क) भौतिकीशास्त्र (ख) जीवशास्त्र
   (ग) (क) और (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं
5. भूगोल विद्याशाखा में शामिल किया जाता है–
   (क) संसाधन एवं विकास (ख) जल संसाधन
   (ग) कृषि (घ) उपर्युक्त सभी
6. नागरिकशास्त्र में समावेशित विषय है–
   (क) सत्ता की साझेदारी (ख) मुद्रा अभ्यास
   (ग) विकास (घ) उपभोक्ता अधिकार

1.4 विद्याशाखीय ज्ञान : विशेषताएं

प्रत्येक विद्याशाखा सुनिश्चित आशयवस्तु का अभ्यास कराती है जिसमें विशिष्ट घटना, वस्तु, क्रिया–प्रक्रिया, जीवन से जुड़े घटक, समाज से जुड़े घटक का समावेश होता है, इसलिए इनका अभ्यास भी अनिवार्य होता है। विद्याशाखाओं के ज्ञान से संबंधित समस्याओं का एवं आवश्यकताओं का स्वरूप तथा उनके अर्थनिर्वचन हेतु कृतियों के बारे में विद्याशाखा में गृहितक समेटे हुए होते हैं। इसी प्रक्रिया से मूलभूत गृहितकों से संबंध जोड़ने का कार्य प्रमाणक एवं कार्यपद्धति द्वारा किया जाता है।

विद्याशाखीय ज्ञान में विशिष्ट बौद्धिक तथा सामाजिक कार्य भी निहित होते हैं। वैसे ही हर विद्याशाखा की अपनी खुद की पृच्छा पद्धति, ज्ञान निर्मिति, अनुसंधान के साधान, मार्ग तथा अधिगम भी होते हैं। इन सबका उपयोग एवं विचार करके विभिन्न घटनाएं क्यों घटती हैं? इनका जवाब एवं अंदाज बांधकर उन घटनाओं का स्पष्टीकरण देने के नियम विद्याशाखा द्वारा निर्मित किए जाते हैं। इन्हीं पृच्छाओं से संकल्पनाएं, सामान्यीकरण तथा उपपत्तियों का निर्माण होता है, तथा उनकी रचना भी की जाती है और उनका सुव्यवस्थित रीति से सुसंगठन भी किया जाता है।

उपर्युक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए विद्याशाखा का अध्ययन किया गया तो अध्यापकों को लगेगा कि विद्याशाखा एक जटिल क्षेत्र है, मगर उसका महत्व भी उतना ही अधिक हो रहा है, क्योंकि अध्यापक के आशयज्ञान अभिवृद्धि (Content enrichment) के लिए यह आवश्यक भी है। इन सबके बावजूद विद्याशाखीय ज्ञान की विशेषताएं निम्न आकृति में भी दी जा रही हैं, जिनका हमें सूक्ष्मता से अभ्यास करना होगा–

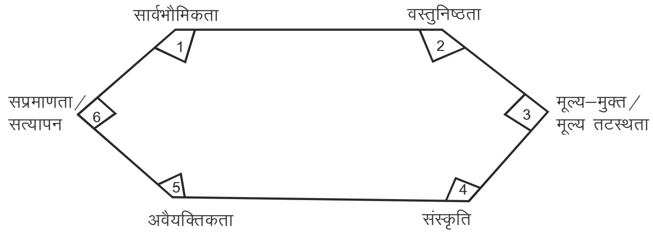

विद्याशाखीय ज्ञान की विशेषताएं

टिप्पणी

1.4.1 सार्वभौमिकता

सार्वभौमिकता (Universalisation) सोच का एक तरीका है, सोच का एक रूप है। 20वीं सदी के अंत तक इस पर बहस हो रही थी। धर्मों के बारे में आलोचनाएं हुई। धर्मशास्त्र में सार्वभौमिकता वह शिक्षण है जो ईसाई संप्रदाय के सिद्धांत और व्यवहार थे, वे सार्वभौमिक मुक्ति में विश्वास का समर्थन करते थे।

दर्शन में सार्वभौमिकता प्राकृतिक घटना की धारणा के समान है तथा एक नैतिक विश्व दृष्टि भी है। सार्वभौमिकता के सिद्धांतों के अनुसार मान्यता और दूरदर्शिता के व्यक्तिगत अनुभव, जो शोधकर्ता के पास हैं मगर उसे उनका कोई महत्व नहीं होता सार्वभौमिकता सोच का रूप है जो ब्रह्मांड को समग्र रूप मानता है।

सार्वभौमिकता के हेतु विश्व का दृष्टिकोण और नैतिकता, यह सामाजिक दुनिया का एक तरीका है। इसका गठन और परिवर्तन एक विकासशील और बदलते विषय अनुभव के ढांचे के भीतर होता है। इस तरह यह एक संपूर्ण प्रणाली है। इस प्रणाली द्वारा घटकों में परिवर्तन आता है। नैतिक दृष्टिकोण में इस प्रणाली के तत्त्व होते हैं, वे तत्व हैं—

1. स्पष्ट संरचना एवं निहित नैतिक सिद्धांत,
2. नैतिक प्रतिबिंब,
3. भावनात्मक रवैया,
4. दुनिया की नैतिक तस्वीर।

सार्वभौमिकता में सोचने की प्रक्रिया में गठन और विकास निर्धारित होता है, जिसमें अवधारणा, निर्णय एवं निष्कर्ष सम्मिलित होते हैं।

अवधारणा एक विचार होता है, जो सामान्यतः, आवश्यक गुणों, वस्तुओं और घटनाओं के परस्परावलंबी प्रतिबिंब होते हैं। यह प्रतिबिंब विभाजित, समूहीकृत एवं वर्गीकृत भी किया जाता है। सार्वभौमिक निर्णय—विचार का एक रूप होता है जो अवधारणाओं के बीच के संबंधों के अस्तित्व पर जोर देने या अस्वीकार करने की अनुमति देता है। उसी तरह सार्वभौमिक आविष्कार सोच का संचालन होता है।

दर्शन के अनुसार अवधारणा का रूप हमेशा तर्क होता है। वे मात्र प्रकृति और तर्कसंगतता के बारे में सोचने की कोशिश करते हैं। शोधकर्ता समुदाय के माध्यम से यह कार्य करते हैं। चार्ल्स पियर्स ने इमैन्युएल कांट के पारमार्थिक आदर्शवाद का अध्ययन करने और विज्ञान के दर्शन में इसकी प्रासंगिकता दिखाने की मांग की। नैतिकता को वैज्ञानिक ज्ञान सहित ज्ञान समुदाय की आलोचना के रूप में न्यायिक और सार्वभौमिक रूप में वैज्ञानिक कानूनों के आकर्षण को खोने की आवश्यकता के बिना उचित ठहराया जा सकता है।

सार्वभौमिकता की विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

(अ) सार्वभौमिकता की प्रक्रिया का विकास अवधारणा, निर्णय एवं निष्कर्ष के आधार पर निर्धारित होता है।

(ब) सार्वभौमिकता प्राकृतिक घटना की धारणा के समान होती है तथा नैतिक विश्वदृष्टि भी होती है।

(स) सार्वभौमिकता के सिद्धांत शोधकर्ता के अनुभवों, मान्यताओं एवं दूरदर्शिता से जुड़े होते हैं।

(द) सार्वभौमिकता ब्रह्मांड का समग्र रूप होता है।

(य) सार्वभौमिकता अलग–अलग परंपराओं का पारस्परिक संबंध दर्शाती है।

(र) सार्वभौमिकता तत्व में स्पष्ट संरचना, नैतिक सिद्धांत, भावनात्मक रीति/रवैया तथा दुनिया की नैतिक तस्वीर समावेशित होती है।

(ल) वैज्ञानिक ज्ञान की आलोचना न्यायिक एवं सार्वभौमिक आकर्षणों द्वारा खोजने की आवश्यकता महत्वपूर्ण होती है।

लघु से वृहत परंपरा तक स्थानांतरण

सार्वभौमिकता की प्रक्रिया में स्थानिक एवं लघु परंपराएं होती हैं। जिससे समाज की सांस्कृतिक जीवन को सुस्पष्ट करने की अवधारणा होती है। स्वदेशी सभ्यताएं लघु परंपरा से वृहत परंपरा को स्पष्ट करने के तत्वों से मिलती है। इसी से संस्कृति के प्रचार–प्रसार का काम किया जाता है। वृहत परंपरा के लघु परंपराओं से तत्व जुड़े होने से सांस्कृतिक तत्वों का फैलाव रहता है। यही सभी सांस्कृतिक तत्व वृहत परंपरा के अंगभूत बन जाते हैं।

देश, काल, परिस्थिति के अनुसार सारी परंपराएं सांस्कृतिक सार्वभौमिकता का प्रसारण करती हैं। इस प्रकार सार्वभौमिकता का स्थानांतरण होता है।

विद्याशाखीय ज्ञान की यह विशेषता है कि निर्मित ज्ञान सार्वभौमिक (Universalise) हो ताकि संपूर्ण मानव जाति के व्यवहार में उसका उपयोग किया जाए तथा प्राकृतिक घटनाओं की सामाजिक जीवन में महत्ता स्थापित हो। वैश्विक दृष्टिकोण परिवर्तनशील एवं विकासशील होते हैं जो विशिष्ट प्रणाली द्वारा विशिष्ट तत्व बनकर विद्याशाखीय ज्ञान के रूप में स्वीकरणीय होते हैं।

कुछ वैज्ञानिकों के सार्वभौमिकता हेतु दांव

1. **पियर्स** वैज्ञानिक–समुदाय की नैतिकता पर सार्वभौमत्व अवलंबित होना है।
2. **एवलिन फॉक्सकेलर** एवं **सैंड्रा हार्डिंग** (दार्शनिक नारीवादी वैज्ञानिक)– ज्ञान समुदाय लिंग भेदों से भ्रष्ट होता है। जिन्होंने वैज्ञानिक अनुसंधान क्षेत्रों से महिलाओं को दूर रखा तथा वास्तव में उन्होंने वाद्य तर्कसंगतता को अपनाया जो सच्ची निष्पक्षता नहीं रखता।
3. **थियोडोर एडोर्नो एवं मैक्स खाई** (फ्रेंकफर्ड स्कूल)– तर्कसंगतता जरूरी सार्वभौमिकता की अस्वीकृति की ओर नहीं ले जा सकती, जिसे मन की धारणा की सीमा के रूप में समझा जाता है।

अतः नैतिक कारणों को तर्कसंगत बनाने की आवश्यकता है। विकासवादी सीखने की प्रक्रियाओं के अनुभवजन्य रूप से उचित अवधारणा के साथ संयोजन में संचार कार्रवाई के सार्वभौमिक सिद्धांतों पर आधारित हो सकता है।

मान्यताओं को खोजकर आधुनिकता और मानव–नैतिक शिक्षा की एक सामान्य व्यापक मानक अवधारणा के रूप में कार्य करेंगे।

टिप्पणी

अपने प्राकृतिक ज्ञान से मूल्यों के लिए मजबूत प्रतिबद्धता निकाली जाए जो सार्वभौमिक मानवीय प्रकृति के सार के लिए सच है।

सार्वभौमिक मानदंड निश्चित आत्म–परावर्तना रखते हैं, जिसमें एक आदर्श रूप में सार्वभौमिकता का हमेशा महत्वपूर्ण विश्लेषण करना अपेक्षित है।

1.4.2 वस्तुनिष्ठता

सटीक/तटस्थ निरीक्षण द्वारा तथ्यों का उनके वास्तविक रूप में संकलन और विश्लेषण ही वस्तुनिष्ठता (Objectivity) है। "अपने स्वयं के विचार, आशा, आकांक्षा, भावना एवं पूर्वाग्रह से प्रभावित न होकर किसी भी तथ्य या घटना का उसके वास्तविक रूप में ही विश्लेषण करना वस्तुनिष्ठता कहलाती है।"

दूसरे शब्दों में "वही नैतिक कथन वस्तुनिष्ठ कहलाएगा जिसकी सत्यता की स्थितियां किसी भी व्यक्ति–विशेष के मस्तिष्क से स्वतंत्र हों।"

"In philosophy objectivity is the concept of truth independent from individual subjectivity. A proposition is considered to have objective truth when its truth conditions are met without bias caused by a sentient subject. Scientific objectivity refers to the ability to judge without partiality external influence." (Wikipedia)

अर्थ : व्यक्ति को कोई निर्णय करते समय उन सभी आधारों से मुक्त होना चाहिए जो उसकी व्यक्तिगत चेतना में शामिल हैं, जैसे उसकी विचारधारा, कल्पनाएं, दृष्टिकोण, पूर्वग्रह, रूढ़–धारणाएं, मान्यताएं इत्यादि।

विशेषताएं

- वस्तुनिष्ठता का आदर्श जितना आवश्यक है, उतना ही उसका यथार्थ भी विचारणीय होता है।
- यह एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, जिसके माध्यम से आदर्श और यथार्थ की स्थितियों के कारण परिणाम मिलते हैं।
- वस्तुनिष्ठता 'पक्ष' अथवा 'स्व' के विश्लेषण से मुक्त होती है।
- इसे कानून की भावना के अधिक निकट माना जाता है।
- वस्तुनिष्ठता मूल्य–शून्यता नहीं है, वरन अपने आत्मपरक मूल्यों को बाहर निकाल कर केवल वस्तुओं या तथ्यों को जोड़ती है।
- वस्तुपरक गतिविधियों को समझने के लिए गंभीर बौद्धिक प्रयास करना पड़ता है।

वस्तुनिष्ठता का स्वरूप : घटनाओं को स्वाभाविक रूप में देखना ही वस्तुनिष्ठता का वास्तविक आधार है। उसके अभाव में किसी भी अध्ययन को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता।

वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता : वैज्ञानिक अध्ययन में वस्तुनिष्ठता एक आवश्यक तत्व है। सार्वभौमिक निष्कर्ष के लिए वस्तुनिष्ठता का पालन अत्यावश्यक होता है।

(क) यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए : सामाजिक अनुसंधान में ज्ञान का संचय एवं उसका यथार्थ उपयोग संभव है, केवल वस्तुनिष्ठता के कारण। दिन–प्रतिदिन सामाजिक घटनाओं में एवं मूल्यों में परिवर्तन हो रहे हैं, वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाकर यथार्थ परिस्थितियों को स्वीकार करना पड़ता है।

(ख) वैज्ञानिक पद्धति के सफल प्रयोग हेतु वस्तुनिष्ठता : वैज्ञानिक अनुसंधान की पहली सीढ़ी एवं शर्त वस्तुनिष्ठता है। उससे सत्य, तथ्य की खोज करना आसान होकर निष्कर्ष तक पहुंचा जा सकता है।

(ग) सामान्य भ्रांतियों को दूर करने के लिए वस्तुनिष्ठता : कई बार व्यक्ति केवल ऊपरी दिखावट एवं कही–सुनी बातों से अपना 'मत' बना लेता है। उसका कोई आधार नहीं होता। इन्हीं भ्रांतियों को लेकर वस्तुनिष्ठ निष्कर्ष प्राप्त नहीं होता। इसलिए सामान्य भ्रांतियों को दूर करने के लिए वस्तुनिष्ठता अपनाकर विश्वासपूर्ण निर्णयों को अपनाना चाहिए।

(घ) अनुसंधान के नए–नए क्षेत्रों को विकसित करने के लिए : कोई अनुसंधानक अनुसंधान के कई क्षेत्र अध्ययन हेतु खोजता है। वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण द्वारा अध्ययन करता है, जिससे महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त हो। तथ्यों के अनावरण से उसके उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। इससे नए अनुसंधान के नए–नए क्षेत्र भी प्राप्त होते हैं।

(ङ) निष्पक्ष निष्कर्षों की प्राप्ति के लिए वस्तुनिष्ठता : सामाजिक अनुसंधानों में निष्पक्ष निष्कर्ष प्राप्त होना अत्यावश्यक होता है, मगर वस्तुनिष्ठता के बिना ऐसे निष्कर्ष नहीं मिल सकते। वास्तविकताओं को ढूंढ़ना तथा घटनाओं का संदर्भ लगाने के लिए वस्तुनिष्ठता अत्यावश्यक होती है।

(च) तथ्यों के सत्यापन के लिए आवश्यक है वस्तुनिष्ठता : वैज्ञानिक अनुसंधान में तथ्यों की, घटनाओं की एवं निष्कर्षों की पुनर्परीक्षा लेकर निष्कर्ष टटोले जा सकते हैं। वैज्ञानिक संशोधन में सत्यापनशीलता केवल वस्तुनिष्ठता द्वारा ही लायी जा सकती है।

वस्तुनिष्ठता प्राप्ति के साधन एवं विधियां/प्रणालियां

वस्तुनिष्ठता प्राप्ति के लिए समाजशास्त्रियों द्वारा अपने अनुभव तथा अन्वेषणों के आधार पर सामाजिक घटनाओं के संदर्भ लगाकर निष्कर्ष पाए जाते हैं। अनुसंधानक इसके लिए ज्ञान निर्मिति की कई पद्धतियों का उपयोग करते हैं। वे पद्धतियां निम्न हैं–

- समस्या निराकरण विधि।
- उद्‌गमन एवं अवगमन विधि।
- प्रयोगात्मक विधि।
- वैज्ञानिक शोध।
- निरीक्षण।
- सामाजिक एवं राजनीतिक घटनाओं का अभ्यास।
- दस्तावेजों की जांच, वर्गीकरण एवं अर्थनिर्वचन।
- अनुभव।
- सर्वेक्षण।
- प्रादेशिक अभ्यास।

टिप्पणी

अनुसंधानक स्वयं वस्तुनिष्ठता प्राप्ति के लिए सतत सचेत रहता है। वह सत्य परिस्थिति की जांच–पड़ताल करने के लिए राग–द्वेष, विचार–मूल्य, झूठ–सच का झुकाव इन पर ध्यान देकर बचता है। इसलिए उपर्युक्त ज्ञान निर्मिति के मार्ग तथा विधियों के अतिरिक्त और भी विधियां हैं, जिनके द्वारा वस्तुनिष्ठता से निष्कर्ष प्राप्त हो सकते हैं।

1. अवधारणाओं का मानवीकरण।
2. सामूहिक अनुसंधान।
3. प्रयोगसिद्ध पद्धतियां।
4. अनुसूचि एवं प्रश्नावली प्रविधियों का प्रयोग।
5. दैव निदर्शन पद्धति का उपयोग।
6. अंतर्विद्याशाखीय विधि का प्रयोग।
7. मिश्रित सांस्कृतिक उपागम का प्रयोग।

अब इनकी विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे–

1. **अवधारणाओं का मानवीकरण** (Humanitism through Understanding): जब विभिन्न शब्दों और धारणाओं को सुनिश्चित रूप प्राप्त होता है तब अनुसंधानक को मिलने वाले निष्कर्ष वस्तुनिष्ठ होने की संभावना बढ़ती है। सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में महत्वपूर्ण शब्द और अवधारणाएं उपयोगी होती हैं। प्राप्त ज्ञान की अवधारणाएं, सिद्धांत, प्रक्रियाएं एवं अभिकल्पों का विकास और कार्यान्वयन, अनुकूलता हेतु इस प्रणाली का उपयोग सार्थक/साध्य हो सकता है।
2. **सामूहिक अनुसंधान** (Group Research): अनुसंधान की जो विधियां प्राकृतिक विज्ञानों में सफल हुई हैं, उन्हीं के प्रयोग द्वारा सामाजिक घटनाओं की समझ उत्पन्न करना, घटनाओं में कार्य–कारण–संबंध प्रस्थापित करना, वैज्ञानिक तटस्थता बनाए रखना– ये लक्षण होते हैं। अनुसंधानक/शोधकर्ता के व्यक्तिगत झुकाव को दूर करने तथा वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने हेतु सामूहिक अनुसंधान आवश्यक होता है। सामूहिक अनुसंधान में विशेष अध्ययन पद्धति द्वारा तथा समूह अनुसंधान द्वारा व्यक्तिनिष्ठता कम हो जाती है।
3. **प्रयोगसिद्ध पद्धतियों का उपयोग** (Experimental Method): प्रयोगसिद्ध पद्धति से वास्तविक निरीक्षण सुनिश्चित तथ्यों एवं परिणामात्मक आंकड़ों पर तथा ठोस प्रमाणों पर आधारित होते हैं तथा यह प्रणाली व्यक्ति के व्यक्तिगत विचारों, भावनाओं, आदर्शों, मूल्यों एवं मानदंडों पर विश्वास नहीं करती। केवल वैज्ञानिक आधारों के द्वारा ही निष्कर्षों को मानती है। यही वस्तुनिष्ठता की विधि मानी जाती है।
4. **अनुसूचि एवं प्रश्नावली प्रविधियों का प्रयोग** (Use of Indexing and Questionnaire Method): ज्ञान प्राप्ति हेतु एवं वस्तुनिष्ठ अनुसंधान के लिए ऐसी प्रविधियों का उपयोग करना फायदेमंद होता है, जिनमें पक्षपात, अवैधता न हो। अनुसूचि एवं प्रश्नावली द्वारा प्राप्त जानकारी सत्य, अनुभवाधारित तथा पक्षपाती

टिप्पणी

होती है। इसी कारण प्रयोगसिद्ध निष्कर्ष मानवीकृत होते हैं। संभवतः इनमें वस्तुनिष्ठता ही रहती है।

5. **दैव निदर्शन पद्धति का उपयोग** (Use of Random Sampling): दैव निदर्शन शब्द का अर्थ है– जब समग्र में से प्रत्येक व्यक्ति या तत्व को चुने जाने का समान अवसर प्राप्त होता है। शोधकर्ता अपनी इच्छा या निर्णय से नहीं बल्कि दैवयोग से निदर्शन चुनते हैं। अपनी किसी पूर्वधारणा या पक्षपात के कारण अनुसंधानकर्ता ऐसे निदर्शनों का चुनाव करते हैं, जो कि उस घटना का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं करते। सामाजिक तथ्यों में विविधता अधिक होने के कारण शत–प्रतिशत समानुपातिक (Praportionate) निदर्शन कठिन होता है परंतु पर्याप्त मात्रा में समान होता है। इस कारण वस्तुनिष्ठता अपेक्षित होती है।
6. **अंतर्विद्याशाखीय विधि का प्रयोग** (Use of Inter Disciplinary Method): दो या दो से ज्यादा विद्याशाखाओं को मिलाकर अनुसंधानात्मक प्रयोग विधि का विकसन किया जाता है। सामाजिक घटनाओं के गहन, निष्पक्ष तथा यथार्थ निष्कर्षों के लिए आंतर्विद्याशाखीय विधि का उपयोग सही होता है। इसकी विशेषता यह है कि विभिन्न विद्वानों, सुविद्जनों का पारस्परिक सहयोग किया जाता है और मिल–जुलकर निष्कर्षों तक, निर्णयों तक पहुंचा जाता है। समस्या के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक पक्षों का विचार एकत्रित होकर वस्तुनिष्ठता धारण की जाती है।
7. **मिश्रित सांस्कृतिक उपागम का उपयोग** (Use of mixed Cultural Approach): इस उपागम में सामाजिक संबंधों और सामाजिक संगठन की तुलना में किसी समाज की सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर उसकी संरचना को स्पष्ट किया जाता है। सामाजिक मूल्य, सामाजिक संगठन के प्रकार, भाषा, धार्मिक विश्वास, गाथाएं एवं कार्य करने के परंपरागत तरीके व्यक्ति व्यवहारों का निर्धारण करते हैं। अनुसंधानक अध्ययन के द्वारा अधिक सटीक/तटस्थ (Rigid) रहकर यथार्थ तथ्यों को एकत्रित कर सकता है। यहीं पर अनुसंधान विश्वसनीय एवं वस्तुनिष्ठ बन जाता है।

1.4.3 मूल्य तटस्थता

मूल्यों का संबंध भौतिक वस्तु अथवा मानसिक अवस्था के उस गुण से है, जिसके द्वारा मनुष्य के किसी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति होती है। मूल्यों का व्यक्ति के आचरण, व्यक्तित्व तथा कार्यों पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। समाज में सत्य, प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, सहिष्णुता, बंधुता जैसी मौलिक बातों के द्वारा वातावरण का निर्माण होता है। राष्ट्र की, समाज की एकता तथा अखंडता बनाए रखने के लिए मूल्यों का विकास अत्यावश्यक होता है।

मानवीय जीवन में मूल्यों का समावेश होने से जीवन शांतिपूर्ण एवं स्थायित्व से पूर्ण होता है। मूल्यों के द्वारा ही पारिवारिक संबंध अटूट बनते हैं तथा जीवन सुख–शांतिमय तथा खुशी से भर जाता है।

सभी देशों, समाजों और लोगों के अलग–अलग मूल्य होते हैं। स्थान, काल के अनुसार मूल्यों का महत्व परिवर्तित होता रहता है। भारतीय सांस्कृतिक परंपराएं

टिप्पणी

संस्कृति संवर्धक होती हैं जो संपूर्ण जनमानस के लिए अत्युत्तम साबित हो चुकी हैं। जिसमें से कई मूल्यों का वृद्धिगत होना हमने देखा एवं अनुभव भी किया है। समाज के नियम, आदर्श एवं मानदंड ये सब हमारे अंतःकरण से विश्वास के रूप में स्वीकार किए जाते हैं, तो उन्हें 'मूल्य' कहा जाता है।

मूल्य : अर्थ एवं अवधारणा : मूल्य के समान शब्द– कीमत, महत्व, योग्यता, उत्तमता, पारिश्रमिक हैं। इसका अर्थ उत्तम, श्रेष्ठ, सुंदर तथा वरीयता से है। उत्तम कार्य, श्रेष्ठ विचार, सुंदर विचार, उत्तमोत्तम गुण या अच्छी वस्तुएं जिन्हें हम दूसरों की तुलना में श्रेष्ठ समझते हैं, 'मूल्य' कहलाते हैं।

मूल्यों को सिखाया नहीं जाता, बल्कि आत्मसात किया जाता है। मूल्यों से आचार–विचार प्रभावित होते हैं। परिवारजनों, गुरुजनों से मूल्यों के ढालने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। बालक/व्यक्ति संस्कार शिल्प, संस्कारित या मूल्यों के बिना संस्कारविहीन बनता है। मूल्यों से वह मूल्य के निर्धारक धर्म तथा संस्कृति के दर्शन करता है। मूल्यों का संबंध आवश्यकताओं, ईच्छाओं एवं अभिप्रेरणा से होता है।

परिभाषा

जॉन डीवी (John Dewey) के अनुसार, "मूल्य आंतरिक रूप से पसंद से संबंधित नहीं है, बल्कि केवल उन्हीं से संबंधित है, जिनका निर्णय से संबंधित होना होता है।"

राधाकमल मुखर्जी के अनुसार, "मूल्य समाज द्वारा अनुमोदित उन इच्छाओं और लक्ष्यों के रूप में परिभाषित किए जा सकते हैं, जिन्हें अनुबंधन अधिगम या समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा आत्मसात किया जाता है और जो व्यक्तिगत मानकों तथा आवश्यकताओं के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।

सी.वी. गुड के मतानुसार, "मूल्य एक ऐसी चारित्रिक विशेषता है, जो मनोवैज्ञानिक सामाजिक और सौंदर्य बोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जाती है।"

सभी परिभाषाओं का अर्थ यह है कि मूल्य मानव व्यवहार से जुड़ा शुद्ध आचरण है, जिसे जोर–जबरदस्ती से नहीं बल्कि खुद की आंतरिक शक्तियों द्वारा अपनाया और दर्शाया जाता है। मनुष्य के हरएक चुनाव, निश्चय, निर्णय एवं कार्य में मूल्य विद्यमान होता दिखाई देता है। हमारी सांस्कृतिक धरोहर, लोकतांत्रिक मूल्य, अहिंसा तत्व, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक एकता एवं समरसता हमेशा से ही शांति, साहचर्य एवं विश्व कल्याण के आदर्शवत होंगे।

मूल्यों का वर्गीकरण : सामान्यतः मूल्य कई प्रकार के होते हैं। मानवीय जीवन के हर पहलू के अलग–अलग मूल्य हम जानते–पहचानते तथा अपनाते हैं। बचपन से लेकर बूढ़े होने तक, जन्म से लेकर मृत्यु तक मूल्यों के विभिन्न संस्कार हम पर किसी न किसी तरह से परिवारजन, संगी–साथी, गुरुजन वर्ग या हमारे संपर्क में आया कोई व्यक्ति, घटना परिस्थिति के अनुसार होते ही रहते हैं। कई मूल्य संस्कार होते हैं जिनका स्वरूप आंतरिक अथवा स्व–प्रेरित (Self-motivated) एवं बाह्य (External) होता है।

मूल्यों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जाता है। मानवीय मूल्य आठ प्रकार के होते हैं जो निम्न हैं–

1. शारीरिक मूल्य
2. आर्थिक मूल्य
3. मनोरंजनात्मक मूल्य
4. साहचर्य मूल्य
5. चारित्रिक मूल्य
6. सौंदर्यबोधक मूल्य
7. बौद्धिक मूल्य
8. धार्मिक मूल्य

शारीरिक मूल्यों से शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। उदाहरण– भोजन, वस्त्र, गहने जैसी वस्तुएं। धन–संपत्ति आदि आर्थिक मूल्य होते हैं। मनुष्य के मन को बहलाया जाता है, मनोरंजनात्मक मूल्यों से आनंद की प्राप्ति होती है, खेल–कूद से इसमें मनोरंजन भी होता है। साहचर्य मूल्य के कारण मनुष्य में एक साथ रहने की भावना उत्पन्न होती है, जैसे– मित्रता, रिश्तेदारी आदि। सुंदरता का बोध होना सौंदर्यबोधक मूल्यों से होता है, जैसे– कलाकृतियां, शिल्पकलाएं आदि। ज्ञान का मूल्य बौद्धिक होता है, इससे मनुष्य की बौद्धिक उपलब्धि का पता चलता है। धार्मिक मूल्यों की भावना धर्मों से संबंधित होती है, जैसे– पूजा–अर्चना, आत्मा–परमात्मा, स्वर्ग आदि कल्पनाएं।

इनके अतिरिक्त मूल्यों का चार वर्गों में वर्गीकरण किया जाता है। वे चार वर्ग हैं–

1. दार्शनिक मूल्य (Philosophical Values)
2. सामाजिक मूल्य (Social Values)
3. मनोवैज्ञानिक मूल्य (Psychological Values)
4. सार्वभौमिक/मानव मूल्य (Universal/Human Values)

इन चारों वर्गों के अंतर्गत आने वाले मूल्य नीचे चार्ट में दिए जा रहे हैं–

दार्शनिक मूल्य (1)	**समाजिक मूल्य (2)**	**मनोवैज्ञानिक मूल्य (3)**	**सार्वभौमिक/मानवीय मूल्य (4)**
• नैतिक मूल्य • सामाजिक मूल्य • मनोवैज्ञानिक मूल्य • सार्वभौमिक/मानवीय मूल्य	• जैविक मूल्य • आध्यात्मिक मूल्य • आंतरिक मूल्य • ब्राह्य मूल्य	• सैद्धांतिक/बौद्धिक मूल्य • सौंदर्यानुभूति मूल्य • राजनीतिक मूल्य • धार्मिक मूल्य • सामाजिक मूल्य	• सत्य • धर्म • शांति • प्रेम • अहिंसा
↓	↓	↓	↓
मूल्य मीमांसा	जनक ↓ जॉन डिवी राधाकमल मुखर्जी	स्पेंजर	भारतीय दर्शन

उपर्युक्त आकृति में चार वर्गों के मूल्यों की जानकारी वर्गीकरण के अनुसार दी गई है। इन मूल्यों की प्रकृति/स्वरूप निम्न प्रकार से है–

टिप्पणी

- मूल्यों के द्वारा समाज एवं संस्कृति की पहचान होती है।
- मूल्यों से व्यक्ति का आचरण निर्देशित होता है।
- मूल्य समाज के व्यवहार मानक होते हैं।
- मूल्यों का विकास अनुकरण एवं आत्मसात करने से होता है।
- धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्रियाओं से भी मूल्य विकास होता है।
- परिवार एवं समाज मूल्यों के केंद्रबिंदु होते हैं।
- शाश्वत मूल्यों में परिवर्तन नहीं होता।
- मूल्यों के निर्धारक तत्व—समाज, धर्म एवं संस्कृति होते हैं।
- व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा धर्म अपने—अपने मूल्यों का अनुरक्षण करते हैं और आवश्यकतानुसार इनमें सुधार एवं परिवर्तन भी होता रहता है।

मूल्य मानव की सभी इच्छाओं की पूर्ति करता है। हर व्यक्ति के अपने जीवन के कुछ उसूल एवं उद्देश्य होते हैं, उनके अनुसार मूल्य रचनाएं बनती, संक्रमित होती तथा संवर्धित होती हैं।

मूल्य निष्पक्षता/तटस्थता : आजकल मूल्यों के बारे में तथा जीवन में अपनाने के बारे में बड़े संभ्रम होते दिखाई देते हैं। एक तरफ शैक्षिक पाठ्यक्रमों द्वारा, घर—परिवार द्वारा मूल्यों को बालकों में दृढ़ होने के प्रयास किए जाते हैं। किंतु सामाजिक घटनाओं एवं परिस्थितियों के कारण मूल्यों की कमी होती दिखाई देती है। इस कारण संपूर्ण दुनिया कई गंभीर समस्याओं और संकटों से गुजर रही है।

निष्पक्षता—पूर्व ग्रहों से मुक्त होकर अपना मत/मंतव्य रखना। वह एक सार्थक क्रिया भी है।

तटस्थ—विचार प्रक्रिया में भाग नहीं लेना। यह एक निष्क्रिय होने की क्रिया है।

जो भी सकारात्मक मूल्य हैं, जैसे— अहिंसा, शांति, धैर्य इन पर नकारात्मक मूल्य, जैसे— हिंसा, अन्याय, कायरता, भ्रष्टाचार, अविचार हावी होते दिखाई दे रहे हैं। प्राचीन काल में गुरुजनों द्वारा शिष्यों पर मूल्य संस्कारों की भरमार होती दिखाई देती थी तथा मूल्य संवर्धन—जतन हेतु जी जान से उनका पालन करने की शिष्यों की वृत्ति भी दिखाई देती थी। मगर आजकल मूल्यों की कमी एवं अवहेलना करने वाले जनसामान्य भी दिखाई देते हैं। इसी कारण अपने भारत देश में शिक्षाविदों ने पाठ्यक्रमों में मूल्यों के अभ्यास का अंतर्भाव किया है।

इससे कई जगह, कई व्यक्तियों में मूल्य तटस्थता का भाव उमड़ा दिखाई देता है। इससे मूल्य निष्पक्षता एवं तटस्थता नजर आती है। दो विरोधी परंतु प्रबल ईच्छाओं के कारण व्यक्ति स्वयं को दो प्रकार का व्यवहार करने में खिंचा सा अनुभव करता है। विभिन्न अभिवृत्तियां प्रायः मूल्यों द्वारा ही उत्पन्न होती हैं। विशिष्ट परिस्थिति में अभिवृत्ति मूल्य को निर्धारित किया जा सकता है। जैसे—जैसे मूल्यों में परिवर्तन होता है, वैसे—वैसे अभिवृत्तियों में परिवर्तन दिखाई देता है। कभी—कभी मूल्यों द्वारा अभिवृत्ति एवं व्यवहारों का संबंध निर्धारित किया जाता है। किसी विशेष मूल्य के कारण व्यक्ति का व्यवहार उसकी अभिवृत्ति से असंगत होता हुआ दिखाई देता है। यह एक महत्वपूर्ण असमानता हमें विचलित भी कर सकती है।

टिप्पणी

लोकतांत्रिक राष्ट्र होने के बावजूद हमारे देश की संस्कृति एवं मूल्यों के बारे में बहुत खराब हालात हो गए हैं। आधुनिकता के नाम पर कई दुष्कृत्य करना, अलग–अलग विचित्र अभिरुचियों, अभिवृत्तियों को पनपने दिया जाता है। हिंसा, भ्रष्टाचार, झूठ बोलना, चोरी, एक दूसरे पर आरोप–प्रत्यारोप, अश्लीलता, जोर–जबरदस्ती, लूटमार, गुनहगारी आदि कई नकारात्मक मूल्य हैं जो दिन–प्रतिदिन बढ़ते जा रहे दिखाई देते हैं। बेरोजगारी के कारण युवा वर्ग द्वंद्व में उलझ गया है। शिक्षा का व्यक्ति पर कोई नियंत्रण ही नहीं रहा है, इसलिए व्यक्ति का विकास अब केवल नाम के लिए रह गया है। मूल्य निष्पक्षता/तटस्थता यह एक बड़ी चुनौती हमारे सामने खड़ी है।

मूल्य– किसी भौतिक वस्तु अथवा मानसिक अवस्था के उस गुण से है, जिसके द्वारा मनुष्य के किसी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति होती है। मूल्यों का व्यक्ति के आचरण, व्यक्तित्व तथा कार्यों पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। यही विशेषता है कि मूल्य में पहले विषय वस्तु आती है, फिर उसकी तीव्रता। मूल्य कुछ अंश तक आंतरिक भाव होते हैं, वे व्यक्ति के व्यक्तित्व में प्रतिबिंबित होते हैं। स्थल–काल के अनुसार मूल्यों के महत्व में तथा स्वरूप में फर्क आता दिखाई देता है।

मूल्य अमूर्त होते हैं मगर सीखे–सिखाए जाते हैं। मानव मूल्य, नैतिक मूल्य या आध्यात्मिक मूल्य खुद में पनपाना बहुत कठिन सा होता है। जैसे– न्याय, ईमानदारी। मगर हमारे देश के स्वतंत्रता संग्राम में कई समाजसेवकों के यही मूल्य/ऊसूल थे जो हमें अब भी प्रेरणा देते हैं। भौतिक मूल्य हमारे जीवन का हिस्सा ही होते हैं, ऐसे मूल्यों से दूर होने वाले बिल्कुल ही कम जनसामान्य होते हैं, जो इनके मोह से हटके होते हैं। हाँ गरीबी, दरिद्रता के कारण भौतिक मूल्यों से परे रहना पड़ता है, वह अलग बात है।

राजनीतिक मूल्यों में ईमानदारी, सेवाभाव आदि तथा न्यायिक मूल्यों में सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता आदि का समावेश होता है। व्यावसायिक मूल्य जैसे जवाबदेही–जिम्मेदारी सत्यनिष्ठा इनसे व्यक्तिगत विकास सही दिशा में होता है।

1.4.4 संस्कृति

विद्याशाखीय ज्ञान की विशेषता का एक महत्वपूर्ण घटक होता है– संस्कृति।

संस्कृति किसी एक समाज में पाई जाने वाली उच्चतम मूल्यों की वह चेतना है, जो सामाजिक प्रथाओं, व्यक्तियों की चित्तवृत्तियों, भावनाओं, मनोवृत्तियों, आचरण के साथ–साथ उसके द्वारा भौतिक पदार्थों का विशिष्ट स्वरूप दिए जाने में अभिव्यक्त होती है।

भारतीय संस्कृति के विविध पहलुओं में उत्सव, मेले, शौर्य, कलाओं की विभिन्न प्रतियोगिताएं होती हैं। नृत्य–कला संगीत का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है। कई बार संस्कृति धर्म के प्रयोजन पर उग्रता का रूप धारण कर लेती है। कभी–कभी संस्कृति का दर्शन/वर्णन प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट किया जाता है। धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक गतिविधियां और सत्ताभिलाषा के दाँव–पेंच भी संस्कृति का दर्शन कराते हैं। मगर ये भी प्रगति के केंद्र ही कहलाते हैं। साहित्य विधाओं से कुटुंब की व्यवस्थाओं का दर्शन, क्रूरता, व्यक्ति के स्वतंत्र अधिकार एवं कर्तव्य, स्त्री के दास्यत्व से मुक्ति, आत्म निर्णायक क्षमता, सामाजिक समानता, न्याय जैसे विभिन्न मूल्य दर्शनों का भी विचार संस्कृति से दिखाई देता है, और महसूस होकर मन में दृढ़ता से पनपता रहता है।

टिप्पणी

अर्थ एवं अवधारणा : संस्कृति – अंग्रेजी में (Culture)। यह लैटिन शब्द कल्चर से लिया गया है, अर्थ है जोतना, विकसित करना या पूजा करना।

संस्कृति– किसी समाज या व्यक्ति में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र रूप का नाम है, जो समाज को, व्यक्ति को सोचने, विचारों की दिशा बदलने, कार्य करने खाने–पीने, बोलने, नृत्य गायन, साहित्य, कला, वास्तु जैसी कई कलाओं से भी परिलक्षित होती है।

संस्कृति समस्त सीखे हुए व्यवहार का नाम है, जो सामाजिक परंपरा से प्राप्त होता है।

अवधारणा : व्यक्ति को समाज, संस्कृति, धर्म, कला, न्याय आदि के संबंध में विचार अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता होती है, जिसके द्वारा समाज में नया दृष्टिकोण निर्मित हो सकता है। कई बार भाषा की अभिव्यक्ति, देश–काल का वातावरण, संवादिक योजनाओं के माध्यम से आधुनिक दृष्टिकोण विकसित हो रहे हैं। संस्कृति मानव जनित पर्यावरण से संबंध रखती है, जिसके सभी भौतिक एवं अभौतिक परिणाम/उत्पाद एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संक्रमित करते हैं। संस्कृति में मनुष्यों द्वारा प्राप्त सभी आंतरिक एवं बाह्य व्यवहारों के तरीके समाहित होते हैं। संस्कृति हमारे जीने और सोचने की विधि में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति भी है।

संस्कृति मानव को आनंदानुभूति प्रदान करती है। साहित्य, धार्मिक कार्यों में मनोरंजन तथा खुशी प्रदान करने के तरीके एवं पारंपरिकता उत्पन्न करने का कार्य भी अनायास ही हो जाता है। संस्कृति में परिवर्तन आना आधुनिकता का लक्षण माना जाना चाहिए। स्थल–काल के अनुसार संस्कृति का विकास एक सामाजिक एवं राष्ट्रीय संदर्भ में होने वाली ऐतिहासिक एवं ज्ञान संबंधी प्रक्रिया तथा प्रगति पर आधारित होती है। प्रत्येक देश की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक, सामाजिक परंपराओं से ही जनमानस में पहचान बनती है।

संस्कृति की विशेषताएं : संस्कृति की निम्न विशेषताएं हैं–

1. प्राचीनता/अविच्छिन्नता।
2. सांप्रदायिकता।
3. एकता व सहिष्णुता।
4. खुली दृष्टि एवं ग्रहणशीलता।
5. विविधता में एकता।
6. समानता एवं कल्याणकारी।
7. प्रकृति प्रेम।
8. संयुक्त/विभक्त परिवार प्रणाली।
9. अध्ययन द्वारा प्राप्ति।
10. संक्रमण एवं संवर्धन।
11. संचयन एवं प्रसारण व गतिशीलता।
12. जीवन से जुड़ी अभिवृत्तियों के दर्शन।

संस्कृति तटस्थता (Culture Neutrality): सांस्कृतिक अनेकता/बहुलता भी होती है, जहां दो या दो से अधिक सांस्कृतिक समूह एक ही भौगोलिक क्षेत्र से व्याप्त होते हैं, और कुछ सामान्य या एक जैसी क्रियाओं में सम्मिलित होते हैं। इनमें परस्पर सांस्कृतिक तत्वों का आदान–प्रदान किया जाता है मगर ये अपनी सांस्कृतिक सत्ताएं बनाए रखते हैं। इसी तरह लोगों ने संस्कृति को दो–दो भागों में बांट रखा है। जैसे शहरी और ग्रामीण, मुख्यधारा और उपधारा, जनजातीय संस्कृति एवं अन्य संस्कृति। दुनिया भर की दृष्टि से हमारे भारत देश की संस्कृति, समाज एक ही है। मगर यहां हिंदू–मुस्लिम–सिक्ख–ईसाई ऐसे कई जाति–धर्मों का एकत्रित रहना, आदमी का आदमियों से, इंसानियत से अपने परिवेश से एक गहरी आत्मीयता का संबंध आता है। देश काल की सीमाओं के अनुसार अपेक्षाएं बदलती जाती हैं। सर्वधर्मसमभाव संकल्पना हर जगह, हर समाज, हर देश के नीति–नियमोंनुसार बदलती जाती है। इस तरह मतों में तटस्थता दिखाई देती है।

सभी मानवों के समूहों के अनुसार संस्कृति निर्धारित की जाती है। इस जीवन–शैली को ही संस्कृति का नाम दिया जाता है। समूह के लोग अपने सतत प्रयत्नों से गलती करके सीखते हुए कुछ विश्वासों, जीवन पद्धतियों तथा लोक रीतियों का विकास करते हैं। अतः प्रत्येक संस्कृति निजी अनुभवों और परिवेश के संदर्भ में कार्य करती है। परिणामतः हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की संस्कृति को अधिक अच्छी तरह जान–परख लेता है। संस्कृति के मानदंडों के माध्यम से दूसरी संस्कृति को जांचने का प्रयत्न किया जाता है।

संस्कृति की निष्पक्षता या तटस्थता जांचने के लिए अनुसंधानक/अध्ययनकर्ता का तटस्थ (Neutral) होना आवश्यक होता है। किसी दूसरे समाज की संस्कृति का अवलोकन कर अपनी सामाजिक संस्कृति में बदलाव लाना यह अत्यंत कठिन एवं व्यय साध्य काम होता है। समाज में दिखने वाला स्तरीकरण, सामाजिक व्यवस्था का परिणाम होता है समाज के तीन स्तर–ऊपरी, मध्य एवं निचला। ऊपरी और निचले स्तर के समूहों की संस्कृति और जीवन में उदासीनता पाई जाती है।

संस्कृति अभ्यासक किसी छोटे अन्वेषण से लेकर बड़े स्तर पर कार्य करने की अभिलाषा भी रखते हैं। समाज में सभी क्षेत्रों में यह कार्य अपेक्षित होता है। विभिन्न धारणाओं, मूल्यों को लेकर यह तटस्थता अधिक वृहद होती जाती है।

यदि पाश्चात्यों की संस्कृति एवं अपनी भारतीय संस्कृति का अवलोकन किया जाए तो यही प्रतिपादित किया जाता है कि विकसनशील राष्ट्रों के लोगों द्वारा विकसित राष्ट्रों की संस्कृति को अपनाना आसान लगता है, जिसमें– पहनावा, भाषा, सामाजिक स्थिति, संस्कृति, बोलचाल, सफाई, महंगाई, माध्यम, व्यवस्था प्रणाली, राजनीति, प्रचार–प्रसार माध्यम– इनका समावेश होता है।

1.4.5 अवैयक्तिकता

'अवैयक्तिकता' (Impersonality) विद्याशाखीय ज्ञान की एक अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता है। अवैयक्तिकता का अर्थ होता है, गुणों से परे। व्यक्तिगतता या निजता से हटकर रहने की वृत्ति।

प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ व्यक्तित्व के गुण होते हैं। उनकी पहचान उन व्यक्तित्व गुणों से होती है। वैसे ही कुछ ऐसे व्यक्तियों को भी हम देखते हैं, जो बहुत

टिप्पणी

अधिक अवैयक्तिक होते हैं। वही बात विद्याशाखीय ज्ञान के बारे में भी होती है। विद्याशाखीय ज्ञान की अवैयक्तिकता विशेषता यही दर्शाती है कि ज्ञान की अपनी एक विशिष्ट पहचान होती है, विद्याशाखा की संरचना में हमने जाना है कि, विद्याशाखा हमेशा अपूर्ण/अधूरी होती है। जितने भी अनुसंधानक/अध्ययनकर्ता/अध्यापक इसका अध्ययन कर उसे वृद्धिगत करने का प्रयास करेंगे, वैसे–वैसे अवैयक्तिक ज्ञान की निश्चित रूप से विशेष प्रतिबद्धता होती है। ज्ञान के क्षेत्र में विभिन्न विषयों की व्यवस्थित एवं विशेष सीमाएं होती हैं।

विद्याशाखाओं का स्वतंत्र अस्तित्व होता है। मगर उनके ज्ञान की कुछ सीमाएं होती हैं। विद्याशाखीय अध्ययन यानी कूपमंडूक वृत्ति से अपने ही कुए में घूमना, या उसी को विश्व समझना अभ्यास के लिए घातक होता है। 'सा विद्या या विमुक्तये' का अर्थ है जो अध्ययनकर्ता को बंधनों से मुक्त कराती है, वही विद्या होती है। हम क्या अध्ययन कर रहे हैं इसका ध्यान रखने हेतु विद्याशाखा का अध्ययन जरूरी होता है। ज्ञान का विद्याशाखाओं में किया गया विश्लेषण केवल अपनी सुविधा एवं स्पष्टीकरण हेतु होता है। मूल ज्ञान मात्र समग्र एवं एक संघ ही होता है।

अवैयक्तिकता का स्वरूप एवं विशेषताएं

1. विद्याशाखाओं द्वारा ज्ञान के विभाग केवल अध्ययन हेतु सुविधा के लिए किए जाते हैं।
2. ज्ञान का मूल केंद्र एक ही होता है, मगर अलग–अलग विद्याशाखाओं के ज्ञान में एक आंतरिक संबंध होता है।
3. विद्याशाखाओं के परस्पर संबंधों के समान सूत्रों में एक प्रबल एवं प्रभावी विचारधारा आई, जिसमें से आंतरविद्याशाखीय दृष्टिकोण का उदय हुआ।
4. आंतरविद्याशाखीय ज्ञान की निर्मिति के कारण ज्ञान की प्रगति एवं विकास की दिशा निर्धारित हो गई।
5. इसके परिणामस्वरूप मानवीय जीवन की सुख–समृद्धि में वृद्धि हुई।
6. अपने अध्ययन विषय की विद्याशाखा का प्रतिनिधित्व हम अध्यापक करते हैं। यह बात ध्यान में रखें कि विद्याशाखाओं की मूलभूत बैठक/मूल स्थान ज्ञान के एकत्व पर आधारित होती है।

1.4.6 पृच्छा क्षमता एवं प्रमाण

विद्याशाखीय ज्ञान की यह एक विशेषता है कि वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति में सप्रमाणता या सत्यापनशीलता निष्कर्ष पाने का महत्वपूर्ण घटक हो जाता है।

किसी भी काल में किसी भी वैज्ञानिक द्वारा अपने अध्ययन में निकाले गए निष्कर्ष की अन्य कहीं, अन्य कोई भी जांच पड़ताल कर सकता है। निष्कर्ष सत्य–असत्य की जांच कर सकते हैं। यह विधि सतत परीक्षण के लिए खुली रहती है। यही होती है, ज्ञान की पृच्छा या सप्रमाणता।

ज्ञान निरपेक्ष सत्य की स्वानुभूति होता है। यह प्रिय–अप्रिय, सुख–दुख आदि भावों से निरपेक्ष होता है। इसका विभाजन विषयों के आधार पर होता है। ये विषय

अलग–अलग हो सकते हैं। विद्याशाखीय ज्ञान विचार दृष्टिकोण तथा प्रतिभासिक की अपेक्षा सत्यापनीय प्रमाणों पर आधारित होता है। सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता इसलिए भी आवश्यक है जिससे संबंधित निष्कर्षों का कोई भी अन्य अध्ययनकर्ता सत्यापन (Verification) कर सके।

सत्यापन का स्वरूप एवं विशेषताएं : प्लेटो के अनुसार ज्ञान के सत्यापन का स्वरूप यह दर्शाता है कि 'ज्ञान वह है जो वस्तुनिष्ठ, तर्कबुद्धि पर आधारित तथा नित्य होता है। किसी भी आदर्श शोध, परिस्थिति में व्यक्ति का मापन/प्रेक्षण पूर्णतः वस्तुनिष्ठ अनुभवजन्य, क्रमबद्ध तथा नियंत्रित होना चाहिए, ताकि जिसका अध्ययन किया जा रहा है, उसके मापन एवं प्रेक्षण पूर्णतः यथार्थ हो जाते हैं।'

प्लेटो के अनुसार विशेषताएं

1. सत्यापनीय ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन बुद्धि होती है।
2. ज्ञान का विषय वही हो सकता है जो शाश्वत हो।
3. 'विचार' ही तत्व है जो तीनों कालों में अवस्थित है, इसे 'प्रत्यय' विज्ञान या आइडिया (Idea) कहा गया है।
4. ज्ञान का प्रत्यय आदर्श, स्वयंभू, चेतन, नित्य, त्रिकालाबाधित, वस्तुनिष्ठ, निर्विकार, शुभ सामान्य एवं सम्प्रत्ययात्मक होता है।

जिस अध्यापक को विद्याशाखा का व्यापक ज्ञान होता है, उसका अध्यापन परिणामकारक व प्रभावी होता है। यह अनुसंधानों से सिद्ध हो चुका है। केवल इतना ही नहीं बल्कि ऐसे अध्यापक केवल जानकारियों की भरमार न देकर विद्याशाखा के गृहितक, पृच्छा पद्धति इनकी भी पहचान कराकर विद्याशाखा का नई पीढ़ी को परिचय कराके उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। संरचनाओं का ज्ञान भी आशय अभिवृद्धि के लिए महत्वपूर्ण होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. तटस्थ निरीक्षण द्वारा तथ्यों का उनके वास्तविक रूप में संकलन और विश्लेषण क्या कहलाता है?

   (क) सार्वभौमिकता (ख) मूल्य तटस्थता

   (ग) वस्तुनिष्ठता (घ) संस्कृति तटस्थता

8. मानवीय मूल्यों को कितने भागों में विभाजित किया गया है?

   (क) पांच (ख) आठ

   (ग) दस (घ) नौ

9. विद्याशाखीय ज्ञान की विशेषता का महत्वपूर्ण घटक होता है–

   (क) संस्कृति (ख) समाज

   (ग) प्राचीनता (घ) एकता

1.5 विद्याशाखीय ज्ञान और विद्यालयी पाठ्यचर्या

यहां पर विद्याशाखाएं और विद्यालयी विषयों के परस्पर संबंध पर चर्चा की जा रही है।

टिप्पणी

1.5.1 विद्यालयी विषय ज्ञान की विद्याशाखीय प्रकृति : आलोचनात्मक आकलन

विद्याशाखाएं मूल/मूलभूत ज्ञान की स्रोत होती हैं। शालेय अभ्यासक्रमों में विद्याशाखीय ज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उन विद्याशाखाओं से जुड़े विषय अलग–अलग स्तरों पर सीखने–सिखाने हेतु विस्तारित किए जाते हैं। प्राथमिक स्तर पर सारे विषय अनिवार्य होकर, उच्च प्राथमिक स्तर पर भाषा शिक्षा एवं कार्यानुभव जैसे विषयों से चुनाव करने का स्वातंत्र्य छात्रों को दिया जाता है। माध्यमिक स्तर पर विषयों के चुनाव का सही अवसर छात्रों को मिलता है क्योंकि वैकल्पिक विषयों की संख्या बढ़ जाती है। उच्च माध्यमिक स्तर पर शाखानिहाय विषय योजना होने के कारण हर शाखा में अभ्यास विषयों के भरपूर विकल्प दिए जाकर चुनाव करने का अवसर प्राप्त होता है।

शालेय स्तर पर जो विषय अध्ययन हेतु होते हैं, वे हैं– (1) भाषा – गद्य, (2) समाजशास्त्र– इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, (3) विज्ञान, (4) गणित, (5) कार्यानुभव, (6) शारीरिक शिक्षा, (7) सूचना एवं संप्रेषण तंत्रविज्ञान, (8) व्यावसायिक विकास हेतु कौशल्य एवं तंत्र विज्ञानात्मक विषयों का समावेश होता है।

विद्यालयी विषयज्ञान का विद्याशाखीय स्वरूप समझ लेने हेतु विद्याशाखा एवं शालेय विषयों में होने वाले परस्पर संबंध को समझ लेना अत्यावश्यक है।

कई बार कई जगह 'विद्याशाखा को ही अध्यापन' यह गृहितार्थ माना जाता है। इसलिए निम्न कुछ परिभाषाएं लेंगे–

Anthony Biglan: "An academic discipline or field of study is a branch of knowledge that is taught and researched as part of higher education."

Glosbe: "A branch of knowledge or learning which is taught or researched at the college or university level."

विद्याशाखा मतलब विशिष्ट ज्ञान क्षेत्र एवं ज्ञान निर्मिति करने की विशिष्ट पद्धति।

विशिष्ट आशय घटक, क्रिया एवं घटना तथा नियमों की संरचना को ही विद्याशाखा कहते हैं। उदाहरण– समाजशास्त्र, मानसशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, मानववंशशास्त्र।

अब 'शालेय विषयों' की परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे–

Encyclopedia of Britanica, "School subject is defined as an area of knowledge that is studied in school."

Karmon (2007), "A school subject constitutes an organizing framework that gives meaning and shape to curriculum content teaching and learning activities."

पाठशालाओं में अध्ययन–अध्यापन कार्य हेतु, अभ्यास किया जाने वाला ज्ञान का क्षेत्र यानी शालेय विषय होता है।

अभ्यासक्रम, आशय अध्ययन एवं अध्यापन इन सारी कृतियों को अर्थ एवं आकार प्राप्त करके देने वाले सुव्यवस्थित अभिकल्प/रचनाओं को शालेय विषयों में समावेशित किया जाता है। उदाहरण– इतिहास, भूगोल, गणित, नागरिकशास्त्र, विज्ञान आदि।

टिप्पणी

विद्याशाखाएं एवं विद्यालयी विषयों का परस्पर संबंध : शालेय विषय पारंपरिक शैक्षिक विषय होते हैं जैसे कि गणित, इतिहास, भूगोल, रसायनशास्त्र। इनका विद्याशाखा से प्रत्यक्ष संबंध होता ही है। कुछ ऐसे विषय जो पारंपरिक नहीं होते जैसे– नए–नए विषय। उदाहरण है– हॉस्पिटैलिटी मैनेजमेंट, टूरिज्म जैसे विषय। इनका विद्याशाखा से संबंध कम से कम होता है। शालेय विषयों को विद्याशाखा की संरचनाओं के अनुसार संगठित किया जाता है। दोनों द्वारा ज्ञान संक्रमण, ज्ञान वृद्धि एवं बालकों की बौद्धिक क्षमताओं का विकास होता दिखाई देता है। विद्याशाखाओं की विश्वसनीयता एवं सप्रमाणता शालेय विषयों में भी नजर आती है। शालेय विषयों की मूल संकल्पनाएं, पद्धतियां एवं कल्पनाओं का अभ्यास किया जाता है। उन्हीं कल्पनाओं का, पद्धतियों का अभ्यास विद्याशाखाओं में किया जाता है। विद्याशाखाओं में कौन–सा मूलभूत ज्ञान छात्रों को दिया जाए, कौन–सी आयु में दिया जाए, उस आधार पर छात्रों में कौन–कौन से वर्तन परिवर्तन आने चाहिए, कौन–सी अभिवृत्तियां, कौन–सी अभिरुचियों में बदलाव करने हैं, इस पर निर्णय लिए जाते हैं। ये निर्णय अलग–अलग विद्याशाखाओं के तत्वों द्वारा लिए जाकर निर्धारित किए गए अभ्यासक्रम (Course) एवं पाठ्यक्रमों (Syllabus) में से सामने आते हैं। इसी कारण पाठ्यक्रम का विचार भी यहां अत्यावश्यक हो जाता है।

पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम का विचार

अभी तक हमने विद्यालयी शिक्षा की महत्वपूर्ण संकल्पनाएं पढ़ी। दीर्घकालीन अभ्यासक्रमों द्वारा बाद में कक्षानुसार अलग–अलग वर्गों के पाठ्यक्रम / पाठ्यचर्या तैयार किए जाते हैं। अधिक जानकारी, व्याप्ति के साथ यह आशय मूर्त स्वरूप में किताबों में उतरता है। इस संपूर्ण प्रक्रिया में 'पाठ्यक्रम' महत्वपूर्ण होता है।

पाठ्यक्रम– "पाठ्यक्रम यानी विशिष्ट कालावधि में, विशिष्ट विषय का, कितना आशय, कौन–सी पद्धति से पूर्ण करना इसका निर्धारण होता है।"

"पाठ्यक्रम आशय का संगठन या रचना तथा अपेक्षित अध्ययन, अध्यापक छात्र एवं समाज तक पहुंचने का वो साधन है, जिसके कारण अलग–अलग जगहों पर अध यापन कार्य में एकसूत्रता लाने में मदद मिलती है।"

कृति 1 : आप जिस कक्षा के अध्यापक हैं, उस कक्षा को जो विषय पढ़ाते हैं / अध्यापन करते हैं, उस विषय की विद्याशाखा तैयार करके उसी विषय के पाठ्यक्रम का अभ्यास कीजिए। इस पाठ्यक्रम की रचना कैसे की गई है इसका विचार कीजिए।

पाठ्यक्रमांतर्गत समाविष्ट शालेय विषय तथा विद्याशाखा यह 'एक ही सिक्के के दो पहलू' हैं। इन्हीं के चलते शैक्षिक प्रवाह तथा व्यावसायिक प्रवाह में विषयों की जानकारी का अभ्यास करेंगे।

1.5.2 शैक्षिक प्रवाह / मार्ग

शालेय / विद्यालयी शिक्षा में कुछ पारंपरिक विषय होते हैं वैसे ही अपारंपरिक विषयों का समावेश भी होता है। कुछ अनिवार्य विषय होते हैं तो कुछ इच्छानुसार चुनाव करने वाले विषय भी होते हैं। जैसे– पाश्चात्य भाषाध्ययन, हिंदी–संस्कृत आधे–आधे सिखाना। ज्ञान के विशिष्ट क्षेत्रों की समझ आने के लिए कई शिक्षाशास्त्रियों ने प्रयास कर शिक्षा में योगदान प्रस्तुत किया है। विद्यालयी व्यवस्था की पाठ्यचर्या में कुछ मूलभूत विषयों को सम्मिलित किया गया। प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक

विषय केवल अध्ययन–अध्यापन कर बालकों का/छात्रों का संपूर्ण शारीरिक, मानसिक, भावनिक एवं सामाजिक विकास करते हैं।

टिप्पणी

प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा, क्षेत्रीय भाषा, हिंदी एवं अंग्रेजी इनमें से कोई तीन भाषाएं अध्ययनार्थ होती हैं। सामाजिक विज्ञान से जुड़े पर्यावरण तथा सामाजिक विज्ञान से संबंधित विषय समाविष्ट किए जाते हैं। विज्ञान में सामान्य विज्ञान तथा गणित एक स्वतंत्र विषय के रूप में दिए गए हैं।

सामान्यतः उच्च प्राथमिक स्तर पर यही ढांचा अपनाया जाता है।

माध्यमिक स्तर पर भाषाओं की वही अध्यापन विषय सूची होती है। सामाजिक विज्ञान में इतिहास के अलावा राजनीति विज्ञान, भूगोल, अर्थशास्त्र समाविष्ट करते हैं। विज्ञान में भौतिक, प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन करना अपेक्षित होता है।

उच्च माध्यमिक स्तर पर मुख्यतः 3 शाखाओं में छात्र अध्ययन हेतु प्रवेशित होते हैं। 3 शाखाओं में अध्यापन हेतु विषयों की सूची निम्नलिखित रूप में दी गई है–

शाखाएं

कला	वाणिज्य	विज्ञान
भाषाएं	लेखा कर्म	जीवशास्त्र
इतिहास	बैंकिंग	रसायनशास्त्र
भूगोल	व्यापारिक अध्ययन	भौतिकशास्त्र
अर्थशास्त्र	वित्त–विपणन	गणित
राजनीति विज्ञान	लेखा परीक्षण	सांख्यिकी
समाजशास्त्र	सेक्रेटेरियल प्रैक्टिस	वनस्पति विज्ञान
मनोविज्ञान	वाणिज्य व्यवस्थापन	

उच्च माध्यमिक स्तर पर शाखाओं में अंतर्भूत विषय सूची

पाठ्यक्रम से जुड़े शालेय विषयों की रचना करते समय आशय का चुनाव एवं व्यवस्था के साथ–साथ उस आशय पाठशाला एवं कक्षा के उपयोग हेतु रूपांतरण करना आवश्यक बन जाता है। विभिन्न शालेय विषय विशिष्ट हेतु से तैयार किए जाते हैं, उनकी रचना करने के लिए प्रचलित सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजकीय परिस्थितियों का संदर्भ लिया जाता है।

शालेय विषयों की निर्मिति की प्रक्रिया में जिन घटकों का संदर्भ एवं आधार लिया जाता है, वे घटक हैं–

- सामाजिक, सांस्कृतिक, राजकीय परिस्थिति।
- छात्रों की आयु व आवश्यकताएं।
- समाज द्वारा अपेक्षाएं।
- बालमानसशास्त्र का आधार।
- आशय एवं आशय के सिद्धांत।
- व्यवसाय, उद्योग की आवश्यकताएं।

टिप्पणी

- अध्यापन कार्यवाही के पूर्व आशय के बारे में कुछ महत्वपूर्ण निर्णय एवं आशय सिद्ध करने हेतु साधन।
- अध्यापक के शैक्षिक अनुभव।
- सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आवश्यकताओं का विचार कर आशय का चुनाव तथा शालेय अन्य विषयों के साथ जुड़ाव।
- अभ्यासक्रमीय एवं अध्यापनीय आवश्यकताओं के साथ शालेय विषयों से जोड़कर आशय प्रस्तुति की पूर्व तैयारी।

शालेय विषयों का समावेशन एवं शालेय विषय को पाठ्यक्रम से निकाल देना बहुत बड़ी जिम्मेदारी एवं सामाजिक इतिहास होता है क्योंकि समाज का एवं सामाजिक समस्याओं का अभ्यास करना यह महत्वपूर्ण कार्य शालेय विषय करते हैं, इसलिए सामाजिक क्रांति का वह अत्यंत महत्वपूर्ण साधन होता है।

1.5.3 व्यावसायिक मार्ग / प्रवाह

किसी भी राष्ट्र का विकास जैसे प्राकृतिक साधनों एवं संपत्तियों पर निर्भर होता है, वैसे ही उस देश की शिक्षा नीति पर भी निर्भर होता है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र का विकास करना ही होता है। पाठशालाओं में पढ़ाए जाने वाले विषय छात्रों के व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस शिक्षा द्वारा छात्रों के अध्ययन एवं प्रत्यक्ष जीवन में समन्वयन किया जाता है।

पाठशालाओं में दिया जाने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष व्यवहार में उपयोगी होना भी शिक्षा का एक उद्देश्य होता है। अपने देश को विकासशील देशों के गुटों से निकालकर विकसित देशों के गुटों में समावेशित करने के लिए उच्च दर्जे की शिक्षा देने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। आज का युग सूचना तंत्रविज्ञान का युग है। विकसित देशों के द्वारा प्रगति इसी कारण हासिल की गई है। इसलिए पाठ्यक्रमों में ऐसे विषय होने चाहिए, जिससे राष्ट्र एवं समाज का विकास हो सके।

शालेय शिक्षा से व्यक्तित्व विकास की गुंजाइश होती है। तो, उच्च माध्यमिक एवं महाविद्यालयीन शिक्षा में ऐसे विषय होने चाहिए जिनके द्वारा छात्रों एवं व्यक्तियों के व्यक्तित्व विकास के आगे जाकर समाज एवं राष्ट्र विकास में उसकी शिक्षा का उपयोजन हो सके तथा व्यक्ति को अपने पैरों पर खड़े होकर अपना जीवनयापन भी सही दिशा से गुजारने एवं संक्रमित करने का अवसर प्राप्त हो।

शिक्षा के व्यावसायिक मार्ग एवं प्रवाह से विकसितता की दिशा की ओर ले जाने वाले विषयों का विचार सामने आता है, वे विषय हैं–

- गणित क्षेत्र : विचार प्रक्रिया का गणितिकरण।
- संगणक क्षेत्र : कागजों के उपयोग के बिना कामकाज।
- अवकाश क्षेत्र : गणित एवं भौतिकी ज्ञान का आधार।
- क्रीड़ा क्षेत्र : खेल के मैदानों में ज्ञान का उपयोजन।
- इंजीनियरिंग / अभियांत्रिकी क्षेत्र : राष्ट्र सबलीकरण का दृष्टिकोण।
- वैद्यकीय क्षेत्र : रोगों का निदान एवं उपचार।
- सांख्यिकी क्षेत्र : विभिन्न वैज्ञानिक कृतियों में उपयोजन।

- कृषि क्षेत्र : कृषि विकास के कारण अर्थव्यवस्था का मजबूतीकरण।
- औद्योगिक क्षेत्र : कई देशों में निर्यात कर परकीय चलन वृद्धि।
- दूरसंचार क्षेत्र : कई क्षेत्रों में फायदे करके प्रगति में यशस्विता।
- यातायात क्षेत्र : देश के सभी भागों को जोड़कर प्रगति का मार्ग खुला।
- ऊर्जा क्षेत्र : विभिन्न ऊर्जाओं की निर्मिति से देश का विकास।
- संरक्षण क्षेत्र : संरक्षण यंत्रणा को मजबूत बनाकर राष्ट्र का विकसित देशों के गुट में समावेशन।

उपर्युक्त सारे क्षेत्र में प्रगति केवल विज्ञान और तंत्रविज्ञान के बलबूते पर की जा सकती है। इसलिए उच्च माध्यमिक शिक्षा से लेकर आगे महाविद्यालयीन स्तर के भी आगे प्रशिक्षण सेवाओं के द्वारा भारत देश की प्रगति साध्य करने का लक्ष्य रखना होगा। इन व्यावसायिक क्षेत्रों के अलावा, महाविद्यालयीन पाठ्यचर्या तथा प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक विकास की दृष्टि से और क्षेत्रों की पहचान कराना अत्यावश्यक होगा।

व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र निम्नलिखित हैं–

1. कला एवं हस्त शिल्प
2. कार्य शिक्षा
3. शांति शिक्षा
4. जीवन कौशल्य शिक्षा
5. स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा
6. मूल्य शिक्षा।

व्यावसायिक शिक्षा का महत्व

शैक्षिक शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण व्यावसायिक शिक्षा होती है। व्यावसायिक शिक्षा द्वारा जीविकोपार्जन या जीवन निर्माण ये दोनों महत्वपूर्ण क्रियाएं होती रहती हैं। यह प्रक्रिया व्यक्ति के जीवन में चिरकाल तक चलती रहती है। जीवन में आवश्यक अथवा वांछनीय होने पर अपनी व्यावसायिक योजना में बुद्धिसंगत परिवर्तन कर सकते हैं। पसंदीदा व्यवसाय करने हेतु उसके लिए प्रशिक्षण का योग्य चुनाव कर लेने से सफलता प्राप्त करना आसान हो जाता है।

व्यावसायिक शिक्षा देने में विद्यालय तथा महाविद्यालयों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। व्यावसायिक प्रशिक्षण हेतु कुछ सेवाएं दी जाती हैं। व्यावसायिक सूचना, चुनाव करने वालों को अपने को सिद्ध करने हेतु आत्म परीक्षण, व्यवसाय की पूर्व तैयारी, नियुक्ति, समायोजन तथा अनुसंधान सेवाएं दी जाती हैं।

व्यावसायिक शिक्षा के अंतर्गत व्यवसाय का चुनाव करते समय कुछ महत्वपूर्ण सोपानों का ध्यान रखना अत्यावश्यक है–

- व्यवसाय का महत्व
- कार्य का अनुभव
- व्यवसाय के लिए योग्यताएं
- कार्य की दशाएं

- वांछित प्रशिक्षण
- उन्नति के अवसर
- वेतन
- व्यावसायिकता का इतिहास
- कर्मचारी लोगों का अध्ययन
- सामग्री जिस पर कार्य करना है
- वांछित अनुभव
- कार्य की नियमितता
- व्यवसाय का संगठन
- नियुक्ति का स्थान।

इन सभी सोपानों से छात्र उचित विषयों का चुनाव कर सकते हैं। विद्यालय के माध्यम से छात्रों की व्यक्तिगत व्यावसायिक समस्याओं का समाधान आसानी से कर सकते हैं।

व्यावसायिक प्रशिक्षण में अनेक समस्याएं भी आ सकती हैं, जैसे निजी उद्योगों की भागीदारी में कमी, व्यावसायिक संस्थाओं की कम संख्या, प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या की कमी, व्यावसायिकों की असफलता, कौशल्य एवं शिक्षा के नए क्षेत्रों में कमी, कौशलों के उन्नयन में अवसरों का अभाव तथा वर्तमान शिक्षा प्रणाली। मौजूदा और भविष्य उद्योग के कौशल की मांग को लेकर गैरजिम्मेदारियां भी बहुत हैं। इन समस्याओं का निराकरण कर व्यावसायिक शिक्षा का महत्व बरकरार रखना आवश्यक होता है।

विद्यालयी एवं महाविद्यालयीन पाठ्यक्रम में व्यावसायिक वृद्धि हेतु तथा सुशिक्षित बेरोजगारों को व्यवसाय प्रदान कर अपने पैरों पर खड़े होने हेतु इस शिक्षा का भरसक उपयोग करके व्यक्तिगत विकास के साथ–साथ समाज एवं राष्ट्र विकास में योगदान देना, यह भी कर्तव्य महत्वपूर्ण माना गया है।

अपनी प्रगति जांचिए

10. वाणिज्य शाखा के अंतर्गत आने वाले विषय हैं–

    (क) बैंकिंग (ख) वित्त–विपणन

    (ग) (क) और (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

11. विद्यालयी विषयों के निर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण घटक है–

    (क) सामाजिक, सांस्कृतिक, राजकीय परिस्थिति

    (ख) समाज द्वारा अपेक्षाएं

    (ग) अध्यापक के शैक्षिक अनुभव

    (घ) उपर्युक्त सभी

12. व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र हैं–

    (क) कला एवं हस्त शिल्प (ख) स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा

    (ग) (क) और (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

टिप्पणी

1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)	2. (ग)
3. (घ)	4. (ग)
5. (घ)	6. (क)
7. (ग)	8. (ख)
9. (क)	10. (ग)
11. (घ)	12. (ग)

1.7 सारांश

वर्गीकृत किया गया ज्ञान थोड़ा और कम, दूसरे से अलग तथा संदर्भयुक्त होने के कारण उसका अभ्यास करना तथा उस पर प्रभुत्व प्राप्त करना, यह किसी भी व्यक्ति को उसके जीवनकाल में सहज ही हो गया। इतना ही नहीं, बल्कि उसे अधिक से अधिक ग्रहण करने का प्रयास भी सफल होने लगा। प्रत्येक तत्वज्ञ व्यक्ति अपने विचार, प्रयोग, निरीक्षण, मापन तथा अनुमान के आधार पर यह काम करने लगा। इस दृष्टिकोण से ज्ञान का बंटवारा विद्या यानी विद्याशाखा में किया जाने लगा। जैसे– मानव विषयी ज्ञान–मानव्य विद्या, समाज विषयी ज्ञान– समाज विद्या, अर्थ विषयक या संपत्ति विषयक ज्ञान–अर्थ विद्या।

कोई भी विद्या ज्ञान के अनुशासन का प्रतीक है। ज्ञान में एकसूत्रता, अनुशासन तथा इनका परस्पर संबंध होता है। इनके बिना विद्याओं का विचार नहीं किया जा सकता। इसलिए 300 सालों से तत्वज्ञान, व्याकरण, राजनीति इस तरह संकाय या विद्याशाखाओं का अलग–अलग विचार–विमर्श होने लगा।

उसके बाद के काल में संकाय या विद्याशाखाओं का उदय हुआ। आज भी नई–नई विद्याशाखाओं का निर्माण हो रहा है।

प्राचीन काल में ग्रीक संस्कृति काल में केवल तत्वज्ञान ही एकमेव विद्याशाखा थी। उसमें से भाषा, साहित्य एवं गणित कुछ काल के बाद अलग हुए। मात्र विज्ञान, रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, प्राणिशास्त्र विद्याशाखाएं नैसर्गिक तत्वज्ञान की उपशाखा में ही समाविष्ट थी। वैसे ही राज्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि सभी समाजशास्त्र नैतिक तत्वज्ञान उपशाखा में समाहित थे।

मानसशास्त्र मानसिक तत्वज्ञान उपशाखा में समाहित था किंतु 'विद्या' के पुनरुज्जीवन और धार्मिक सुधार के बाद तथा अनेक नए वैज्ञानिक शोधों के कारण और तंत्रविज्ञान की प्रगति के कारण ज्ञानवृद्धि को तीव्रता मिली। छपे हुए शोध तंत्रों से ज्ञान का निर्माण, वितरण, प्रसार तथा संग्रहण करना सहज होने लगा।

ज्ञान के इस विस्तार से तथा संग्रह से ज्ञान का सुव्यवस्थित संगठन करना आसान हुआ। उसमें से ही विद्याशाखाओं का उदय होने लगा।

ज्ञान मानवीय जिज्ञासा से उत्पन्न हुई कल्पना है। मनुष्य अपनी आयु के दौरान जो शोध करता है, उसमें से ज्ञान की निर्मिति होती है। इस सत्य का शोध विज्ञान और तत्वज्ञान दोनों में से होता है– ऐसा कहा जाता है।

ज्ञान स्वभावतः सर्वव्यापक होता है। ज्ञान की वृद्धि जैसे–जैसे होती गई वैसे–वैसे ज्ञानरूपी वृक्ष का विकास होता गया। उसका रूपांतरण प्रचंड वटवृक्ष में हुआ है। इस ज्ञान से वटवृक्ष की अलग–अलग विद्याशाखाएं निर्मित हुई हैं। ज्ञान के वटवृक्ष की विभिन्न शाखाएं अलग–अलग विद्याशाखाएं होती हैं।

विद्याशाखाओं का अभ्यास विश्वविद्यालय स्तरों पर सही ढंग से किया जाता है। शिक्षा के स्तर पर तो विद्याशाखाओं में सम्मिलित विषयों से जुड़ा आशय ज्ञान (Content Knowledge) तथा उससे जुड़े उप–घटक पढ़ाए/सिखाए जाते हैं। पारंपरिक विश्वविद्यालयों में तथा मुक्त विश्वविद्यालयों में कई विद्याशाखाओं द्वारा शिक्षणक्रम चलाए जाते हैं। इन विद्याशाखाओं को ही स्कूल के नाम से भी संबोधित किया जाता है। यहां स्कूल का मतलब पाठशाला न होकर विद्याशाखा (Discipline) के अर्थ में पाया जाता है। इन्हीं विद्याशाखाओं के अंतर्गत कई विषयों का अभ्यास छात्रों द्वारा किया जाता है।

विद्यालयी शिक्षा में भाषाएं– सामान्य विज्ञान, सामाजिक शास्त्र (इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र) इन विषयों के साथ–साथ आजकल टेक्नोलॉजी, संगणक विज्ञान तथा किसान कौशलों पर आधारित व्यावसायिक विषयों का समावेश किया जाने लगा है। किंतु इन परीक्षा पूरक विषयों से भी अलग कुछ विषय आते हैं, जिनकी परीक्षाएं नहीं ली जाती, केवल छात्रों के वर्तनादि निरीक्षण तथा व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से गुणांक या श्रेणियां देकर मूल्यांकन किया जाता है।

वे विषय होते हैं– मूल्य शिक्षा, समाजोपयोगी उत्पादक कार्य (S.U.P.W–Socially Useful Productive Work), समाजसेवा, व्यक्तित्व विकास से जुड़े– एन.एस.एस., एन.सीसी., आर.एस.पी., स्काऊट गाईड, होमगाड्र्स।

प्रत्येक विद्याशाखा का विशिष्ट स्वरूप होता है। विद्याशाखा का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता किसी एक व्यक्ति के पास नहीं होती, इसलिए अपने विषय की विद्याशाखा का कौन–सा ज्ञान छात्रों को देना है? उनके द्वारा छात्रों में कौन–सा वर्तन परिवर्तन अपेक्षित है? कौन–कौन सी अभिरुचियों एवं अभिवृत्तियों का निर्माण उनमें हो। इसलिए विशिष्ट विद्याशाखाओं के शिक्षाविद् (Educationist/Educator) विचार करके पाठ्यक्रम का निर्माण करते हैं।

प्रत्येक विद्याशाखा सुनिश्चित आशयवस्तु का अभ्यास कराती है जिसमें विशिष्ट घटना, वस्तु, क्रिया–प्रक्रिया, जीवन से जुड़े घटक, समाज से जुड़े घटक का समावेश होता है, इसलिए इनका अभ्यास भी अनिवार्य होता है। विद्याशाखाओं के ज्ञान से संबंधित समस्याओं का एवं आवश्यकताओं का स्वरूप तथा उसके अर्थनिर्वचन हेतु कृतियां इनके बारे में विद्याशाखा में गृहितक समेटे हुए होते हैं। इसी प्रक्रिया मूलभूत गृहितकों से संबंध जोड़ने का कार्य प्रमाणक एवं कार्यपद्धति द्वारा किया जाता है।

विद्याशाखीय ज्ञान में विशिष्ट बौद्धिक तथा सामाजिक कार्य भी निहित होते हैं। वैसे ही हर विद्याशाखा की अपनी खुद की पृच्छा पद्धति, ज्ञान निर्मिति, अनुसंधान के साधन, मार्ग तथा अधिगम भी होते हैं। इन सबका उपयोग एवं विचार करके विभिन्न घटनाएं क्यों घटती हैं? इनका जवाब एवं अंदाज बांधकर उन घटनाओं का स्पष्टीकरण देने के नियम विद्याशाखा द्वारा निर्मित किए जाते हैं। इन्हीं पृच्छाओं से संकल्पनाएं,

टिप्पणी

सामान्यीकरण तथा उपपत्तियों का निर्माण होता है, तथा उनकी रचना भी की जाती है और उनका सुव्यवस्थित रीति से सुसंगठन भी किया जाता है।

विद्याशाखाएं मूल/मूलभूत ज्ञान की स्रोत होती हैं। शालेय अभ्यासक्रमों में विद्याशाखीय ज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उन विद्याशाखाओं से जुड़े विषय अलग–अलग स्तरों पर सीखने–सिखाने हेतु विस्तारित किए जाते हैं। प्राथमिक स्तर पर सारे विषय अनिवार्य होकर उच्च प्राथमिक स्तर पर भाषा शिक्षा एवं कार्यानुभव जैसे विषयों से चुनाव करने का स्वातंत्र्य छात्रों को दिया जाता है। माध्यमिक स्तर पर विषयों के चुनाव का सही अवसर छात्रों को मिलता है क्योंकि वैकल्पिक विषयों की संख्या बढ़ जाती है। उच्च माध्यमिक स्तर पर शाखानिहाय विषय योजना होने के कारण हर शाखा में अभ्यास विषयों के भरपूर विकल्प दिए जाकर चुनाव करने का अवसर प्राप्त होता है।

शालेय स्तर पर जो विषय अध्ययन हेतु होते हैं, वे हैं– (1) भाषा – गद्य, (2) समाजशास्त्र– इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, (3) विज्ञान, (4) गणित, (5) कार्यानुभव, (6) शारीरिक शिक्षा, (7) सूचना एवं संप्रेषण तंत्र विज्ञान, (8) व्यावसायिक विकास हेतु कौशल्य एवं तंत्र विज्ञानात्मक विषय का समावेश होता है।

किसी भी राष्ट्र का विकास जैसे प्राकृतिक साधनों एवं संपत्तियों पर निर्भर होता है, वैसे ही उस देश की शिक्षा नीति पर भी निर्भर होता है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र का विकास करना ही होता है। पाठशालाओं में पढ़ाए जाने वाले विषय छात्रों के व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस शिक्षा द्वारा छात्रों के अध्ययन एवं प्रत्यक्ष जीवन में समन्वय साध्य किया जाता है।

पाठशालाओं में दिया जाने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष व्यवहार में उपयोगी होना यह भी शिक्षा का एक उद्देश्य होता है। अपने देश को विकासशील गुटों से निकालकर विकसित देशों के गुटों में समावेशित करने के लिए उच्च दर्जे की शिक्षा देने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। आज का युग सूचना तंत्र विज्ञान का युग है। विकसित देशों के द्वारा प्रगति इसी कारण हासिल की गई है। इसलिए पाठ्यक्रमों में ऐसे विषय होने चाहिए, जिससे राष्ट्र एवं समाज का विकास हो सके।

1.8 मुख्य शब्दावली

- **संग्रहित** : इकट्ठा किया हुआ।
- **तत्वज्ञ** : तत्व को जानने वाला।
- **अनुसंधान** : शोध या खोज।
- **सर्वव्यापक** : सर्वत्र फैला हुआ।
- **अंतर्निहित** : अंदर छिपा हुआ या समाहित।
- **अभिवृद्धि** : विशेष वृद्धि।
- **समाविष्ट** : व्याप्त।
- **संश्लेषण** : मिलाना या जोड़ना।
- **निर्मिति** : निर्माण।

- **प्रत्यक्ष** : जो दिखाई दे।
- **पृच्छा** : सवाल या प्रश्न पूछना।

1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. संकाय या विद्याशाखा से क्या अभिप्राय है? संक्षेप में बताइए।
2. विद्याशाखाओं के निर्माण के कारण बताइए।
3. विद्याशाखा के कारकों के उद्देश्य बताइए।
4. ज्ञान प्राप्ति के स्रोतों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।
5. विद्याशाखीय ज्ञान की समीक्षा कीजिए।
6. मूल्य तटस्थता पर संक्षेप में टिप्पणी कीजिए।
7. व्यावसायिक शिक्षा का महत्व बताइए।

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. विद्याशाखा की विशेषताएं बताइए।
2. विद्याशाखा के मुख्य घटकों का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।
3. ज्ञान प्राप्ति की पद्धतियों का निरूपण विस्तृत रूप में कीजिए।
4. टिप्पणी लिखिए–
   (क) प्राकृतिक विज्ञान
   (ख) सामाजिक विज्ञान
   (ग) इतिहास एवं भूगोल
   (घ) अर्थशास्त्र
   (ङ) सार्वभौमिकता
   (च) वस्तुनिष्ठता
   (छ) अवैयक्तिकता
   (ज) पृच्छा पद्धति

1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

- Deng. Z., (2003), *School Subjects and Academis Disciplines,* In A. Luke, A. Woods, & K. Weir (Eds) Curriculum, Syllabus design and equity: A Primer and model. Routledge.
- Goodson, I.F. & Marsh, C.J. (2005), *Studying School Subjects: A Guide,* Routledge.
- Hollis, Martin, (2000), *The Philosophy of ?Social Science: An Indroduction,* Cambridge University Press.

- Hudson, D. (1987), *Science Curriculum Change in Victorian England: A Case Study of the Science of Common Things,* In I. Goodson (Ed.), International Prespectives in curriculum history, Croom Helm.
- Kumar Krishna, (2004), *What is Worth Teaching?* (3rd edition), Orient Blackswan.
- Montuschi, E. (2003), *Objects of Social Science,* London: Continuum Press.
- Nagel, Ernest, (1979), *The Structure of Science: Problems in the Logic of Scientific Explanation,* Routledge, London.
- NCERT, (2005), *National Curriculum Framework,* NCERT, New Delhi.
- NCERT, (2005), *Position Paper on Curriculum, Syllabus and Textbooks,* NCXERT, New Delhi.

टिप्पणी

इकाई 2 ज्ञान : विद्यालयी विषयों में ज्ञान का संगठन, प्रकार, पाठ्यक्रम

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 विद्यालयी विषयों में ज्ञान का संगठन : विद्याशाखीय दिशा निर्देश
2.3 विषयज्ञान की विभिन्न प्रकृतियों द्वारा पाठ्यक्रम/ज्ञान का निर्माण
2.4 उदयोन्मुख प्रवाह में विद्याशाखीय ज्ञान
2.5 विद्यालयी ज्ञान के विभिन्न कार्य
2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

शिक्षा का उद्देश्य होता है सीखने की प्रक्रिया का संचालन करना। छात्रों के लिए सीखने का अभिप्राय होता है– नया ज्ञान प्राप्त करना, अनुभव द्वारा कार्य करना और पूर्व ज्ञान से नए ज्ञान को जोड़ना। अध्यापक को चाहिए कि वह अध्यापन कार्य की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करे। अध्यापन प्रक्रिया में छात्रों में जिज्ञासा जागृत करके, खोजी हुई प्रक्रिया के द्वारा ज्ञान प्राप्त कराए एवं प्रश्नोत्तर प्रणाली द्वारा मिली जानकारी से छात्रों को अवगत कराए। इस प्रणाली से न केवल छात्रों को आनंद मिलता है अपितु इससे ज्ञान का निर्माण होता है। सीखने के कार्यों में सक्रिय रहने से छात्रों की शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं का विकास होता है। उनकी आकलन क्षमता बढ़ती है। ज्ञान प्राप्त करने का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है।

आज के इस आधुनिक युग में सूचना एवं संप्रेषण तंत्र विज्ञान के क्षेत्रों का अत्यधिक विस्तार हो चुका है। मानव के दिन–प्रतिदिन के अनुभव, संशोधन तथा अध्ययन से नए ज्ञान एवं सूचनाओं का उदय हो रहा है। नई–नई विद्याशाखाओं का उदय हो रहा है।

प्रस्तुत इकाई में विद्यालयी विषयों में ज्ञान का संगठन– विद्याशाखीय दिशा निर्देश, विषय ज्ञान की विभिन्न प्रकृतियों द्वारा पाठ्यक्रम या ज्ञान का निर्माण, उदयोन्मुख प्रवाह में विद्याशाखीय ज्ञान तथा विद्यालयी ज्ञान के विभिन्न कार्यों का विवेचन किया गया है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप—

- विद्यालयी विषयों में ज्ञान के संगठन से अवगत हो पाएंगे;
- ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया को समझ पाएंगे;
- विद्याशाखीय ज्ञान से भलीभांति परिचित हो पाएंगे;
- विद्याशाखाओं के विभिन्न कार्यों के विषय में जान पाएंगे।

2.2 विद्यालयी विषयों में ज्ञान का संगठन : विद्याशाखीय दिशा निर्देश

प्रत्येक विद्याशाखा में से ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता किसी भी एक व्यक्ति के पास नहीं होती, क्योंकि विद्याशाखाओं का स्वरूप ही विशिष्ट होता है। ऐसे समय में विद्याशाखाओं का कौन—सा मूलभूत ज्ञान छात्रों को देना है? कौन—सी आयु में देना है? उसके आधार पर छात्रों में कौन—कौन से अपेक्षित परिवर्तन, अभिरुचि, अभिवृत्तियां बदलनी चाहिए? इस संदर्भ में निर्णय लिये जाते हैं। यह निर्णय विभिन्न विद्याशाखाओं, अनेक घटकों का (जैसे समाज, राष्ट्र की आवश्यकताएं) इनका विचार तथा निर्णय निर्धारित किये गये अभ्यासक्रम में से व्यक्त होते हैं।

अभ्यासक्रम के अनुसार पाठ्यक्रम तैयार किये जाते है। इस पाठ्यक्रम में प्रत्येक आशय का अनुलेखन किया जाता है। यद्यपि समयानुसार बदलती परिस्थितियों के सहयोग, अनुभव लेकर उचित परिवर्तन के साथ आशय का विस्तारित समावेश पाठ्यपुस्तकों में किया जाता है। अभ्यासक्रमों पर पड़ने वाले अलग—अलग संप्रदायों का प्रभाव भी सैद्धांतिक आधार के द्वारा अपेक्षित है। निसर्गवाद, आदर्शवाद, कार्यवाद, वास्तववाद ऐसे पुराने संप्रदायों के सैद्धांतिक आधारों के साथ उदयोन्मुख तात्विक संप्रदायों का प्रभाव भी पड़ता है।

विद्यालय विषयज्ञान के क्षेत्र के चार रूप

अभ्यासक्रम के द्वारा पाठ्यक्रम नियोजन का मुख्य उद्देश्य होता है— 'मानवीय विकासावस्था'। मानव का शारीरिक, भावनिक, बौद्धिक विकास धीरे—धीरे सीढ़ियों के अनुसार होता है। जैसे शैशवावस्था— 1 से 5 वर्ष, बाल्यावस्था— 5 से 12 वर्ष तक और किशोरावस्था— 12 वर्ष से 20 वर्ष तक। हर सीढी/स्तर पर विकास के कुछ अलग लक्षण तथा अलग आवश्यकताएं, विशिष्टताएं होती हैं। उनके वर्तन के पीछे भी कुछ खास प्रेरणाएं होती हैं, उन्हीं प्रेरणाओं से व्यक्ति/बालक शारीरिक, भावनिक, बौद्धिक एवं नैतिक विकास की विशिष्ट अवस्था तक पहुंचता है। एरिकसन, आसुबेल, कोहलबर्ग, जीन पियाजे इन्होंने इन्हीं विकासावस्था पर अनुसंधानों द्वारा प्रकाश डाला है, इसे हम नहीं भूल सकते।

विद्याशाखीय दिशानिर्देशन के अनुसार विद्यालय विषयज्ञान के क्षेत्र के चार रूप

टिप्पणी

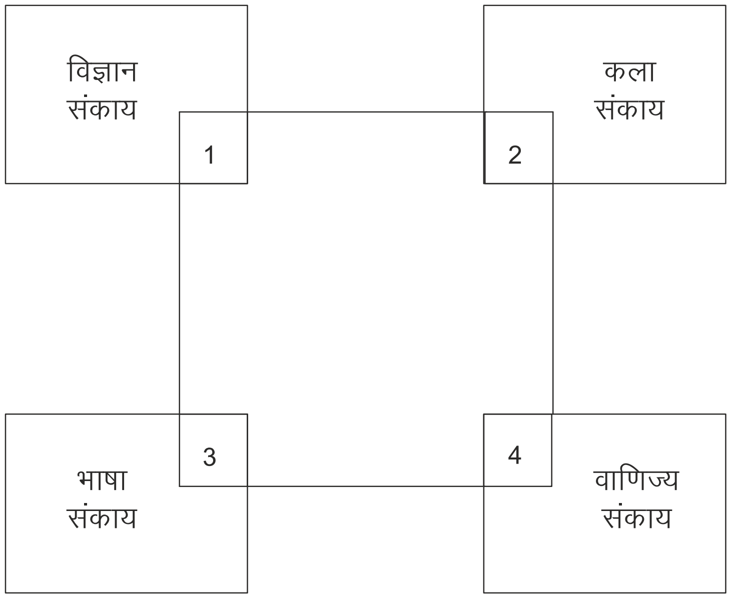

विषयज्ञान क्षेत्र के चार रूप

पाठ्यचर्या निर्माण में शैक्षिक तथा व्यावसायिकता लाने हेतु विभिन्न शैक्षिक परिषदों, संस्थाओं के साथ–साथ भारत सरकार, राज्य सरकारें तथा स्थानिक संस्थाओं ने भी प्रयास किये हैं। इसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु देश में निम्न संस्थाओं की स्थापना की गई।

1. NCERT - National Council for Education Research and Training - राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद।
2. SIE - State Institution of Education - राज्य शैक्षिक संस्थान।
3. SCT - State Council for Textbook - राज्य पाठ्यपुस्तक परिषद।
4. SCERT - State Council for Education Research and Training - राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद।

इन संस्थाओं की 1960 के दशक के आरंभ में स्थापना हुई। सभी के प्रयासों से नई शिक्षा अभिकल्प नीति का विकास हुआ जो 1975 में "दस वर्षीय विद्यालय शिक्षा : एक ढांचा 1975" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस फ्रेमवर्क में पाठ्यचर्या संरचना, प्राथमिक स्तर के आगे विज्ञान, गणित, कला, भाषा, वाणिज्य, पर्यावरण जैसे विषयों के अध्ययन का प्रावधान रखा गया।

इसमें प्रमुख विषयज्ञान के चार क्षेत्र निर्धारित किये गये– 1. विज्ञान संकाय, 2. कला संकाय 3. भाषा संकाय 4. वाणिज्य संकाय। इन चार प्रमुख संकायों के माध्यम से विद्याशाखाओं के विषयों की संगठन प्रक्रिया की गई। प्रत्येक संकाय में विद्याशाखा की भूमिका अलग होती है।

1. **विज्ञान संकाय**– विज्ञान का अर्थ है शास्त्रशुद्ध पद्धति से प्राप्त ज्ञान। जिसमें कृति निरीक्षण तथा उसमें से प्राप्त निष्कर्षों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। विज्ञान

टिप्पणी

शाखा में प्राणिशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, कृषि, अभियांत्रिकी, गणित, गृहशास्त्र, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, शरीरशास्त्र, सूक्ष्म जीवशास्त्र ऐसे कई विषयों का समावेश होता है।

विद्याशाखीय संगठन में विज्ञान एवं तंत्रविज्ञान का स्वरूप– राष्ट्रीय शिक्षा अभिकल्प 2005 को सामने रखते हुए इस संकाय में विषयों की रचना की गई। मूलभूत ज्ञान के परिचय के साथ–साथ छात्रों को शोधक वृत्ति जताने हेतु प्रयास का आशय निर्धारित किया गया। जिसमें क्रॉस डिसिप्लिनरी का विचार किया गया। ऊपर दिये गये विषयों के साथ–साथ अन्न, जैव विविधता, आरोग्य, नैसर्गिक, प्राकृतिक स्रोत, पर्यावरण व्यवस्थापन आदि घटकों का समावेशन हुआ।

2. **कला संकाय**– कला शाखा में मातृभाषा, अन्य भाषा, आधुनिक भाषा, इतिहास, भूगोल, चित्रकला, हस्तकला, प्राचीन शिक्षण, लघुलेखन, टंकलेखन, शारीरिक शिक्षण आदि का समावेश हुआ।

   कला विषय विद्यालयी पाठ्यक्रम में समावेशित तो किया गया, मगर मूल विषयों से बाहर भी रखा गया। कला एवं हस्त शिल्प की शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान एवं अधिगम तत्व बनाने की जरूरत है। इन क्षेत्रों के द्वारा बालकों में कौशल्य और योग्यताओं को विकसित करने की आवश्यकता भी है। इन विषयों को केवल मनोरंजन के स्रोत के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। इन विषयों के द्वारा– सृजनात्मक अनुभूति एवं प्रशंसनात्मक मूल्य, कौशल्यात्मक मूल्य एवं सौंदर्यात्मक मूल्यों का विकास भी अपेक्षित किया जाए। आने वाले समय में शिक्षा द्वारा आजीविका एवं स्वयं रोजगार के रास्ते खुलने चाहिए।

3. **वाणिज्य संकाय**– वाणिज्य का अर्थ है व्यापार। व्यापार से संबंधित विषय होते हैं– अर्थशास्त्र, व्यापार शास्त्र, लेखाशास्त्र, विपणन, वित्त, ऑडिटिंग, टैक्स बीमा व्यवसाय, बैंकिंग निवेश आदि जैसे विषय समावेशित किये जाते हैं।

   वाणिज्य विषय द्वारा इन दिनों पाठ्यभागों में व्यवसायीकरण लाने का प्रयास सफल हो रहा है। यात्रा और पर्यटन, कंपनी सेक्रेटरी, कम्प्यूटरीकृत अकाउंटिंग, फायनान्स और इन्वेस्टमेंट, फायनान्स और अकाउंटिंग, मार्केटिंग मैनेजमेंट, बैंकिंग और इन्श्योरेन्स मैनेजमेंट आदि विषयों के द्वारा छात्रों में नव व्यवसाय निर्मित करने की जागृति की जा रही है। उस हेतु ऋण देकर, आर्थिक सहूलियतें देकर स्वयं व्यवसाय, छोटे उद्योगों का निर्माण कर खुद को साबित करने के नजरिये का निर्माण किया जा रहा है।

4. **भाषा संकाय**– विद्याशाखीय भाषा का स्वरूप शालेय एवं महाविद्यालयीन स्तर पर अलग–अलग होता है। शालेय स्तर पर मराठी, हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत विषयों का पाठ्यक्रम होता है। अनेकों राज्यों की अलग–अलग भाषाएं हैं। मातृभाषा, प्रादेशिक भाषाओं के बारे में प्रेम एवं आदर निर्माण होने हेतु अलग योजनाएं बनायी जाती हैं। जैसे– शब्द भंडार बढ़ाना, शब्दों का योग्य उच्चारण करना, लेखन के नियम समझना, विभिन्न साहित्य प्रकारों का आस्वाद लेना, साहित्यिकों का परिचय करा लेना, विभिन्न मूल्यों का जतन करना आदि। विद्यालयी स्तर पर

भाषाशास्त्र विद्याशाखीय स्वरूप प्राथमिक मूल्य विकास व वृद्धि होकर अगले स्तर पर भाषीय जतन की वृत्ति को भी बढ़ाता है।

प्रत्येक भाषा की अपनी पहचान होती है। इसी कारण भाषाध्ययन करने वालों के लिए भाषायी विद्याशाखा द्वारा भाषाशास्त्र का ज्ञान अत्यावश्यक होता है। भाषा के उपयोग पर एवं उपयुक्तता पर ही भाषा का भविष्य निर्धारित होता है। उसके लिए प्राचीन भाषाओं के साथ–साथ आधुनिक भाषाओं का अध्ययन समझ लेना भाषाशास्त्र की दृष्टि से आवश्यक होता है।

नई शिक्षा नीति 2020 की मंजूरी के बाद 2022–2023 से लागू होने वाली है। 34 सालों के बाद शिक्षा की नयी योजना परिवर्तित की गई है। अभी पांचवीं कक्षा तक के छात्रों को केवल मातृभाषा, स्थानिक भाषा तथा राष्ट्रभाषा पढ़ाई जाएगी। अंग्रेजी भी एक विषय के रूप में ही होगी। शालेय शिक्षा 5+3+3+4 इस सूत्र के अनुसार दी जाएगी।

नई शिक्षा नीति के अनुसार बहुविद्याशाखीय अभ्यासक्रमों को अपनाया जाएगा। एक ही समय में अनेक विषयों को सीखा–सिखाया जाएगा। जिसमें निम्न (lower) तथा वरिष्ठ (higher) विभाजन होगा। छात्रों को विषयों के चुनाव का अवसर दिया जाएगा।

बहुभाषिक शिक्षा बालकों को सिखाते समय एक ही भाषा माध्यम से अध्यापन न करके विविध प्रादेशिक भाषाओं का उपयोग कर सकेंगे।

वैसे उपर्युक्त दी गयी शिक्षा संस्थाओं द्वारा शैक्षिक निरंतरता हेतु राष्ट्रीय विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था को मूर्त स्वरूप देने में योगदान दिया गया। न्यूनतम अधिगम स्तर (Minimum level of learning) पर बल दिया गया। विद्यालयी विषयों में पाठ्यवस्तुओं की संकल्पना में सुधार हेतु विशिष्टता का विचार कर छात्रों को अवसर दिये गये। वे जिस वास्तविक परिस्थिति में रहते हैं, उससे संबंधित विषयों की सीमाएं, विषयों को जोड़ने वाले अंतर्संबंधों के परिप्रेक्ष्य इनको समूह की मूलभूत प्रकृति एवं प्रवृत्तियों से जोड़ दिया गया। बालकों का पालन पोषण करने हेतु शिक्षा व्यवस्था को अधिक उपयोगी बनाने के दूरगामी मार्गो की ओर बढ़कर विकास करना है। विषयों के अनुसार, पाठ्यवस्तु संगठित करने एवं ज्ञान को प्रसारित करने से ज्ञान की रचना में छात्रों की सक्रिय सहभागिता से निर्णायक परिवर्तन निश्चित हो सकता है।

संकल्पनात्मक/वैचारिक संगठन के सिद्धांत/तत्व या नियम

विद्याशाखाएं बहुत ही विस्तृत होती हैं तथा उनका वर्गीकरण भी भिन्न होता है। व्यावहारिक रूप में भिन्न–भिन्न विद्याशाखाएं अंतर्मिश्रित भी होती हैं। इसीलिए विद्याशाखाओं एवं विषयों के एकत्रीकरण का संकल्पनात्मक विवेचन करना आवश्यक होता है। इन वैचारिक संगठनों के कुछ नियम/सिद्धांत/तत्व होते हैं, वे नीचे दिये जा रहे हैं–

- विषयों द्वारा कौशलों के आधार पर सामाजिक परिस्थितियों तथा परिवेश के प्रति आलोचनात्मक विकास होना आवश्यक है।

- स्थानीय परिस्थितियों के साथ जुड़ाव हो। इससे प्रासंगिकता एवं अर्थपूर्णता का ज्ञान महसूस होगा। पाठशाला के व्यतिरिक्त अनुभवों की पुष्टि मिलेगी।
- छात्रों द्वारा अवलोकन, वर्गीकरण, श्रेणियां बनाकर प्रश्न पूछकर अपनी जानकारी बढ़ाना एवं अपने अनुभवों में तर्क करना सीखना आसान हो जाएगा।
- विभिन्न विद्याशाखाओं में अंर्तसंबंध होता है, यह समझ कर ज्ञान के अंतर्गत जुड़ाव को समझना।
- प्रत्येक प्राप्त ज्ञान की जांच को खुलेपन से एवं उपयोगिता द्वारा पहचानना तथा तथ्यों की अस्थायी प्रकृति को पहचानना।
- ज्ञान को स्थानीय क्षेत्रों के विभिन्न सांस्कृतिक रिती–रिवाजों, प्रथाओं से जोड़ना तथा पाठशालेय ज्ञान विशेष में जोड़ने का उपयोजन करना।
- अध्ययनार्थी को प्रश्न करने के लिए प्रोत्साहित करना तथा प्रश्नों के जवाब पाने हेतु अवसर प्राप्त कराना।
- पाठशालाओं में चलने वाली अध्ययन–अध्यापनात्मक क्रिया–प्रक्रियाओं में 'सक्रियता' एवं 'समानता' के प्रति सजगता बढ़ाना तथा समूहों द्वारा ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों को सीखने को लेकर पहले से स्थापित रूढ़िबद्ध धारणाओं और भेदभाव के प्रति सजग होना।
- विकास तथा कल्पना और संकल्पनाओं के प्रति जागरूकता रखना।
- पाठ्यचर्या शैक्षिक प्रक्रिया के द्वारा व्यावहारिक दृष्टिकोण निश्चित करना।
- छात्रों के अध्ययन/अधिगम को बोझमुक्त कर विषय ज्ञान को विश्लेषण युक्त एवं आकलन युक्त बनाना।
- ज्ञान की रचनात्मकता हेतु छात्रों के अनुभव विकसित करना तथा उनके संपूर्ण व्यक्तित्व विकास को नये–नये आयामों द्वारा स्वप्रायोगिक करना।

प्रमाणीकरण

विशिष्ट शालेय स्तरों पर शिक्षा हेतु अनिवार्य आवश्यकताओं के संघ तथा किसी व्यवसाय हेतु, विशिष्टता के लिए, प्रशिक्षण की दिशा से विकसित करने की सार्वत्रिक योजना तथा शिक्षा क्षेत्र के कानूनी नियमन को प्रमाणीकरण कहते हैं। इसके लिए आवश्यक घटक होते हैं–

1. शैक्षिक कार्यक्रमों की रचना।
2. शैक्षिक आशय सामग्री की आवश्यकता।
3. शैक्षिक कार्यक्रमों के अमल हेतु निर्धारित नियम व शर्तें।
4. शैक्षिक कार्यक्रमों के परिणामों की आवश्यकता।

विद्याशाखीय विषयों का संकल्पनात्मक संगठन करने के लिए जो प्रमाणीकरण आवश्यक होता है, उससे विद्याशाखीय विषयों का एक विशिष्ट प्रतिमान (Model) अभ्यासक्रम बन जाता है। इस प्रक्रिया में मानकीकरण/प्रमाणीकरण के कुछ कार्य होते हैं– वे कार्य हैं–

1. मानकीकरण के कारण अध्यापक एवं छात्रों पर ध्यान केंद्रीभूत होता है।
2. शिक्षा क्षेत्र का विषयाध्यापन में नियोजन तथा नियंत्रण करने वाली यंत्रणा को सुनिश्चित कर दिया जाता है।
3. मानकीकरण द्वारा प्रशासन प्रमुख तथा कर्मचारियों पर भी लक्ष्य केंद्रित किया जाता है।
4. 'जीवन शिक्षण प्रणाली' निर्धारित की जाती है।
5. विषयों द्वारा प्राप्त ज्ञान छात्रों के अनुभव का एक भाग बन जाता है, जिसमें व्यावसायिक क्रियाकलाप एक प्रणाली बन जाती है।

   विद्याशाखाओं में सामान्य मानवतावादी, सामाजिक, आर्थिक, गणित तथा सामान्य प्राकृतिक विज्ञान अभ्यासक्रमों में शास्त्र होता है। इन सभी शास्त्रगत विद्यालयी विषयों में छात्रों को व्यक्तिगत शैक्षिक कार्यक्रमों का निर्माण करने का अवसर दिया जाता है, इतना ही नहीं उन्हें निर्मिति में भाग लेने का अवसर दिया जाता है।

   विषयों का वैचारिक संगठन करने के कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्य जो प्रमाणीकरण से जुड़े होते हैं, इस प्रकार हैं–

   - सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण तैयार करना।
   - छात्रों के सर्वांगीण विकास एवं सामाजिकीकरण हेतु पूरक परिस्थितियों का निर्माण करना।
   - छात्रों के आरोग्य का ध्यान रखना।
   - शैक्षिक प्रक्रिया में शैक्षिक घटकों के विकास में योगदान देना।
   - छात्रों का राष्ट्र विकास, समाज विकास, सार्वत्रिक संस्थाएं, क्रीड़ा क्षेत्र तथा सृजनशील कामों में सक्रिय सहभाग लेना।

संस्थात्मिकरण (Institutionalization)

संस्थात्मिकरण– शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शैक्षिक संस्थाओं द्वारा विभिन्न घटकों की व्यवस्था करने वाले प्रतिमान को अपनाकर स्वैच्छिक प्रयासों से कार्य प्रणाली का ऐसा परिचालन, जो सभी मानवीय घटकों को सम्मिलित कर, उनके विकास हेतु अपनाकर प्रणाली को सार्वभौमिक कर सके।

Institutionalization: a process of curriculum change. Institutionalization is a term used by Miles (1983) to refer to a process leading to the stage at which an innovation may be said to have become a built-in or accepted part of a school's curriculum.

संस्थात्मिकरण का उद्देश्य– छात्रों, अध्यापकों, शैक्षिक अधिकारियों को शैक्षिक संस्थाओं के विभिन्न विषयों, कार्यपद्धतियों एवं प्रक्रियाओं में निर्मित होने वाली समस्याओं की दृष्टि से अध्ययन एवं क्रमबद्ध प्रशिक्षण के संस्थागत अवसर उपलब्ध कराने की काफी समय से महसूस की जा रही आवश्यकता को पूरा करना होता है।

सी.ए.बी.ई. (Central Advisory Board of Education) के अनुसार मुफ्त एवं अनिवार्य (Compulsory) प्राथमिक शिक्षा, लड़कियों की शिक्षा, परिसर पाठशाला,

माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण (Universalisation), उच्च शिक्षा स्वायत्तता (Accountability), शालेय पाठ्यक्रमों में सांस्कृतिक विषयों की समावेशकला, पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की ओर ध्यान देना तथा तांत्रिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण इन पर जोर दिया जाता है।

संस्थात्मिकरण प्रक्रिया में सामाजिक, राजकीय मूल्यों का शैक्षिक प्रक्रिया के साथ परस्पर संबंध जोड़ा जाता है, ताकि छात्रों को इस ज्ञान को अपने जीवनानुभवों से जोड़ने का अवसर मिले। पाठ्यवस्तुओं के बाद छात्रों के मन में व्यावहारिक दृष्टिकोण का निर्माण होकर सार्वभौमीकरण हो सके। पाठ्यचर्या द्वारा निर्मित ज्ञान पर नियंत्रण रखने का कार्य संस्थात्मिकरण के द्वारा किया जाता है।

तार्किक संगठन

विद्याशाखाएं एवं विद्यालयी विषय दोनों अलग नहीं होते हैं। स्टेगन द्वारा अनुसंधान (2010) में यह साबित किया गया है। जैसे विषय क्षेत्र में निहित प्रकरणों को समझने के लिए हमें उस विषय के दर्शन एवं उद्देश्यों को समझना होता है, उसी प्रकार विद्यालयी पाठ्यचर्या में विषय के क्षेत्रों को समझने के लिए विषय के शास्त्रों को समझना आवश्यक है।

विद्यालयी विषयों का विद्याशाखाओं से तार्किक संबंध यानी मध्य संबंध स्थापित करने हेतु शैफलर ने (1991) में कुछ सुझाव दिये हैं; वे सुझाव हैं—

(अ) 'विषय' यह उनके उद्‌गमन अध्ययनों से स्पष्ट अथवा सीधे रूप में नहीं लिया जाता, यह शास्त्र नहीं होता।

(ब) 'शैक्षिक शास्त्र' और 'विद्यालयी विषय' बिना आधार के नहीं लिखे जाते, प्रामाणिक ज्ञान और अनुसंधान के आधार पर ही लिखने का कार्य होता है।

(स) 'विद्याशाखाओं की संरचना' यह प्रबंध खोजों एवं अनुसंधान की प्रगति के हेतुओं द्वारा बनती है। विषयों का लेखन विशेष संदर्भों के साथ तथा उद्देश्यों के साथ शिक्षा अधिगम को सहज बनाने के लिए किया जाता है।

(द) 'विद्याशाखाएं' एवं 'विद्यालयी विषय' सतत एवं अंतर्निर्भर होते हैं। समान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए होते हैं।

उपर्युक्त महत्वपूर्ण जानकारी से हम विद्याशाखाएं एवं विषयों के तार्किक संबंधों का निम्न आकृति में विवरण देखेंगे—

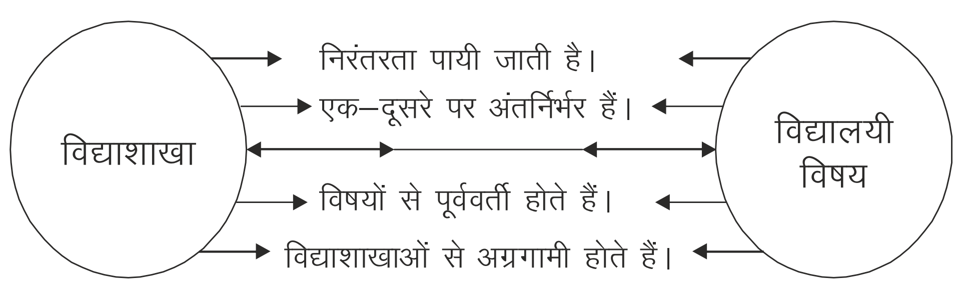

विद्याशाखा एवं विषयों में तार्किक संबंध

उपर्युक्त आकृति के अनुसार विद्याशाखाओं एवं विषयों में होने वाले अनुसंधानों, बौद्धिक तर्कों और नयी–नयी सोचों के कारण जैसे ज्ञानवृद्धि होती है, वैसे विद्याशाखाओं की संरचनाएं विस्तृत बनती जाती हैं। इसी के कारणवश विद्यालयी शिक्षा और उच्च शिक्षा की पाठ्यचर्या में भी नयी जानकारी, नये क्षेत्रों को एवं विषयों से जुड़े नये आयामों को समावेशित किया जाता है।

अध्यापकों द्वारा तार्किक संगठन प्रक्रिया

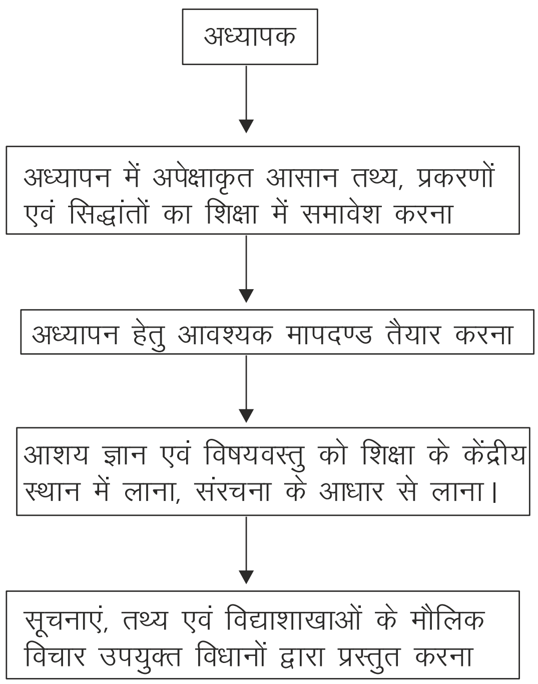

तार्किक संगठन प्रक्रिया

विद्यालयी विषयों की विद्याशाखाओं से जुड़ी तर्कसंगति का मतलब यही है कि मूल विचारों एवं व्यवहारों से तर्क की दृष्टि के संगत एवं अनुरूप है। तर्कसंगति की प्रक्रिया को जीवन के विभिन्न पक्षों और गतिविधियों में किया जाता है। तार्किक संगठन मानव मात्र का विशिष्ट अभिलक्षण है। 'तर्कसंगति' यह पाश्चात्य संस्कृति एवं दर्शन का मूल विषय है; यह तो हम जानते ही हैं।

संरचनात्मक प्रदर्शन/सारणीकरण

विद्याशाखाओं की संरचनात्मक रूप में प्रस्तुति अपने आप में एक कला है। अध्यापकों द्वारा अपने विषय का प्रदर्शन, विषय ज्ञान का स्वरूप पूर्ण विश्लेषण के साथ छात्रों के सामने प्रस्तुत करना भी अपने आप में एक कलात्मकता मानी जाती है।

ब्रुनर ने विद्याशाखा की संरचना की परिभाषा इस प्रकार दी है– "किसी भी विद्याशाखा की मूलभूत कल्पना, संकल्पना एवं संकल्पनाओं में परस्पर संबंध एवं तत्व इन सबके आधार के द्वारा की गई ज्ञान की रचनात्मकता को ही 'संरचना' कहते हैं।"

ब्रुनर के मतानुसार ऐसी मूलभूत संकल्पनाएं एवं तत्व सीखने के कारण छात्र उनका उपयोग एक से अधिक आशय घटक सीखने के लिए कर सकते हैं तथा उसी के कारण उनका अध्ययन अधिक सरल एवं सुकर बन जाता है।

डेविड आसुबेल (मनोवैज्ञानिक) ने कहा है कि, "विषयवस्तु/आशय का जिस पद्धति से संगठन किया जाता है उसे उस विद्याशाखा की संरचना कहते है, जिसमें से ज्ञान को प्राप्त करने से छात्रों एवं अभ्यास करने वालों के मन में वह ज्ञान जैसे संगठित होता है, उसे बोधात्मक संरचना कहते हैं। विद्याशाखीय संरचना एवं बोधात्मक संरचना दोनों एक–दूसरे के समांतर होती हैं।"

विद्याशाखीय संरचना में ज्ञान की तार्किकता

विद्याशाखीय संरचना में संकल्पना, तत्व यह सब श्रेणीबद्ध रचना के रूप में होते हैं। यह रचना पिरामिड की तरह होती है।

जैसे–जैसे विद्याशाखा संरचना विस्तृत होती जाती है, वैसे–वैसे उपशाखाओं का विशेषीकरण होता जाता है। इसका अर्थ यही है कि, कम से कम/छोटी से छोटी संकल्पना का ज्यादा से ज्यादा ज्ञान प्राप्त करना। यानी अध्यापक को विद्याशाखीय उपशाखाओं में छोटी एवं जानकारी युक्त, सूक्ष्मता के साथ जाल सादृश्य ज्ञान प्राप्त होता है। व्यक्ति/अध्यापक जितने अधिक व्यासंगी उतना ही विद्याशाखा का ज्ञान सूक्ष्म होता है।

अच्छी विद्याशाखीय संरचना के निकष (Criteria)

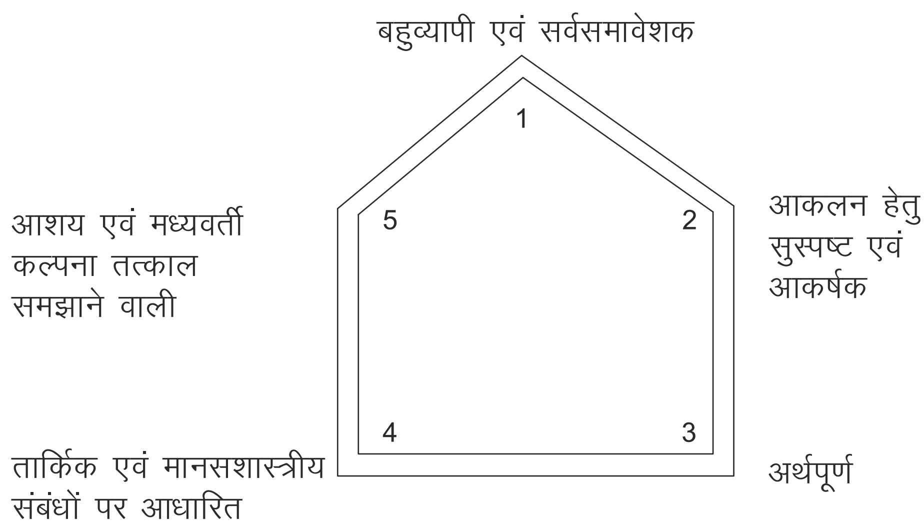

विद्याशाखीय संरचना के प्रमुख निकष

इस आकृति से हमें ज्ञात होता है कि अध्यापक का विद्याशाखा एवं संरचना संबंधी ज्ञान व आकलन सीमित होगा तो संरचना पर भी प्रभाव पड़ सकता है। जिस विद्याशाखा का ज्ञान व्यापक होता है, उस विषय के अध्यापक का अध्यापन परिणामकारक व प्रभावी होता है। ऐसे अध्यापक केवल ज्ञान ही नहीं देते बल्कि विद्याशाखीय गृहितक एवं पृच्छाओं की भी जानकारी देते हैं।

किसी भी विद्याशाखा के ज्ञान का स्तर निम्न नहीं होता। किंतु ज्ञान का स्तर पता करने के लिए उच्च शिक्षित होना, उच्च शिक्षित व्यक्तियों का मार्गदर्शन लेना, सतत अभ्यास, वाचन बहुत आवश्यक है।

कोई भी विद्याशाखा संरचना मानवीय जीवन, समाज एवं भौतिक घटकों की ओर देखने का एक नया दृष्टिकोण है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. विद्यालयी विषय ज्ञान के क्षेत्र को कितने भागों में विभाजित किया गया है?

   (क) चार (ख) तीन

   (ग) पांच (घ) छह

2. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद से क्या अभिप्राय है?

   (क) SIT (ख) SCT

   (ग) NCERT (घ) SCERT

2.3 विषयज्ञान की विभिन्न प्रकृतियों द्वारा पाठ्यक्रम/ज्ञान का निर्माण

सीखने की प्रक्रिया सक्रिय रूप से की जाती है। छात्र/व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुरूप तथा वातावरण के साथ सक्रिय होकर आंतरक्रियाएं करते हैं। अपनी क्षमता एवं कार्यकक्षा में नये विचारों को शामिल करते हैं। पाठ्यचर्या का स्रोत ज्ञान होता है तथा वह विषयवस्तु के चयन में सहायक होता है। पाठ्यक्रम को पाठ्यपुस्तक के ज्ञान से भी जोड़ा जाता है। विद्यालय में विषयों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा ही पाठ्यक्रम कहलाती है।

पाठ्यक्रम का निर्माण

शिक्षा प्रणाली में अध्यापकों द्वारा अध्यापन कार्य के लिए पाठ्यक्रम पर अमल करना होता है। इस प्रक्रिया में निर्धारित विषयों का अध्यापन ही पाठ्यक्रम होता है। पाठ्यक्रम की विचारधारा शिक्षा की मनोवृत्तियों, विचारधाराओं में परिवर्तन लाती है। शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित नहीं रह जाती। पाठ्यक्रम के निम्न कार्य होते हैं–

1. बालकों का सर्वांगीण विकास,
2. शिक्षा प्रक्रिया की विधाओं में परिवर्तन,
3. नई विचारधाराओं एवं प्रगतिशील मान्यताओं का जरिया
4. व्यक्ति/छात्र/मानव को समाजोपयोगी बनाने का महत्वपूर्ण साधन।

   ये महत्वपूर्ण कार्य पाठ्यक्रम द्वारा किये जाते हैं।

ज्ञान का निर्माण– दर्शन के अनुसार ज्ञान वह है जो मनुष्य को उन्नत करता है। अज्ञानता और अंध विश्वासों को दूर कर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। ज्ञान निर्माण एक प्रक्रिया है। यह शैक्षिक प्रक्रिया ज्ञान ग्रहण से अलग होती है। छात्र प्राप्त ज्ञान को अपने अनुभवों द्वारा परिवर्तित करते हुए उपयोजन करते हैं। ज्ञान नई–नई खोज, स्वतंत्र रूप से सीखने का संबंध स्थापित करता है। ज्ञान निर्माण में विषयवस्तु से संबंधित व्यवहार आगे दिये जा रहे हैं–

1. अवधारणाओं का अर्थ, 2. विचारों में वस्तुनिष्ठता, 3. अधिगम परिणामों में विभिन्नता, 4. सृजनात्मक परिणाम, 5. विचारों में स्वतंत्रता, 6. छात्रों द्वारा कार्यों की

तुलना 7. विनोदपूर्ण खेलपूर्ण अधिगम 8. अंतःकरण अभिप्रेरण की भूमिका 9. गतिविधि आधारित शिक्षा।

इनके द्वारा ज्ञान का निर्माण होकर छात्रों में बौद्धिक/संज्ञानात्मक विकास प्रक्रिया शुरू होती है।

संज्ञानात्मक विकास– मनोविज्ञान एक ऐसा अध्ययन क्षेत्र है, जिसमें बालक द्वारा सूचना संस्करण, भाषाध्ययन तथा मस्तिष्क के विकास के कई पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। जीवन यापन के लिए संज्ञानात्मक शक्तियां अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं।

बौद्धिक विचार, अनुभव और ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने और चीजों को समझने की मानसिक प्रक्रिया है। ज्ञान और पाठ्यक्रम इसी कारण एक ही सिक्के के दो पहलू भी होते हैं। पाठ्यक्रम का निर्माण शिक्षा की विभिन्न प्रकृतियों द्वारा भी होता है। जिसमें निम्न समावेशित होते हैं– (क) मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों द्वारा, (ख) वैज्ञानिक प्रवृत्तियों द्वारा तथा (ग) समाजशास्त्रीय प्रवृत्तियों द्वारा पाठ्यक्रम का निर्माण होता है।

उपर्युक्त जानकारी से ज्ञान निर्माण की परिभाषाओं का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

ज्ञान निर्माण की परिभाषाएं

- प्रो. जोड– "उपस्थिति, जानकारी और अनुभवों के भंडार में वृद्धि का नाम है ज्ञान।"
- वेबस्टर– "ज्ञान वह है, जो ज्ञात है और ज्ञात होने के बाद संचित रहता है, या वह जानकारी है जो वास्तविक अनुभव द्वारा प्राप्त होती है।"
- शर्मा एवं बरौलिया– "ज्ञान के निर्माण का आशय सूचनाओं का प्रबंधन, संगठन एवं पुनःप्राप्ति की प्रक्रिया से है जिसमें विज्ञान, तकनीकी, दर्शन एवं सामाजिक व्यवस्थाओं से संबंधित तथ्यों को सरलीकृत रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें छात्रों के सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया में अध्यापक, पाठशाला एवं शिक्षार्थी तीनों को ही सहायता मिलती है।

इन परिभाषाओं से ज्ञान निर्माण की विशेषताएं उद्धृत होती हैं, वे निम्न हैं–

1. संघटनात्मक संरचना,
2. सूचनाओं के संश्लेषण एवं विश्लेषण के रूप में,
3. उद्देश्य पूर्णता के लिए,
4. विज्ञान संबंधी सूचनाओं के लिए,
5. बौद्धिक ज्ञान के रूप में,
6. व्यापक प्रक्रिया के रूप में,
7. पुस्तकालय व्यवस्था के रूप में,
8. दार्शनिक प्रक्रिया के रूप में,
9. तकनीकी सूचनाओं की प्रक्रिया के रूप में,

10. वर्गीकरण की प्रक्रिया के रूप में,
11. सूचनाओं के निर्धारण की प्रक्रिया के रूप में,
12. सूचनाओं के समन्वयन की प्रक्रिया के रूप में,

ज्ञान का निर्माण सूचनाओं का प्रबंधन एवं संगठन है, ज्ञान होने के बाद वह संचित रहता है, वास्तविक अनुभव द्वारा प्राप्त होता है और अनुभवों के भण्डार में वृद्धि करता है।

वास्तववाद से ज्ञानमीमांसा

वास्तववाद को ही 'Realism' यानी यथार्थवाद भी कहा जाता है। यथार्थवाद से तात्पर्य है– एक ऐसी विचारधारा, जो वस्तु एवं भौतिक जगत को सत्य मानती है, जिसका हम ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। पशु–पक्षी, मानव, जल, थल, आकाश आदि सभी वस्तुओं का हम प्रत्यक्षीकरण कर सकते हैं इसलिए वास्तविक एवं सत्य हैं।

ज्ञान के मूल्यों के संदर्भ में यथार्थता शिक्षा के उद्देश्य, विषय वस्तु तथा शिक्षा पद्धति के लिए उनके फलित (Outcomes) बहुत उपयोगी होते हैं।

परिभाषा

- कार्टर वी गुड के अनुसार, "वस्तुगत, यथार्थता या भौतिक जगत के चेतन को मन से स्वतंत्र रूप में अस्तित्व रखना है, उसकी प्रकृति और उसके गुण, उसके ज्ञान से मालूम होते हैं।"
- रॉस के मत में, "जो कुछ हम प्रत्यक्ष में अनुभव करते हैं, उनके पीछे तथा उनसे मिलता–जुलता वस्तुओं का एक यथार्थ जगत है।"

यथार्थवाद के सिद्धांत

यथार्थवाद के सिद्धांत हैं–

1. प्रत्यक्ष जगत ही सत्य है।
2. ज्ञान प्राप्ति का मार्ग केवल इंद्रियां हैं।
3. अवयव की धारणा महत्वपूर्ण होती है।
4. मानव जीवन की महत्ता उसके वर्तमान रूप में है।

यथार्थवाद के रूप

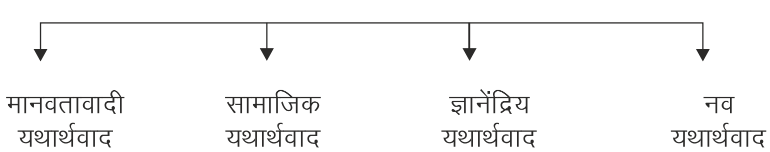

यथार्थवाद के रूप

यथार्थवादी शिक्षा के उद्देश्य

यथार्थवादी शिक्षा के उद्देश्य हैं–

1. बालकों को यथार्थजगत के योग्य बनाना, जिससे कि वे व्यावहारिक जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान कर सकें।

2. नैतिकता और धर्म की बात नहीं, भौतिक को ही सब कुछ मानना।

पाठ्यक्रम

1. पाठ्यक्रम ऐसा जिसका जीवन की परिस्थितियों, आवश्यकताओं और समस्याओं से संबंध है।
2. विज्ञान द्वारा निर्मित तथा उससे संबंधित विषय।
3. भाषा, कला एवं साहित्य आदि।

शिक्षा प्रणाली

इंद्रियों को माध्यम बनाने की इनकी प्रणाली है। स्वानुभव, निरीक्षण आदि को महत्व। आगमनात्मक पद्धति को मान्यता दी गई है। यात्रा द्वारा शिक्षा के पक्षपाती हैं। शब्द ज्ञान की अपेक्षा पदार्थ ज्ञान को महत्व।

अध्यापक की भूमिका– अध्यापक की भूमिका मार्गदर्शक की, सलाहकार की भी भूमिका हो। शिक्षा बाल केंद्रित हो। बालक केंद्रित होने के कारण अध्यापक का प्रशिक्षित होना अत्यावश्यक है।

ज्ञानमीमांसा (Epistemology)

यह दर्शन की एक शाखा है। आधुनिक काल में ज्ञानमीमांसा ने सभी को आकर्षित किया है, दर्शनशास्त्र का ध्येय सत्य के स्वरूप को समझना है।

प्रसिद्ध विद्वान गटलर कहते हैं– "दर्शन शिक्षा के प्रयोगों के लिए एक पथदर्शक है, शिक्षा अनुसंधान के क्षेत्र के रूप में दार्शनिक निर्णय के उद्देश्य निश्चित सामग्री को आधारों के रूप में प्रदान करते हैं।"

दर्शन शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करता है। दर्शन के अनुसार शिक्षा के तीन मुख्य आधार होते हैं– (क) दार्शनिक, (ख) मनोवैज्ञानिक (ग) समाजशास्त्री। दर्शन के आधार पर शिक्षा अपने उद्देश्यों को निर्धारित करती है। महात्मा गांधी के अनुसार शिक्षा उद्देश्य मुक्त हो, यहां मुक्ति क्या है? इसका जवाब जॉन डिवी के विचारों से आता है– दर्शन, एक स्वाभाविक समीक्षा है, समीक्षाओं की समीक्षा है, जिसमें विवेचनपूर्ण निर्णय होता है और जागरूकता पूर्वक मूल्यांकन होता है।

प्रारंभिक काल में अनुभववादियों (Empericists) तथा तर्कबुद्धिवादियों (Rationalists) के बीच के विवाद ने ज्ञानमीमांसा को दर्शनशास्त्र का मुख्य विषय बनाकर सबका ध्यान आकर्षित कर दिया।

- जॉन लॉक, डेविड ह्युम और जॉर्ज वर्कली प्रमुख अनुभववादी दार्शनिक थे।
- रेने देकार्त, स्पिनोजा और गाटफ्रिड लैबनीज तर्कवादी दार्शनिक थे।
- रेने देकार्त ने ई.स. 1596 से 1650 तक दर्शनशास्त्र में योगदान दिया। उनकी कुछ अग्रिम कल्पनाओं में गणित को निश्चितता प्राप्त हुई। 'चेतनाओं के व्यापक अस्तित्व के आकार' इस संकल्पना के जरिए उन्होंने अपने विचारों में परमात्मा और सृष्टि के अस्तित्व को सिद्ध किया। इसलिए देकार्त ने 'विवेचन विधि' को अपनाया।

- जॉन लॉक ने 1632 से 1704 तक दर्शन पर काम किया। उनके दृष्टिकोण से 'ज्ञान क्या है? ज्ञान की पहुंच कहां तक है?' इस खोज के जरिए लॉक ने अपना ध्यान मनोविज्ञान पर केंद्रित किया और 'मानव बुद्धि' पर निबंध की रचना की। यही अनुभववाद का मूलाधार समझा जाता है।
- जॉर्ज बर्कली ने 1684 से 1773 तक लॉक की आलोचना में 'मानववाद के नियम' लिखे और अनुभववाद को बढ़ावा दिया।
- डेविड ह्युम ने 1711 से 1776 तक 'मानव प्रकृति' में महत्वपूर्ण विचार दिये।
- इमैन्युएल कांट ने 1724—1804 तक कार्य किए और 'आलोचनावाद' के लिए मार्ग निश्चित किया।
- भारत में गौतम के न्यायसूत्रों के पहले ही सूत्र में 16 विचार—विषयों का वर्णन किया गया है, जिसके यथार्थ ज्ञान के विषय 'प्रमाण' और 'प्रमेय' होते हैं। ये दोनों ज्ञानमीमांसा और ज्ञेय तत्व भी हैं। दोनों में ही प्रथम स्थान 'प्रमाण' को दिया गया है।

वास्तववादी ज्ञानमीमांसा

वास्तववाद यानी यथार्थवाद। इसमें जो दृष्टिकोण दिखता है वही सातत्य माना जाता है। जो दिखता है उसी को प्रमाण मानकर बाकी अस्वीकार्य, यह दृष्टिकोण वास्तववाद में होता है। वास्तविक परिस्थिति से मिलते—जुलते पाठ्यक्रम में व्यावहारिक शिक्षा पर जोर तथा ज्ञान की इंद्रियों द्वारा प्राप्ति को महत्व दिया गया है।

तत्वज्ञान को संस्कृत भाषा में दर्शनशास्त्र कहा जाता है। जिस विषय में ब्रह्मांड में ज्ञात जानकारी को प्राप्त कर जीवन जीने हेतु विभिन्न मूल्यों को हेतु रूप में अपनाया जाता है वह दर्शन है। इस हेतु शिक्षा और दर्शन का परस्पर संबंध बहुत ही निकटता का होता है।

वास्तववादी ज्ञानमीमांसा का विचार शिक्षाशास्त्र में अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। शिक्षा सर्वांगीण विकास का साधन है। व्यक्ति का शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक विकास तो होता ही है, साथ ही प्राप्त ज्ञान से सद्‌गुणों का विकास भी होता है। शिक्षा में दर्शन संबंधी ज्ञान, विज्ञान, ललित कलाएं एवं बुद्धि द्वारा निर्दोष समझी जाने वाली श्रेष्ठ सृष्टि भी समावेशित की जाती है।

प्लेटो द्वारा शैक्षिक कार्य में शिक्षकों को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्रत्येक जन्मे हुए बालक के प्राकृतिक प्रवृत्तिक गुणों का विकास करने की जिम्मेदारी, समाज में होने वाली दुष्ट प्रवृत्तियों को नष्ट करने की जिम्मेदारी तथा जागृत नागरिकों का निर्माण करने की जिम्मेदारी अध्यापकों की होती है। इसीलिए शिक्षा में जन्मजात योग्यता के अनुसार पूर्णत्व प्राप्ति करने हेतु जीवन के 'सत्यम्—शिवम्—सुंदरम्' इन तत्वों के मूल्यों का स्वीकारना अपरिहार्य माना गया।

भारतीय दर्शन वैदिक दर्शन एवं अद्वैत दर्शन के नाम से माना गया है। संपूर्ण विश्व रचना के मूल में अतिमानवी, दैवी एवं चैतन्यपूर्ण शक्ति का निवास होकर वही शक्ति विश्व का संचालन करती है, यह उनका मानना है। अध्यात्मवाद में इस शक्ति को परब्रह्म कहते हैं, तो परमेश्वर अंतिम सत्य का सच्चा रूप है। यही अद्वैतवाद, यही

परब्रह्म, यही आत्मतत्व केवल शाश्वत है, सत्य है। दुनिया की प्रत्येक वस्तु के बारे में उत्पत्ति, स्थिति एवं लय यह क्रम दिखता है।

कुछ लोग आत्मा–परमात्मा, ब्रह्म और माया, पुरुष और प्रकृति, व्यक्ति और ईश्वर ऐसे दो स्वरूपों को मानते हैं– यही द्वैत है। परंतु सत्य, ब्रह्म या परमात्मा यह निर्गुण, अद्वयानंद, निराकार, स्वसंवेद्य है, उसे अद्वैत कहते हैं।

रूसो की प्राकृतिक प्रेरणानुसार शिक्षा द्वारा वास्तववादी ज्ञानमीमांसा भी रुचिपूर्ण है। जीन जैक्स रूसो ने जीवन तथा समाज के बारे में आदर्श कल्पनाएं दुनिया को दी और स्वार्थी, ढोंगी, कृत्रिम, दांभिक औपचारिक कल्पनाओं को उखाड़ फेंकने की सलाह दी।

बालकों की जन्मजात प्रवृत्ति 'क्षमताओं का स्वयंस्फूर्ति से विकास' होती है। इसके लिए समाज में होने वाले औपचारिक तत्व, कृत्रिमता एवं समाज की अनिष्ट प्रवृत्तियों से मुक्त शिक्षा उन्हें दी जाय। ज्ञानेंद्रियों और कर्मेन्द्रियों द्वारा शिक्षा दें। अभावात्मक शिक्षा की कल्पना को रूसो ने स्वीकार किया।

छात्रों में सद्प्रवृत्ति, सद्विचार व सद्गुण इनके संस्कार जानबूझकर न करके उनके ऊपर होने वाले अनिष्ट वातावरण के संस्कार न होने देना, उनका इन सबसे रक्षण करना यही अभावात्मक शिक्षा है। रूसो ने महिला शिक्षा पर भी जोर दिया। अध्यापक की कृति द्वारा शिक्षा देने के सारे तत्व उनके विचारों से निकलते हैं।

रूसो के ज्ञानमीमांसात्मक विचारों की विशेषताएं–

1. मानसशास्त्रीय नियमों का दृढ़ीकरण।
2. व्यक्तिगत अभिरुचियों के अनुसार शिक्षा।
3. प्राकृतिक प्रेरणाओं का विचार।
4. औद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा।
5. सुप्त नैसर्गिक क्षमताओं का, शक्तियों का आविष्कार।
6. इंद्रिय शिक्षा/कृति द्वारा अध्ययन।
7. बालक की शिक्षा में भावात्मक घटक।
8. स्वानुभवी शिक्षा पर जोर।
9. व्यावहारिक अनुभव यह ज्ञान।
10. मानसिक परिपक्वता के बाद कठिन विषयाध्ययन।
11. किताबी ज्ञान नहीं।
12. 'जीना' यही महत्वपूर्ण व्यवसाय।
13. ताड़न/मारना शिक्षा में निषिद्ध।
14. व्यक्तिगत फर्क जानना अत्यावश्यक।
15. शिक्षा किसी विशेष वर्ग या वर्ण का एकाधिकार (Monopoly) नहीं है।

यह क्रांतिकारी विचारधारा रूसो ने दुनिया को दी।

कांट की दर्शन ज्ञानमीमांसा

इमैन्युएल कांट ने ज्ञानमीमांसा से अपना भरपूर योगदान दिया। बुद्धिवाद और अनुभववाद को स्वीकार किया। दोनों समांतर चलने वाली प्रक्रियाएं हैं।

कांट की विचारधाराएं

बुद्धिवाद	अनुभववाद
• मनुष्य की बुद्धि जन्म से ही।	• जन्मजात मौलिक प्रत्ययों में विश्वास।
• सत्यों की जानकारी।	• इनके अनुसार अनुभव मौलिक प्रत्यय प्रागनुभविन नहीं होते।
• प्रागनुभविक प्रत्यय।	• सभी मानसिक प्रत्यय इंद्रियों द्वारा उत्पन्न। अतः वे आनुभविक होते हैं।

कांट की दो विचारधाराएं

सभी मानसिक प्रत्यय इंद्रिय अनुभव द्वारा होते हैं। कांट ने मानव मस्तिष्क की चार शक्तियां बताई हैं।

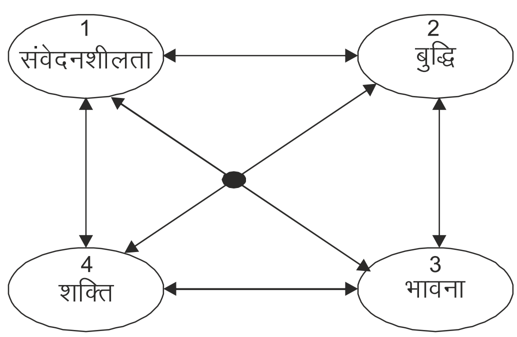

मानव मस्तिष्क की शक्तियां

इनके द्वारा मनुष्य को नैतिक अनैतिक का बोध होता है। उसके अनुसार आचरण होता है। इस प्रकार ज्ञान की सामग्री प्रत्यक्ष वस्तु व क्रिया से मिलती है। ज्ञान के निर्माण के लिए इंद्रिय संवेदना एवं बुद्धि विकल्प दोनों आवश्यक होते हैं।

ड्युई की ज्ञानमीमांसा

जॉन ड्युई दार्शनिक चिंतन की ज्ञानमीमांसा क्रियाओं से यानी कार्यवाद द्वारा सत्य को मानते हैं। सत्य की खोज क्रियाओं के परिणाम के आधार पर होती है। परंपरागत विचार, संस्कृति, पुस्तकीय ज्ञान, सांस्कृतिक आदर्श के अतिरिक्त प्रायोगिकता, क्रियाशीलता, स्वावलंबन, प्रयत्नशीलता को महत्व दिया गया।

टिप्पणी

डीवी के शैक्षिक सिद्धांत

डीवी के शैक्षिक सिद्धांत निम्न हैं–

1. अनुभव को प्रथम स्थान– शैक्षिक व अशैक्षिक अनुभव।
2. ज्यादा से ज्यादा विकास।
3. कृति द्वारा शिक्षा।
4. शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया।
5. प्रजातांत्रिक शिक्षा।

डीवी का अपेक्षित पाठ्यक्रम

सामाजिक जीवन, आवश्यकताएं, आजीविका पर जोर इस हेतु (क) बालकों को संभाषण–संवाद करवाएँ, (ख) कारणों का शोध लेने की अभिरुचि बढ़ाए, (ग) नई बातें सिखाएं, (घ) कलात्मक अभिरुचि द्वारा शिक्षा विकास की नीति अपनाएं।

जॉन ड्युई ने कार्यवादी दर्शन की मीमांसा करते हुए बालकों की शिक्षा में समस्या समाधान को अधिक महत्व दिया। उसकी पांच सीढ़ियां निम्न हैं–

1. समस्या/कठिनाई की अनुभूति।
2. समस्या का स्पष्टीकरण।
3. समस्या की संभावित कल्पनाओं का लेखन।
4. संभावित कल्पनाओं की कसौटी/परखना।
5. प्रयोग/परिणामों का आकलन/निर्णय।

इसी प्रकार धीरे–धीरे बालकों में संवेदनशीलता का निर्माण होकर सामाजिकता का विकास हो सकता है। जॉन डीवी के विचारों का प्रभाव पाठ्यक्रम, शिक्षा तथा अध्यापन पद्धति पर पड़ा है। उनकी शिक्षा व्यवहार के स्तर पर आयी तथा दर्शन जीवन विकास का साधन होकर ज्ञानमीमांसा में शिक्षा का नया अर्थ उन्होंने शिक्षा जगत को दिया।

इसी तरह हरबर्ट, फ्रेडरिक फ्रॉबेल, हर्बर्ट स्पेन्सर, भारतीय तत्वज्ञ महात्मा गांधी ने भी वास्तववादी ज्ञानमीमांसात्मक विचारों को स्वीकार किया।

वस्तुनिष्ठ से व्यक्तिपरक तथा अंतर्व्यक्तिपरकता

भारतीय दर्शन के इतिहास में सुव्यवस्थित ज्ञानमीमांसा की शुरुआत न्यायदर्शन से मानी जाती है। ज्ञानमीमांसा की निर्मिति एवं विकास 'प्रमाण' संकल्पना द्वारा हुआ है। प्लेटो, ऑरिस्टॉटल, रेने देकार्त इन सबके योगदान के साथ–साथ जॉर्ज बर्कली व डेविड ह्यूम ने भी अनुभववादी ज्ञानमीमांसा को पुरस्कृत किया। ज्ञान का उदय इंद्रियानुभव से होता है, ऐसे मानने वाले लॉक ने यह भी माना कि आकलन की भी मर्यादाएं होती हैं। इसी कारण बर्कली ने 'कुछ होना' का मतलब अनुभव विषय होना इस सूत्र को स्पष्ट किया क्योंकि अनुभव मूलतः व्यक्तिनिष्ठ होते हैं। इन अनुभवों की वस्तुनिष्ठ व्यवस्था ईश्वर के कारण ही सक्रिय हो सकती है।

पहले हम 'वस्तुनिष्ठता' क्या है, यह जान लेंगे।

वस्तुनिष्ठता– "तटस्थ निरीक्षण द्वारा तथ्यों का उनके वास्तविक रूप में संकलन और विश्लेषण ही वस्तुनिष्ठता है।"

टिप्पणी

"अपने स्वयं के विचार, आशा, आकांक्षा, भावना और पूर्वग्रह से प्रभावित न होकर किसी भी तथ्य या घटना का उसके वास्तविक रूप में ही विश्लेषण करना वस्तुनिष्ठता कहलाती है।"

ज्ञानमीमांसा में वस्तुनिष्ठ ज्ञान क्या है?

निरपेक्ष सत्य की स्वानुभूति ही ज्ञान हैं। यह प्रिय–अप्रिय, सुख–दुख इत्यादि भावों से निरपेक्ष होता है। यह ज्ञान लोगों के भौतिक तथा बौद्धिक व सामाजिक क्रियाकलापों की उपज, संकेतो के रूप में जगत के वस्तुनिष्ठ गुणों और संबंधों, प्राकृतिक और मानवीय तत्वों के बारे में विचारों की अभिव्यक्ति है।

'सत्यं–शिवं–सुंदरम' यह सर्वश्रेष्ठ तत्व होने के बावजूद अपने भारत देश में सामाजिक विभिन्नता कई घटकों में दिखाई देती है। जैसे– भाषा, अलग–अलग राज्यों की भाषा व्यवस्था के अनुसार शिक्षा का माध्यम, समाज, जातियां, उपजातियां, रहन–सहन, वस्त्र/वेशभूषा, केशभूषा, खानपान, संस्कृति, रीति रिवाज, पूजापाठ की विधियों के प्रकार। सामाजिक विभिन्नताओं के कारण भारतीय समाज का वर्णन भी सही ढंग से नहीं कर सकते। विविधता एवं वैचित्र्यपूर्णता के कारण देश में अनेक विवाद हैं परंतु प्राचीन भारतीय समाज एवं संस्कृति के कारण देश एक सूत्र में बंधा हुआ है।

वस्तुनिष्ठ ज्ञान से व्यक्तिपरक ज्ञान की ओर जाते हुए समूह का विचार महत्वपूर्ण है।

समूह (Group)

मनुष्य समाज प्रिय प्राणी है, समाज में रहता है, और समूह के रूप में रहता है। समूह के कई प्रकार होते हैं–

1. संदर्भ समूह (Reference Group)
2. समआयु समूह (Peer Group)
3. सामाजिक समूह (Social Group)

मानव समाज का प्रमुख आधार होता है, सामाजिक समूह। व्यक्ति अपने शैक्षिक, व्यावसायिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सभी प्रकार के विकास के कार्यों के साथ संबंध, व्यवहार आदि कार्यों में समूह की मदद लेता है। सामाजिक समूह से ही उसका व्यक्तित्व बनता, बिगड़ता है। इसलिए वह समूह से अपने आप को अलग नहीं कर सकता। समूह के बिना जीना व्यक्ति के लिए असंभव है तथा समूह के बिना व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। समाजीकरण की प्रक्रिया का दृढ़ीकरण करके व्यक्ति वस्तुनिष्ठता से व्यक्तिपरकता की ओर जाने की प्रक्रिया में स्थैर्य एवं एकात्मकता प्रस्थापित करता है।

वस्तुनिष्ठता से आंतर्व्यक्तिपरकता

समाज व्यक्तियों के उस समूह को कहते हैं जो किन्हीं खास संबंधों या खास व्यवहारों द्वारा आपस में बंधे होते हैं। समाज एक संगठन है। पारस्परिक संबंधों का एक समुच्चय

होता है। ज्ञानमीमांसा में व्यक्ति वस्तुनिष्ठता से आंतर्व्यक्तिपरक होते हुए सामाजिक समूह से व्यक्तिगत संबंध रखने होंगे। (Individual and Social Group Relationship) व्यक्ति व्यक्ति से समाज बनता है।

आंतर्व्यक्तिक संबंध निम्न तरह से होते हैं–

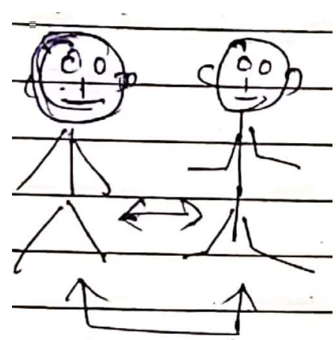

1. व्यक्ति व्यक्ति में संबंध

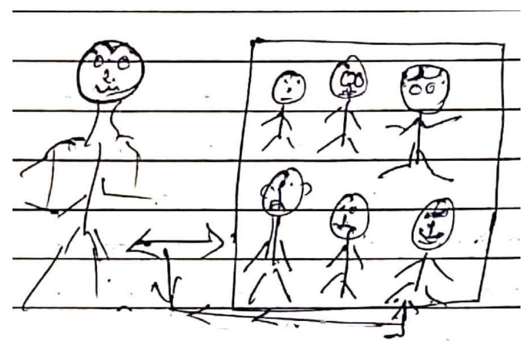

2. व्यक्ति व समाज में संबंध

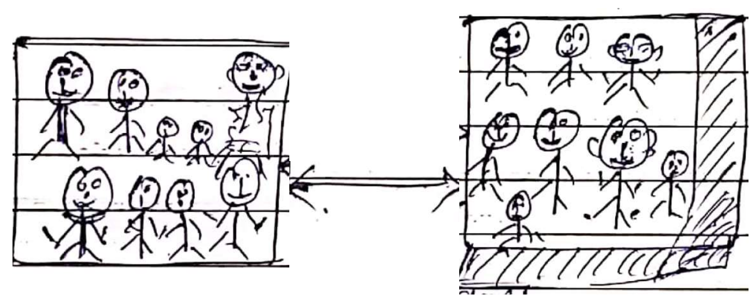

3. समाज और समाज में संबंध

व्यक्ति के आंतरव्यक्तिपरक संबंध

व्यक्ति का संबंध जन्म से लेकर मृत्यु तक समाज से रहता है। जैसे सबसे पहले परिवार, मित्र, पड़ोसी, समाज, सामाजिक गोत्र, जातियां, उपजातियां, व्यवसाय प्रदेश/प्रांत, राष्ट्र एवं विश्व इन कड़ियों के जरिए संबंध बनाए रखता है। सामाजिक समूहों से वह बहुत कुछ सीखता है। खुद भी सिखाता है। यही आंतर्व्यक्तिपरक ज्ञान है।

आजकल तो विश्व भी एक विशालतम एवं प्रचंड बड़ा सामाजिक समूह माना जाता है। www का पहले world wide web यह अर्थ होता था। अब www का अर्थ world without walls कहा और माना भी जाता है क्योंकि तंत्रवैज्ञानिक प्रगति के द्वारा मानव ने यह मिसाल के रूप में स्वीकार कर खुद को आंतर्व्यक्तिक बनाकर दिखाया है।

सार्वभौमिक से प्रासंगिक/स्थानिक विशेषिक/वैशेषिक

सार्वभौमिक ज्ञान : यह उन सभी कुशल विशेषताओं, अधिगम की शाखाओं आदि को सम्मिलित करता है, जो सभी की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनुकूलित या समायोज्य हैं। यह ऐसा लक्षण या विशेषता है, जो व्यक्ति को किसी विशेष व्यक्ति से अलग बनाता है, या वह भी है जो सब में समान रूप से पाया जाता है।

सार्वभौमिक ज्ञान सत्य पर आधारित होता है, तथा यह देश एवं काल की सीमाओं से परे होता है। जैसे भौतिकी एवं गणित के सिद्धांत एवं नियम सार्वभौमिक ज्ञान के उत्तम उदाहरण हैं; जो हमेशा निश्चित होते हैं। चाहे कोई भी स्थान हो या काल हो, इनमें किसी प्रकार का बदलाव परिस्थितियों के बदलने से नहीं होता है क्योंकि इस प्रकार का ज्ञान, प्रयोग, निरीक्षण एवं अनुभव से प्राप्त होता है।

विशेषताएं

1. ब्रह्मांड में हर जगह और सभी समय में सत्य माना जाता है।
2. सार्वभौमिक ज्ञान के दो प्राथमिक क्षेत्र होते हैं– भौतिक विज्ञान और गणित।
3. इस ज्ञान में प्रयुक्त क्षेत्रों के सारे कार्य स्थिर रहते हैं। उनका उपयोग सभी प्रकार के रूप, आकारों के लिए किया जाता है।
4. सार्वभौमिक ज्ञान के विपरीत स्थानीय ज्ञान होता है।

स्थानीय ज्ञान (Indiginious knowledge)

ऐसा ज्ञान जो बिना किसी स्थान विशेष के तथा समालोचन करने में विशेष रूप से पाया जाता है तथा स्थानीय विशेषताओं और सूचनाओं पर आधारित होता है, स्थानीय ज्ञान कहलाता है। स्थानीय ज्ञान जो स्थानीय परिप्रेक्ष्य में ही समझा जाता है।

स्थानीय ज्ञान ऐसे ज्ञान को कहा जाता है, जो किसी निश्चित समय में, किसी स्थान विशेष पर, किसी समाज के द्वारा विकसित किया गया हो। ऐसा ज्ञान निरंतर विकसित होता रहता है। साथ ही यह सभी जगह या सभी परिस्थितियों में भी विद्यमान नहीं होता है। प्रारंभिक काल में बालक/छात्र अपने स्थानिक/स्थानीय परिवेश के साथ आंतरक्रिया करके ज्ञान का निर्माण करते हैं, क्योंकि बालक अपने स्थानीय परिवेश के साथ लगातार आमने–सामने रहता है। अतः प्रारंभिक कक्षाओं के अध्यापक को चाहिए कि अध्यापन करते समय वहां के स्थानीय ज्ञान से जुड़े अनुभवों को उदाहरण के साथ प्रस्तुत करें, ताकि बालकों को सिखाया जा रहा पाठ उनके अंतर्मन में गहराई के साथ उतर जाए।

स्थानीय ज्ञान की विशेषताएं

1. स्थानीय ज्ञान अनुभवों पर आधारित होता है।
2. कई सालों से पूर्व यानी शताब्दियों से किये गये प्रयोगों का यह परिणाम होता है।
3. स्थानीय ज्ञान प्रकृति एवं वातावरण के अनुकूल होता है।
4. स्थानीय ज्ञान स्थानीय प्रथाओं, संस्थाओं, स्थानीय संबंधों में गुंथा हुआ होता है।
5. यह स्थानीय व्यक्तियों या समुदायों द्वारा अपनाया हुआ होता है, जिसमें परिवर्तनशीलता का मुख्य कार्य होता है।

स्थानीय ज्ञान कई या सभी कौशल्यात्मक अधिगम की शाखाओं आदि को सम्मिलित नहीं करता है। ब्रह्मांड की विविध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए

अनुकूलित या समायोज्य नहीं है। स्थानीय ज्ञान सभी को प्रभावित नहीं करता है। इसमें सभी सम्मिलित नहीं है और सभी के द्वारा इसका उपयोग नहीं समझा जाता है।

संस्कृतिमुक्त से संस्कृतिबाध्य ज्ञान

बालकों के विकास में संस्कृति का बड़ा ही योगदान होता है। हमारे समाज की यह विशेषता है कि, चाहे हम किसी जाति–धर्म के हों, गरीब हों या अमीर हों। किसी भी देश, काल या स्थिति में हों, हम संस्कृति का अनुकरण करते ही हैं। मानवीय भावनाओं का जतन करने का यह एक जरिया हम भूल ही नहीं सकते।

अपने देश में समाज अपनी जातियों, धर्मों, समूह की परंपराओं एवं रीति–रिवाजों के साथ ही जीते हैं और अंत तक रहते भी हैं। बालकों का सर्वांगीण विकास भी इन्हीं सारी क्रियाओं द्वारा प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रभाव डालता है। इसी के चलते शिक्षा में संस्कृति का अभ्यास अनिवार्य हो जाता है।

संस्कृति से ज्ञान का स्रोत बहता है। संस्कृति की प्रभावशीलता जानने हेतु संस्कृति का अभ्यास आवश्यक है।

संस्कृति की प्रभावशीलता

संस्कृति– परिभाषाएं

1. इ व्हीं डी. रॉबर्ट, "केवल मनुष्य को अवगत करने में संभाव्य ऐसे व्यवहार्य तथा तात्विक विचार व ज्ञान का संचय" ही संस्कृति होती है।
2. श्रीमती इरावती कर्वे, "मनुष्य समाज की आंखों से दिखने वाली भौतिक वस्तुरूप निर्मिति तथा आंखों को न दिखने वाली परंतु विचारों का आकलन करने वाली मनोमय सृष्टि ही संस्कृति होती है।"

बालक के विकास पर संस्कृति एवं समूह का प्रभाव

बालक जिस परिवार में जन्म लेता है, उस परिवार, वर्ग, जाति, उपजाति, समुदाय के रहन–सहन, रीतिरिवाज के मूल्य उस पर होते हैं। वातावरण की, परिस्थिति के अनुसार, बदलाव के अनुसार, इच्छा–अपेक्षाओं के अनुसार उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। संस्कृति की विशेषताएं एवं संस्कृति के घटकों की जानकारी इस हेतु आवश्यक होती है।

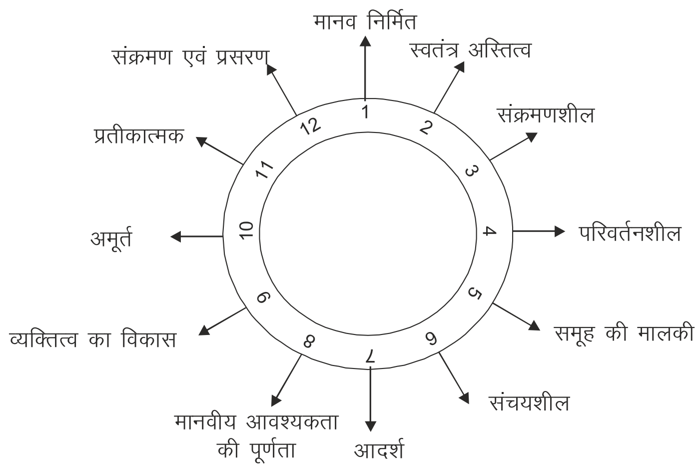

संस्कृति की विशेषताएं

टिप्पणी

संस्कृति के घटक

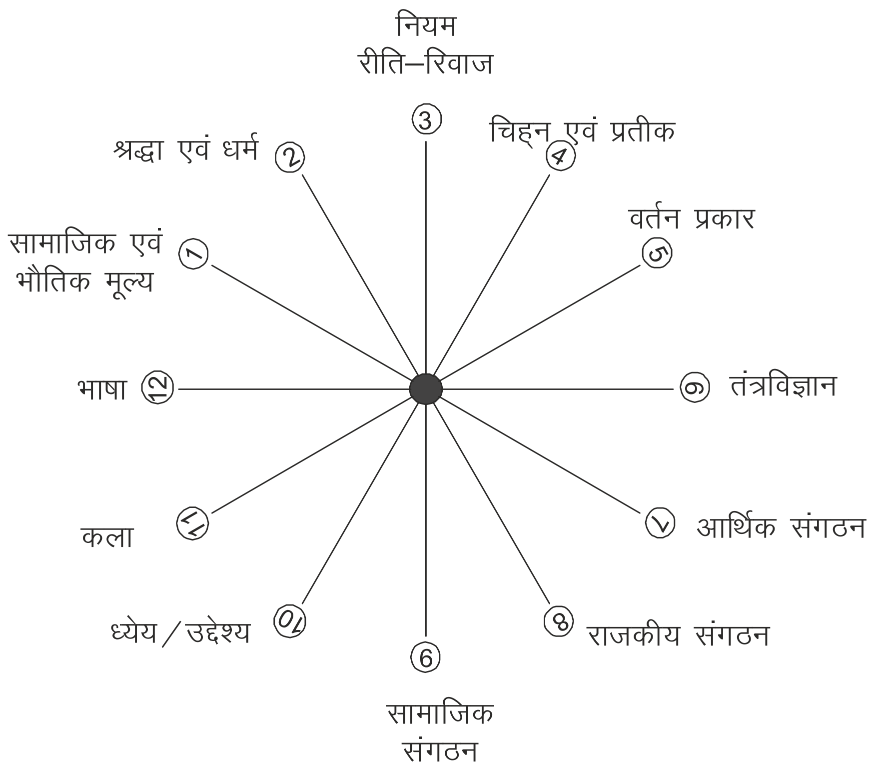

संस्कृति के घटक

संस्कृति के समग्र रूप लोकाचार (Folkways), नीतितत्व (Morals) तथा प्रत्यक्ष प्राप्त परिस्थिति में दिखते हैं। रूढ़ियां, परंपराएं एवं लोकाचार ये सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती हैं, परिणामस्वरूप बालकों के विकास पर भी उसका अच्छा बुरा प्रभाव होता है। यह प्रभाव बालकों के अलग–अलग अंगों पर पड़ता है। वे अंग हैं– (अ) शारीरिक विकास पर प्रभाव, (ब) मानसिक विकास पर प्रभाव (क) आध्यात्मिक विकास पर प्रभाव (ड) संवेगात्मक व सौंदर्यात्मक अंग पर प्रभाव (इ) दरिद्रता का प्रभाव (फ) सांस्कृतिक नियोजन का प्रभाव (ग) पारिवारिक विघटन का प्रभाव (ट) अपराध के प्रभाव आदि अंगों पर प्रभाव होता है।

संस्कृति मुक्त ज्ञान– मानव ने खुद पर एवं प्रकृति पर विजय का संपादन करके जो सामर्थ्य निर्माण किया है, उन घटकों का समावेश संस्कृति में किया जाता है। संस्कृति के दो रूप होते हैं–

मूर्त स्वरूप (भौतिक घटकों का समावेश)	अमूर्त स्वरूप (अभौतिक घटकों का समावेश)
कला, मूल्य, शिक्षा, आदतें, कानून, आचार विचार, रूढ़ियां, परंपरा, साहित्य, नीति मूल्य, चारित्र्य।	आध्यात्मिक ज्ञान, संचित स्वरूप का ज्ञान, क्षमताएं, वैचारिक एवं मानसिक शक्ति तत्व, श्रद्धा, विश्वास, प्रथा।

संस्कृति के रूप

टिप्पणी

संस्कृति के दोनों रूपों से जुड़े घटकों को स्वीकार–अस्वीकार करना बालक/व्यक्ति पर निर्भर होता है। बालक जब बाल्यावस्था में होता है और उस पर संस्कार करने वाले मानवीय घटक जब तक संस्कार करते हैं, तथा जब बालक नाबालिग होता है और जब तक वह स्वतंत्र विचार प्रकट नहीं कर सकता, संस्कारों का उल्लंघन नहीं कर सकता। मगर जैसे–जैसे बालक का रूपांतरण व्यक्ति या आदमी बनने का मार्गदर्शन करता है, संस्कारों की परिभाषा बदलती जाती है। आकृति में दर्शाये संस्कृति के मूर्त–अमूर्त घटकों को स्वीकार करना तथा संपादन करना मानव/व्यक्ति के ऊपर निर्भर होता है, तथा प्राप्त संस्कार एवं मूल्यों का जतन करना, संग्रह कर उन्हें संक्रमित करना कई बार विचाराधीन होता है। इन सभी घटकों के अतिरिक्त इन विचारों के बिना भी जीवन जीना आता है। इसी को संस्कृति मुक्त ज्ञान कहा जाता है।

कई बार आज के आधुनिक युग के अनुसार बड़े पैमाने में पाश्चात्यों का अनुकरण हो रहा है; इन विचारों में से प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता ही है, यह संस्कृति मुक्त ज्ञान भी मनुष्य को शिक्षा प्रदान करता है।

संस्कृति बाध्य ज्ञान

प्रत्येक समाज की पहचान समाज की संस्कृति पर होती है। संस्कृति से अलगपन टिका रहता है। तभी संस्कृति का जतन, संक्रमण, संरक्षण एवं विकास होता है। समाज की स्थिति व प्रगति वहां के सांस्कृतिक केंद्रों की स्थिति पर, ऊंचाई पर निर्भर होती है। संस्कृति यानी विशिष्ट समाज की सहजीवन पद्धति होती है। भौतिक व मानव निर्मित घटकों का समावेश होता है। समाज की आवश्यकताएं तथा अभिरुचियों का ध्यान रखकर कलाओं का निर्माण होता है। मूलभूत आवश्यकताओं के साथ–साथ ज्ञान, मनोरंजन, सहजीवन, कला, अभिरुचि, अभिवृत्ति, रसास्वाद, सौंदर्यानुभूति आवश्यकताएं भी पूरी करना संस्कृति का कार्य होता है। यही संस्कृति बाध्य ज्ञान कहलाता है।

संस्कृति बाध्य ज्ञान में जीवन, आचार–विचार पद्धति, आदतें, नीति विषयक कल्पनाएं, चारित्र्य, श्रद्धा, परंपराएं इनका समावेश होता है। सांस्कृतिक संघटनाओं की जिम्मेदारियों में संस्कृति समावेशित घटक कल्पना, कला, मूल्य, आदर्श, आदतें, विचार, रूढ़ियां, साहित्य, चारित्र्य का समावेश होकर उसे अपनाना हर व्यक्ति का कर्तव्य भी होता है; इसी से संस्कृति बाध्य ज्ञान की संकल्पना विकसित होती है।

पुस्तक परीक्षण से क्षेत्र भेंट

पाठ्यक्रम की जानकारी के बाद पाठ्यपुस्तक को जान लेना अत्यावश्यक है। पाठ्यपुस्तक (Textbook) यह पाठ्यक्रम एवं अभ्यासक्रम का 'आईना' होता है; जिसमें संपूर्ण पाठ्यक्रम व अभ्यासक्रम का प्रतिबिंब दिखता है। किंबहुना पाठ्यपुस्तकें शालेय शिक्षा का एक अंगभूत लक्षण (Symbol) मानी जाती हैं। अनुदेशनात्मक सामग्री के रूप में सर्वाधिक उपयोगी साधन पाठ्यपुस्तक है।

पाठ्यपुस्तक का अर्थ एवं परिभाषाएं

1. ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी "Mannual of Instruction standard book in a branch of study."
2. डॉ. डी. एस. कोठारी/कोठारी आयोग "A good text book written by a qualified and competent sociolist in the subject and produced with due

regard to qualify of printing, illustration and general get up, stimulates the pupils, interest and helps the teacher considerably in his work."

3. हालक्वेस्ट, "पाठ्यपुस्तक शिक्षण अभिप्रायों के लिए व्यवस्थित प्रजातीय चिंतन का एक अभिलेख है।"
4. बेकन, "पाठ्यपुस्तक कक्षा में प्रयोग करने के लिए विशेषज्ञों द्वारा सावधानी से तैयार की जाती है, तथा शिक्षा युक्तियों से भी सुसज्जित होती है।"

इन सभी परिभाषाओं से हमें पता चलता है कि, पाठ्यपुस्तक में पाठ्यक्रम की रूपरेखा को विस्तारित किया जाता है। शालेय शिक्षा में से दिया जाने वाला अपेक्षित ज्ञान, आकलन, कौशल्य, मूल्य, राष्ट्र तथा समाज के संदर्भ में छात्रों द्वारा भूमिकाएं संकलित कराने वाला पाठ्यपुस्तक एक महत्वपूर्ण साधन है।

'पाठ्यपुस्तक' शिक्षा को दिशा देने वाला एवं छात्र का अध्ययनपूरक साहित्य है; वह साध्य नहीं साधन है।

पाठ्यपुस्तक की आवश्यकता

1. अध्यापक के लिए अध्यापन का विषयानुसार ज्ञान वितरित करने के लिए,
2. शिक्षा प्रक्रिया के निर्धारित स्वरूप एवं समयानुसार अमल करने के लिए,
3. विषयवस्तु को आत्मसात कर छात्रों तक अर्थ, कार्यकारण संबंध प्रस्थापित कर ज्ञान को व्यवस्थित ढंग से पहुंचाने के लिए,
4. अध्यापन के कार्य का मूल्यांकन करने के लिए,
5. पाठ्याशय के स्वाध्याय द्वारा ज्ञान प्राप्ति की प्रेरणा के लिए,
6. छात्रों के स्मरण, तर्कशक्ति एवं आकलन शक्ति के विकास के लिए।

पाठ्यपुस्तकों का महत्व

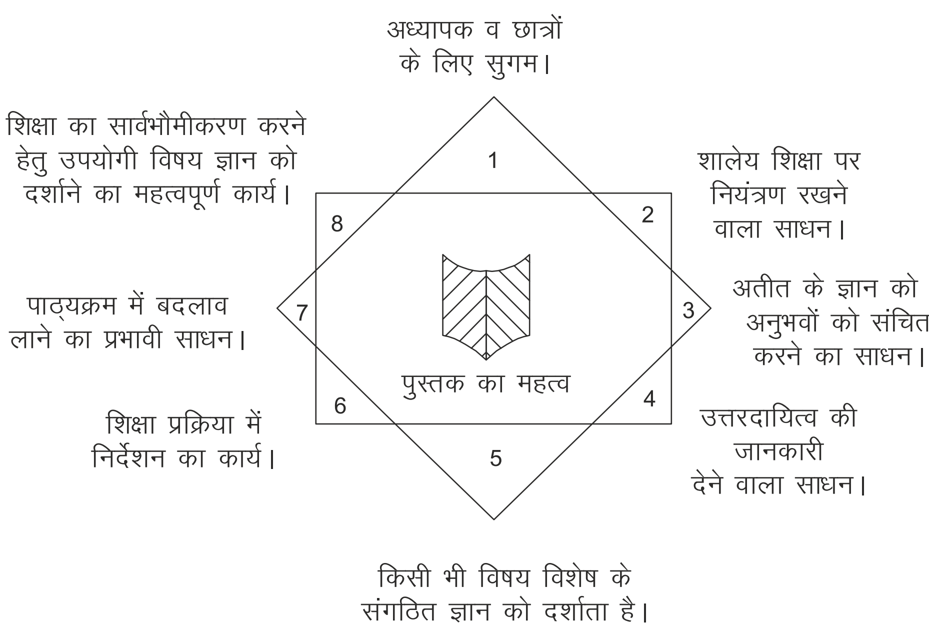

पाठ्यपुस्तक का महत्व

टिप्पणी

कई बार 'पाठ्यपुस्तक अनुदेशनात्मक साधन है'; यह हम भूल जाते हैं। पाठ्यपुस्तक केवल जानकारी का स्रोत हो जाने के कारण शालेय शिक्षा का पाठ्यपुस्तकीय शिक्षा में रूपांतरण होकर एक कठोरता (Rigidity) आ जाती है। ऐसे समय में पाठ्यपुस्तक एक साधन न होकर 'साध्य' है; ऐसा छात्रों और अध्यापकों को लगता है। शिक्षा यानी पाठ्यपुस्तक का आशय पढ़ाना और पढ़ना यही समझा जाता है और अध्यापक एवं छात्र केवल किताबों के भारवाहक बनते दिखाई देते हैं।

अध्यापक की भूमिका में परिवर्तन

अभी तक हमने पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, विषयज्ञान एवं पाठ्यपुस्तक संकल्पनाओं का अध्ययन किया। ये सारी अलग–अलग संकल्पनाएं हैं। इनके बारे में अध्यापक की भूमिका कैसी होनी चाहिए? यह एक प्रश्न विचाराधीन है। आज की यह प्रचलित आकलन शैली है कि निर्धारित पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक द्वारा सिखाना हमारा कर्तव्य है। कितने अध्यापक तो पाठ्यक्रम को देखे बिना पाठ्यपुस्तक से ही अध्यापन कार्य पूर्ण कर लेते हैं। कारीगर की तरह केवल अध्यापन कार्य करके खुद अपेक्षित मूलभूत बदलाव के बारे में सोचना उनके लिए मुश्किल होता है।

इसलिए अध्यापक को अपनी भूमिका में बदलाव करना अत्यावश्यक है। कैसे? आगे पढ़िये–

1. अध्यापक अभ्यासपूर्ण एवं संचयी होकर विद्याशाखा का अभ्यासक हो।
2. अध्यापन यह कारीगरी नहीं, कौशल्यपूर्णता से पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम व पुस्तक, तीनों का अभ्यास जरूरी है।
3. अध्यापक संबंधित विद्याशाखा एवं नई पीढ़ी इन दोनों में मध्यस्थ है; वह नई पीढ़ी को जानकारी देने वाला दूत हो।
4. पाठ्यपुस्तक का ज्ञान अंतिम ज्ञान नहीं है, उसमें भी कमियां, गलतियां एवं अपूर्णता हो सकती है, इसका विचार जरूर करें।
5. अपूर्ण आशय को पूर्ण करने हेतु अन्य हेतुबद्ध क्रियाएं अवश्य करें।

पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम तैयार करने वाले शिक्षाविद् यह उनके विषयों के विद्वान होकर अपनी विद्याशाखा के आकलन के अनुसार– अभिरुचि, विशेषीकरण, पूर्वग्रह, विश्वास व अन्य घटकों के प्रभाव/बंधनों के साथ पाठ्यचर्या व पाठ्यक्रम के आशय को चुनते हैं और लेखन संपादन का काम करते हैं। इसके अलावा 'पृष्ठसंख्या और आर्थिक मर्यादाओं का विचार भी करना पड़ता है। ऐसे समय पाठ्यपुस्तक अंतिम नहीं, तो पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम अन्य संदर्भ का विचार कर कमियां, गलतियां दूर करने होंगे।

किताबों में दिये गये उदाहरण, चित्र, नक्काशे, आशय, योग्य स्पष्टीकरण सही और स्पष्ट तथा योग्य हैं कि नहीं इसका परीक्षण कर लेना होगा। इस तरह, अध्यापन कार्य से भी सभी कमियां और अपूर्णताएं दूर करने की भूमिका पर जोर देना होगा।

यात्राएं/क्षेत्र भेंट/भ्रमण (Excursions)

सामान्यतः छात्रों को कक्षा अध्ययन से ही ज्ञान प्राप्ति होती है; इस अध्ययन कार्य में वे कभी सक्रिय सहभाग लेते हैं; तो कभी सक्रिय नहीं रहते। मगर कक्षाध्ययन से बाहर लाकर छात्रों को ज्ञान की सामग्री तक पहुंचाने का तरीका होता है कि उन्हें यात्रा करवाएं। इन्हीं को सरस्वती यात्राएं और क्षेत्रभेंट कहते हैं।

महात्मा गांधी के शिक्षा के अर्थ के अनुसार खुद के अनुभव के द्वारा पायी जाने वाली शिक्षा यानी स्वावलंबी तथा स्वयंस्फूर्त विकास। शिक्षा कृतिपूर्ण होनी चाहिए। अनुभवों के साथ मिलने वाली शिक्षा से शरीर, बुद्धि एवं हृदय (Body, Mind and Soul) इनका समतोलात्मक विकास होना चाहिए।

जेम्स फेयर ग्रीव– "छात्रों को कक्षा के अध्ययन के अलावा खुद कक्षा के बाहर निकालकर बाहरी दुनिया का परिचय कराने हेतु छात्रों को विभिन्न जगहों पर प्रत्यक्ष ले जाकर वहां की चीजों का परिचय करा देना, खुद के निरीक्षणों द्वारा कुछ निर्णयों तक पहुंचने देना तथा इन सक्रिय कार्यकृतियों के जरिए अध्ययन प्रवृत्तियों का विकास करने की क्षमता विकसित करना यह शिक्षा का उद्देश्य होता है। छात्रों में खोज की भावना विकसित करके, छात्रों को शैक्षिक क्षेत्रों में घुमाने ले जाना तथा उन्हें निरीक्षण करवाना और उसके द्वारा अध्ययन कर ज्ञान प्राप्ति कराना, इससे छात्रों में शिक्षात्मक प्रक्रिया जागृत होती है।

यात्राओं का आयोजन

पाठशाला में/द्वारा शैक्षिक यात्राओं का आयोजन करने हेतु निम्न कृतियों को प्राधान्य देना चाहिए।

1. स्थान निश्चिती।
2. काल निश्चिती।
3. पाठशाला में विभिन्न दल/गुटों का गठन।
4. पाठशाला में दायित्व को सौंपना।
5. क्षेत्र/यात्रा जगह की उचित संपर्क व्यवस्था।
6. यात्रा प्रदेश के तथ्यों की सूची।
7. अन्य व्यवस्थाएं– खान–पान, निवास व्यवस्था, यातायात।
8. मार्गदर्शकों की व्यवस्था।

शैक्षिक यात्राओं का ज्ञान निर्माण की दृष्टि से महत्व

1. 'भ्रमण' मनुष्य जीवन का एक अभिन्न अंग है। नये स्थानों पर नई वस्तुओं का परिचय ज्ञानवर्धक होता है। केवल पुस्तकों के जरिए ज्ञान प्राप्ति करना इसके अलावा भ्रमण एक अच्छा माध्यम साबित हुआ है।
2. यात्रा स्थान से हमें वहां की संस्कृति, रहन–सहन, खानपान, वेशभूषा, परंपराएं, शिष्टाचार आदि का ज्ञान होता है।
3. भ्रमण में विभिन्न स्वभाव वाले मनुष्यों से साक्षात्कार होता है।

4. सृष्टि की विविधता का बोध होता है।
5. स्वयं निरीक्षण द्वारा ज्ञान–प्राप्त होकर वह स्थायी रहता है।
6. विविध वनस्पतियां, नदियां, पर्वत, झील, मंदिर, महल आदि को देखकर नवीनता का अनुभव मिलता है।
7. छात्रों में तर्कशक्ति का विकास होता है।
8. छात्रों में सामंजस्य भाव तथा समायोजनशीलता का निर्माण होता है।
9. उद्योगों को भेंट देकर यांत्रिकीकरण, औद्योगिकीकरण की जानकारी प्राप्त हो सकती है।
10. 'जिज्ञासा' यह मानव का एक स्थायी भाव होता है।
11. कभी–कभी कक्षाध्ययन से छात्रों में नीरसता आती है, अतएव मनोरंजनात्मक माध्यम से उनके ज्ञान में अभिवृद्धि कराना फायदेमंद होता है।
12. यात्राओं के दौरान छात्र सामूहिक जिम्मेदारियां संभालकर एक कुशल नागरिक बनने का पूर्वाभ्यास अनुभव करते हैं।
13. शैक्षिक यात्राओं से नियोजन, संगठन एवं नेतृत्व गुणों का विकास होता है।
14. सामूहिक अनुशासन तथा छिपे हुए सुप्त गुणों का प्रदर्शन करके व्यक्ति/छात्र कला के जरिए अपने भाव व्यक्त करता है।
15. कक्षा में पढ़ाये जाने वाले अभ्यास विषयों को भ्रमण यात्राओं द्वारा पढ़ाया जाए तो छात्रों के आकलन में सारी बातें बैठ जाती हैं।

शिक्षा में यात्राओं का वही महत्व है जो विज्ञान की शिक्षा में प्रयोगों का है। मनोविज्ञान की दृष्टि से देखें तो केवल सुनने से जो शिक्षा प्राप्त होती है, उसका उतना स्थायी प्रभाव नहीं होता, जितना प्रत्यक्ष देखने से होता हो। शिक्षा के इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षा यात्राएं अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं।

युक्तिसंगत ज्ञान से अंतर्ज्ञान से युक्त ज्ञान/सहज ज्ञानयुक्त ज्ञान (तर्कसंगत ज्ञान से अंतःज्ञान तक)

तर्कसंगत ज्ञान– वैज्ञानिक सोच से बढ़ने वाला ज्ञान। इससे समाज अधिक प्रभावित होता था। तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक सोच के साथ जब कोई छात्र किसी विषयवस्तु को समझने का प्रयास करेगा तो उसके संदर्भ में उसके ज्ञान की सीमाएं विस्तृत होती हैं।

चेतनाओं का ज्ञान हमारे लिए एक वस्तुनिष्ठ वास्तविकता है, जो लोगों के दिमाग में मौजूद होती है; तथा जो दुनिया के नियमित और वस्तुनिष्ठ संबंधों को दर्शाती है। तर्कसंगत अनुभूति मानसिक गतिविधि के विपरीत संवेदी अनुभूति है जिसमें व्यक्ति वस्तुओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करता है, साथ ही साथ अपनी इंद्रियों के माध्यम से दुनिया की घटनाएं भी होती हैं।

तार्किक चिंतन मनुष्य की एक ऐसी क्षमता एवं योग्यता होती है; जिसके बिना ज्ञान संभव नहीं होता। जो ज्ञान अमूर्त होता है अथवा अवधारणाओं तथा प्रतिज्ञाप्तियों पर आधारित होता है; ऐसे ज्ञान का आधार तार्किक चिंतन की आवश्यकता होती है।

इसमें अमूर्त चिंतन की प्रक्रिया निहित होती है। इस अर्थ में ज्ञान का आधार होता है– तर्क बुद्धि।

टिप्पणी

तर्कसंगत ज्ञान के दो प्रकार होते हैं–

1. आगमनात्मक (Inductive) उद्‌गामी अनुमान।
2. निगमनात्मक (Deductive) अवगामी अनुमान।

1. आगमनात्मक अनुमान में विशेष से सामान्य की ओर, मूर्त से अमूर्त की ओर जाना तथा उदाहरण की ओर से नियम की ओर जाना होता है। आगमनात्मक तर्कबुद्धि के अंतर्गत सत्य की संभावना रहती है। इसका प्रयोग प्रकृतिवाद के अंतर्गत किया जाता है तथा इसमें परिकल्पनाओं की विशेष भूमिका होती है। आगमन चिंतन में कभी–कभी विशिष्ट से सामान्य की ओर सोचना केवल संभावना हो सकती है।

2. निगमनात्मक/अवगामी अनुमान– अवगामी का अर्थ है सर्वसामान्य की ओर से विशेष की ओर तथा अवगामी तर्क विचार। निगमनात्मक तर्कानुमान में आधार वाक्यों से निष्कर्ष निकलता है। आधार वाक्य तथा निष्कर्ष की सत्य–असत्यता से तात्पर्य वास्तविक सत्यासत्यता से नहीं होता है, मगर सत्यता अनिवार्यतः स्वीकार करनी होगी। अवगामी तर्कानुमान का संबंध वैधता–अवैधता से होता है।

सहज ज्ञानयुक्त ज्ञान

सहज ज्ञान जो विश्लेषण, प्रतिबिंब या प्रत्यक्ष अनुभव की आवश्यकता के बिना स्वचालित रूप से प्रकट होता है, क्योंकि यह इनमें से किसी भी रूप से प्राप्त नहीं किया जा सकता है, इसे स्वतंत्र स्रोत से आने वाला माना जाता है, जो आमतौर पर अवचेतन मन से जुड़ा होता है।

सहज ज्ञानयुक्त ज्ञान की प्रक्रिया में विभिन्न लोग विभिन्न घटनाओं को संदर्भित करने के लिए 'अंतर्ज्ञान' का उपयोग करते हैं। इसी को अचेतन ज्ञान या तर्क के साथ जोड़ा जाता है। सहज रूप से कुछ समझने की क्षमता इस ज्ञान से प्राप्त होती है।

सहज ज्ञान यानी अंतर्ज्ञान जिसका अर्थ विचार–चिंतन हो सकता है।

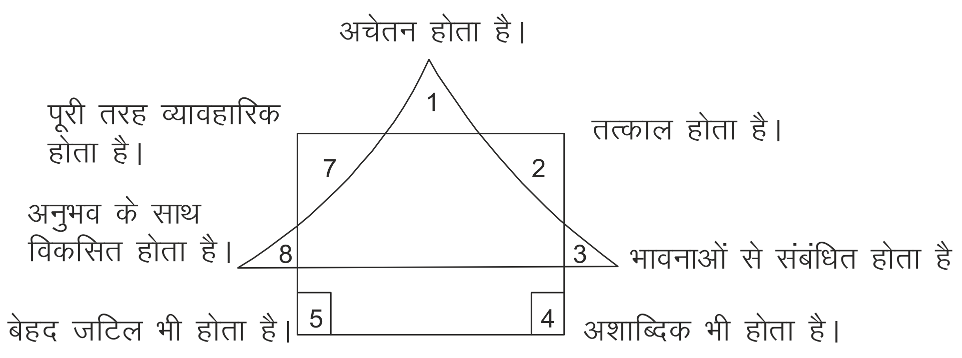

सहज ज्ञानयुक्त ज्ञान के लक्षण

अपनी प्रगति जांचिए

3. "ज्ञान वह है जो ज्ञात है और ज्ञात होने के बाद संचित रहता है, या वह जानकारी है जो वास्तविक अनुभव द्वारा प्राप्त होती है।" ज्ञान निर्माण की यह परिभाषा किसने दी है?

   (क) प्रो. जोड   (ख) वेबस्टर

   (ग) शर्मा एवं बरौलिया   (घ) कार्टर वी गुड

4. दर्शन के अनुसार शिक्षा के मुख्य आधार होते हैं?

   (क) दार्शनिक   (ख) मनोवैज्ञानिक

   (ग) समाजशास्त्री   (घ) उपर्युक्त सभी

2.4 उदयोन्मुख प्रवाह में विद्याशाखीय ज्ञान

निसर्गतः 'ज्ञान' एक जीव होने वाली यंत्रणा होती है। इस यंत्रणा के अलग–अलग भागों का कार्यात्मक वर्गीकरण करके उन्हें अलग–अलग विद्याशाखाओं के नाम दिये गए तो भी उनके मूलभूत एकत्व के विचार को छोड़ा नहीं जा सकता। तंत्र विज्ञान की भाषा में इतना ही कह सकते हैं, कि "ज्ञान एक महाप्रणाली होकर विद्याशाखाएं उसकी प्रणालियां हैं, विद्याशाखांतर्गत उपशाखाएं ही उपप्रणालियां होती हैं।"

विद्याशाखा का उदय होते समय शुरुआती काल में नई विद्याशाखा ही मूल/मूलभूत विद्याशाखा की एक उपशाखा के तौर पर उदय होती है, या एक से ज्यादा विद्याशाखाएं एकत्र होकर किसी क्षेत्र का अभ्यास करती हैं व नवीन आंतरशाखीय विद्याशाखाएं तैयार होती हैं। कई बार एक से ज्यादा विद्याशाखाओं को एकत्रित होकर अन्य स्वतंत्र विद्याशाखा में रूपांतरित होने के लिए या स्वतंत्र स्थान पाने के लिए कुछ खास विशेषताएं प्राप्त करनी होती हैं। उन्हीं विशेषताओं के साथ विद्याशाखा की व्याख्याएं/परिभाषाएं बनती हैं। जैसे–

"विद्याशाखा अध्ययन की सहुलियत के लिए की हुई व्यवस्था है। इस व्यवस्था में ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की ओर संक्रमित होने में मदद होती है; इसके अलावा अनुसंधान भी सहज होता है।"

विद्याशाखीय ज्ञान से आंतर विद्याशाखीय ज्ञान संगठन

'विद्याशाखा' इस संज्ञा से विज्ञान जगत में नई एवं विस्तारित जानकारी का उपयोग एवं ऐतिहासिक अभिलेख का निर्माण किया गया। पहले अस्तित्व में आयी विद्याशाखाओं का उपयोग कर नई आंतरविद्याशाखाओं का निर्माण हुआ।

पारंपरिक विद्याशाखाओं के भिन्न–भिन्न विषय निश्चित कर दिये गये हैं, उनमें से दो या दो से अधिक विषय एकत्रित कर उन विषयों की जानकारी, ज्ञान, कौशल्य इनका उपयोग कर नई आंतरविद्याशाखा का निर्माण होता है। अभ्यास विषय अगर भिन्न भी हुए, तो भी उनका कुछ परस्पर संबंधी एवं परस्पर पूरक होने के कारण अध्ययन एवं अनुसंधान किया जाता है, उसी को 'आंतरविद्याशाखीय' यह संबोधन किया जाता है।

उदाहरण– अणु–भौतिक शास्त्र (Nuclear-Physics) और औषध (Medicine) इनका संयुक्तिकरण हुआ तब कर्क रोग (Cancer) की नई उपचार पद्धति का उदय हुआ यही आंतरविद्याशाखीय ज्ञान है।

अन्य उदाहरण– मानवीय शरीर एक महाप्रणाली है। श्वसन संस्था, पाचन संस्था, मज्जा संस्था ये उसकी प्रणालियां हैं तो हृदय, यकृत, मस्तिष्क उपप्रणालियां हैं। प्रणाली जैसे मूल महाप्रणाली से सुसंगत कार्य करती है और उसी के आधिपत्याधीन हर प्रणाली, उपप्रणाली और इंद्रियां कार्यरत होती हैं, वैसे ही ज्ञान के बारे में होता है।

विविध विद्याशाखाओं के एकत्रित होकर मानवीय व भौतिक समस्याओं का विचार करने के दृष्टिकोण को ही 'आंतरविद्याशाखीय दृष्टिकोण' कहते हैं।

परिभाषाएं

Heidi Jacob, 'Interdisciplinary learning' as, "a knowledge view and curriculum approach that consciously applied methodology and language from more than one discipline to examine a central theme, issue, problem, topic or experience."

हैदी जेकब के अनुसार, "आंतरविद्याशाखीय अध्ययन ज्ञानदृष्टि और पाठ्यक्रम का ऐसा दृष्टिकोण है, जो मध्यवर्ती विषय, घटक/इकाई, समस्या, पाठ्यांश या अनुभव को जांचने के लिए एक से ज्यादा विद्याशाखाओं में प्रणाली और भाषा इनका उपयोग विचारपूर्वक किया गया है।"

संक्षिप्त में– एक से अधिक शैक्षिक विद्याशाखा/विषय/क्षेत्र/तंत्रज्ञ (Technician) व्यावसायिकों के एकत्रित होकर अपनी–अपनी जानकारी, ज्ञान, कौशलों को समन्वयित कर नये ज्ञान की निर्मिति होने की प्रक्रिया को ही आंतरविद्याशाखीय ज्ञाननिर्मिति कहते हैं।

आंतरविद्याशाखीय ज्ञान की संकल्पना का आकृति के द्वारा आकलन

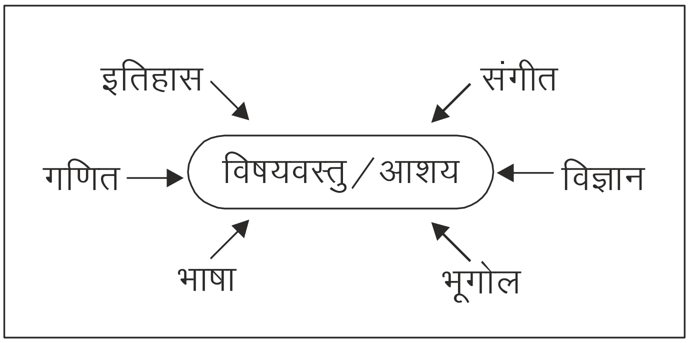

आंतरविद्याशाखीय विषय ज्ञान की संकल्पना

आकृति–स्पष्टीकरण

किसी भी विषय का ऐसा आशय/इकाई/पाठ्यांश कि जो अनेकविध विषयों को स्पर्श कर उसे मध्यवर्ती रखकर सभी विषयों के अध्यापकों द्वारा संघ अध्यापन कर प्रत्येक विषय के दृष्टिकोण से आशय को स्पष्ट करना, प्रत्येक तालिका में वही आशय घटक अलग–अलग न सिखाते हुए संगठित रूप से सबके द्वारा वातावरण निर्मिति को इस प्रक्रिया से आंतरविद्याशाखीय ज्ञान की संकल्पना तैयार की जाती है।

आंतरविद्याशाखीय ज्ञान

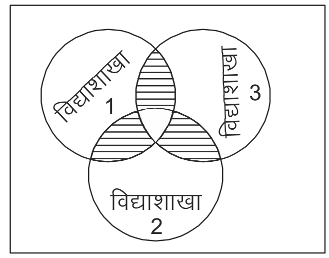

आंतरविद्याशाखीय ज्ञान

आकृति के अनुसार तीन विद्याशाखाएं एक–दूसरे में एकत्रित होकर काम करती हैं। अपनी खुद की मर्यादाएं लांघकर लचीली होकर कार्य/निर्णय देती हैं।

आंतरविद्याशाखीय दृष्टिकोण– दो या दो से अधिक विद्याशाखाएं एकत्र होकर एक–दूसरे की पूरक जानकारी, ज्ञान एवं कौशलों का उपयोग कर नया अनुसंधान करती हैं, इसलिए उपयोग में लाये जाने वाले दृष्टिकोण को ही आंतरविद्याशाखीय दृष्टिकोण कहते हैं। जैसे–

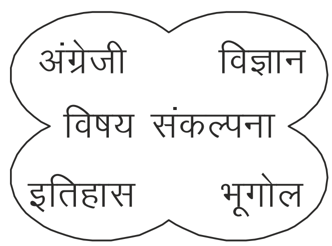

आंतरविद्याशाखीय कौशल्य

उपर्युक्त आकृति में किसी विषय की संकल्पना हेतु अन्य किसी विद्याशाखा का ज्ञान, जानकारी तथा कौशलों का अभ्यास दूसरे विषय अभ्यासते हैं। अन्य विषय के कौशल का उपयोग कर नये संशोधन द्वारा संकल्पना विकसित की जाती है।

लाभ

1. एकत्रित काम। 2. अंतर्गत सुसंगतता। 3. सामाजिक भूमिका। 4. परस्परपूरक तंत्रों का उपयोग। 5. नये ज्ञान का निर्माण। 6. संकल्पनाओं का सहज ढंग से स्पष्टीकरण। 7. एक–दूसरे के कौशलों का उपयोग। 8. चुने गये विषय के कई पहलुओं का दर्शन।

विद्याशाखीय ज्ञान से बहुविद्याशाखीय ज्ञान का संगठन

दूसरे महायुद्ध के काल में पहली बार बहुविद्याशाखीय जागतिक दृष्टिकोण का प्रत्यक्ष किया गया। लश्कर (Military) विभाग, औद्योगिक विभाग ने एकत्रित होकर बहुविद्याशाखीय दृष्टिकोण को अपनाया। 1960–1970 में UK में भी अपनाया गया। वास्तुविद्या विशारद, अभियंता और सर्वेक्षक इन्होंने एकत्रित होकर राजकीय क्षेत्र के प्रकल्प पर काम किया। वैसे ही नियोजक, समाजशास्त्री, भूगोलवेत्ताओं, अर्थवेत्ताओं ने एकत्रित होकर विभागीय और नागरी प्रकल्प पर काम किया। इस तरह विभिन्न विद्याशाखाओं के विद्वान लोगों ने एकत्रित होकर अभ्यास और अध्ययन करना शुरू हुआ।

अर्थ

विविध विद्याशाखाएं जब एक ही समस्या को लेकर अपनी–अपनी विद्याशाखा की मर्यादाएं संभालकर समस्याएं निराकरण कर अभ्यास/अनुसंधान करती हैं तब बहुविद्याशाखीय ज्ञान निर्मिति होती है।

परिभाषा– Oxford Dictionary (2011) "Multidisciplinary is combining or involving several academic disciples or professional specializations in an approach to a topic or problem."

"विभिन्न शैक्षिक विद्याशाखाएं या व्यावसायिक तज्ञ किसी आशय या समस्या को छुड़ाने की दृष्टि से एकत्र होकर एक–दूसरे में उलझ जाते हैं, उसे बहुविद्याशाखीय ज्ञान कहते हैं।"

एक विद्वान व्यक्ति एक या अनेक विद्याशाखाओं में काम कर सकता है। एक ही प्रश्न या समस्या पर विविध अंगों से विचार कर उनके उत्तर समाज के सामने रखे जाते हैं। सहभागी व्यक्ति खुद की विद्याशाखा की भूमिका निभाता है, उसका व्यक्तिगत ध्येय भी उसमें हो सकता है।

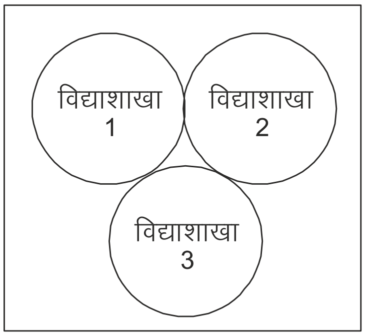

बहुविद्याशाखीय ज्ञान

उपर्युक्त आकृति में दिखाई गई अनेक विद्याशाखाएं एकत्रित होकर कार्य कर सकती हैं। विद्याशाखीय ज्ञान के अनुसार अध्ययन की खुद की एक प्रणाली होती है।

बहुविद्याशाखीय ज्ञान में परस्पर संबंध

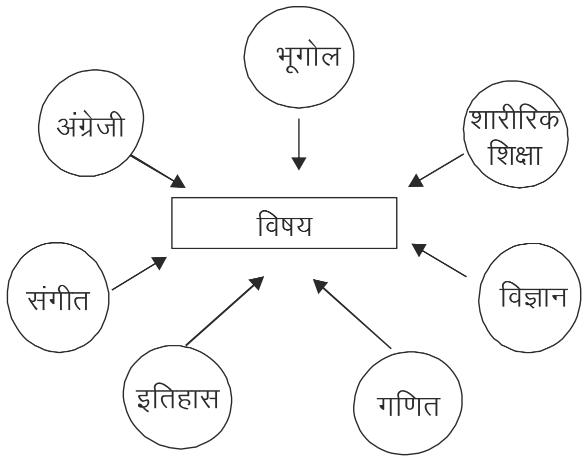

बहुविद्याशाखीय ज्ञान में परस्पर संबंध

बहुविद्याशाखीय दृष्टिकोण प्रमुखतः विद्याशाखाओं पर केंद्रित होता है। जो अध्यापक इस दृष्टिकोण का उपयोग करते हैं वे विषय के आसपास कक्षा का संगठन करते हैं। उपर्युक्त आकृति में विविध विषयों के परस्पर संबंध तथा सामयिक विषयों का भी संबंध दर्शाया गया है। किसी कक्षा का पाठ्यक्रम तैयार करते समय विषयवस्तु का संबंध प्रत्येक विषय के साथ लगाया जाता है, यही है बहुविद्याशाखीय ज्ञान एवं दृष्टिकोण।

बहुविद्याशाखीय ज्ञान के लाभ

1. विविध विद्याशाखाएं स्वतंत्र अध्ययन कराती हैं।
2. विविध विद्याशाखाओं के विद्वतजन् एकत्रित होकर काम करते हैं।
3. अध्ययन की अपनी एक प्रणाली होती है।
4. छात्रों के/व्यक्ति के भविष्य को आकार देने हेतु उपयुक्त है।
5. छात्रों के/व्यक्ति के प्रोत्साहन के लिए प्रेरणादायक है।
6. सामाजिक आह्वानों के लिए उपयुक्त है।

समाज में प्रत्यक्ष घटने वाली घटनाओं का सामाजिक, राजकीय, भौगोलिक परिणाम अन्य घटकों पर कैसा होता है यह अभ्यास हेतु बहुविद्याशाखीय ज्ञान का उपयोग होता है। मगर कई बार इसमें अड़चनें/समस्याएं भी आ सकती हैं। जैसे अलग–अलग विद्याशाखाएं स्वतंत्र अभ्यास करके उनकी वस्तुनिष्ठता से रचना नहीं कर सकती। कई बार विद्याशाखाओं द्वारा सिद्धांत अपूर्ण होते हैं, प्रत्येक विद्याशाखा अपनी–अपनी मर्यादा को संभालकर काम करती है।

विद्याशाखीय ज्ञान से पराविद्याशाखीय ज्ञान

पराविद्याशाखीय ज्ञान को ही अंतर्बोध विद्याशाखीय ज्ञान भी कहते हैं। (Disciplinary knowledge to transdisciplinary knowledge organisation)

1970 में जीन पियाजे ने अंतर्बोध विद्याशाखीय ज्ञान इस संज्ञा का परिचय कराया। अंतर्बोध विद्याशाखीय ज्ञान अंतरविद्याशाखीय ज्ञान से अंशतः भिन्न होता है।

अर्थ

एक ही समय में एक ही समस्या पर विविध विद्याशाखाएं संयुक्त रूप से अपने–अपने कौशलों द्वारा अपनी विद्याशाखाओं की सीमाओं के परे जाकर नए 'बोध' ढूंढती हैं; इन्हीं बोधों को अंतर्बोध कहा जाता है।

केर्ने (Kerne) के अनुसार– अंतर्बोध विद्याशाखा की प्रक्रिया– Trans का अर्थ = को लांघकर, के आगे, के साथ अर्थात विद्याशाखाओं के पार या सीमा के उस पार। अनेक विद्याशाखाओं के संयुक्तीकरण की यह प्रक्रिया है इसमें निकटता तत्व सबसे पहली सीढ़ी है।

अंतर्बोध तीन गृहितकों पर आधारित होता है–

(क) आज की स्थिति में अस्तित्व में निर्धारित श्रेणी।

(ख) युक्तिवाद

(ग) जटिलता।

परिभाषाएं

टिप्पणी

अंतर्बोध विद्याशाखीय ज्ञान– "Transdisciplinary can be thought of as the union of all indisciplinary efforts, while interdisciplinary terms may be creating new knowledge that lies between several existing disciplinary, a transdisciplinary teams is more holistic and seeks to relate all disciplines into a coherent whole."

अर्थात "अंतर्बोध यानी 'सभी अंतर्विद्याशाखाओं के संयुक्त प्रयत्नों का विचार।' अस्तित्व में पाई जाने वाली विद्याशाखाओं द्वारा फैला हुआ। अंतर्विद्याशाखीय संघ– नये ज्ञान की निर्मिति करते हैं। अंतर्बोध विद्याशाखीय संघ यह संबंधित विद्याशाखाओं से सुसंगत रहकर साकल्यपूर्ण नये ज्ञान का शोध होता है।"

कुछ उदाहरण– जागतिक शिक्षा में अंतर्बोध विद्याशाखीय ज्ञान है। (UNESCO-Journal) जहां धर्म और विज्ञान ये दो चीजें परस्परपूरक हैं, वहां नम्रता, आदर, एकता एवं सहकार्य यह संपूर्ण मानव विकास के जागतिक प्रमाण हैं, जहां कोई भी सीमा एवं बंधन नहीं है। इसमें से जगत शाश्वत विकास के लिए, जागतिक समाज को एकसूत्र में बांधने के लिए आंतरबोध विद्याशाखीयता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

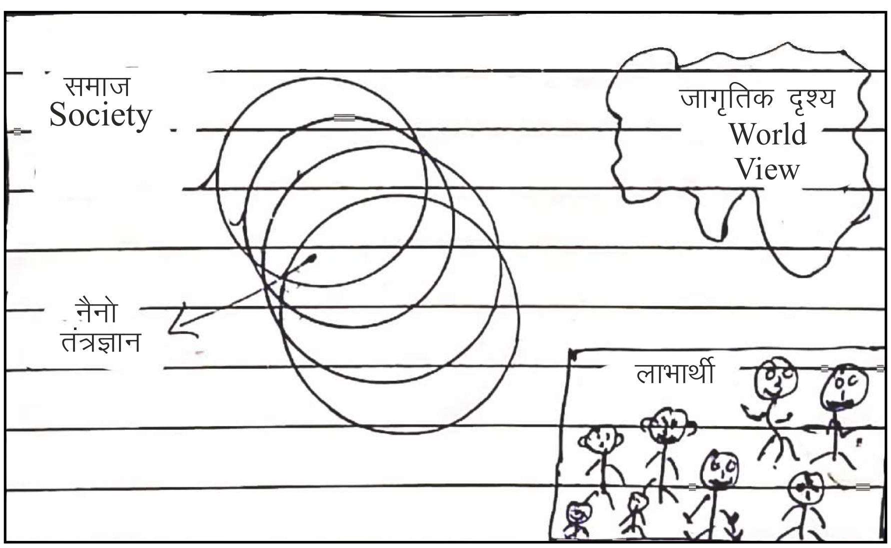

अंतर्बोध विद्याशाखा

उपर्युक्त आकृति के स्पष्टीकरण में हम यह कह सकते हैं कि दुनिया के सामने आयी किसी भी समस्या का विभिन्न विद्याशाखाएं एकत्रित होकर निराकरण करके दुनिया के सामने रखती हैं। इस निराकरण के द्वारा समाज एवं लाभार्थियों को समस्या से छुटकारा मिलता है।

लाभ

1. प्रत्येक विद्याशाखा अपनी शाखा की मर्यादाओं के पार जाकर नवनिर्मिति में योगदान देती है।
2. सहभागी विद्याशाखीय सदस्यों की भूमिका आकलनयुक्त एवं विस्तारित होती है।

3. नये संशोधन के आयाम निर्मित होते हैं।
4. दुनिया के शाश्वत विकास के लिए यह दृष्टिकोण आवश्यक होता है।
5. समस्या में से ज्ञानमीमांसा एवं अंतर्ज्ञान का निर्माण होकर नई विद्याशाखाओं की निर्मिति होती है।

इस प्रकार विद्याशाखीय ज्ञान से लेकर आंतरविद्याशाखीय ज्ञान, बहुविद्याशाखीय ज्ञान तथा अंतर्बोध/पराविद्याशाखीय ज्ञान की जानकारी तथा उनके दृष्टिकोणों का हमने अभ्यास किया। इन तीनों में जो फर्क है, उसका भी अध्ययन हमने किया।

उदयोन्मुख प्रवाह द्वारा ज्ञान संगठन

ज्ञान संगठन को ही हम ज्ञान को एवं सूचना को एकत्रित करना तथा समझने हेतु ज्ञान की व्यवस्थित रचना करना मानते हैं। ज्ञान प्रबंधन की तीन सीढ़िया मानी जाती हैं जो एक सतत चलने वाली प्रक्रिया प्रतिमान भी मानी जाती हैं।

ज्ञान का निर्माण

↓

ज्ञान कार्यान्वयन

↓

ज्ञान साझाकरण

ज्ञान संगठन प्रक्रिया प्रतिमान

ज्ञान निर्माण व्यक्तियों के मन की बातचीत एवं गतिविधियों का परिणाम होता है। नये विचारों को विकसित करना तथा ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया को व्यवस्थित करना।

मौजूद ज्ञान को सबसे प्रभावी ढंग से उपयोजित करना यह ज्ञान कार्यान्वयन में आता है।

अध्यापक के लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है कि वह अपने विषय की प्रक्रिया के लिए प्राप्त ज्ञान को साझा करे, दो या दो से अधिक लोगों के साथ मिलकर इस ज्ञान की पूंजी को अपने विषयाध्यापन हेतु अध्ययन, विश्लेषण, दृढ़ीकरण तथा मूल्यांकन जैसी प्रक्रिया में संरचित करे।

इस तरह विभिन्न प्रत्ययों को जोड़कर ज्ञान संगठन किया जाता है।

ज्ञान संगठन, अंश से पूर्ण तक

हम किसी भी वस्तु को उसके पूर्ण रूप से देखते हैं। अध्ययन विषय/आशय के बारे में यह नहीं होना फायदेमंद होता है। आशय अध्यापन में छात्रों को अगर थोड़ा–थोड़ा सिखाते जाएं तो धीरे–धीरे आकलन होकर संपूर्ण का ज्ञान अर्थपूर्ण होता है।

जैसे काव्याध्यापन में यह सूत्र पूर्ण रूप से सफल होता है।

ज्ञान संगठन, विश्लेषण से संश्लेषण तक

बालकों के लिए किसी भी आशय को भलीभांति समझने में 'विश्लेषण' सहायक होता है। उसी प्रकार 'संश्लेषण' से प्राप्त ज्ञान को निश्चित रूप प्रदान करता है। ज्ञान

संगठन में किसी घटना या तथ्य की जानकारी पहले समग्र रूप में प्राप्त कराकर फिर उसके विविध भागों की व्याख्या/विश्लेषण द्वारा किया जाना चाहिए। उसके बाद उन भागों या खण्डों को आपस में जोड़कर पूरी जानकारी कराकर निष्कर्ष तक पहुंचना चाहिए। विश्लेषण से संश्लेषण यह ज्ञान संगठन की बुनियादी अवधारणाओं की ऐसी संरचना है; जिसके कारण विशिष्टताओं के साथ संबंध स्थापित किया जाता है। तथ्यों का अर्थ समझा जाता है, तथा आशय के प्रत्ययों, वस्तुओं के बीच समानता और विभिन्नता के बीच मतभेदों को प्रकट करता है।

शिक्षा में विश्लेषण व संश्लेषण दोनों प्रक्रियाएं आवश्यक होती हैं–

विश्लेषण

1. अनुभवों के विविध एवं लगभग असमान तथ्यों एवं विचारों का एक सामान्य ढांचा तैयार करना।
2. निश्चित तकनीकों, नमूनों तथा सिद्धांतों के रूप में स्थापित ज्ञान को सरल रूप में समझाना।
3. विद्याशाखा द्वारा प्राप्त ज्ञान के बढ़ते हुए बोझ की तुलना में अग्रिम अध्ययन की सादगी और समन को प्राप्त करना।

संश्लेषण

1. आशय की पृथकता की अपेक्षा विभिन्न प्रत्ययों के संबंधों की स्थापना करना।
2. विद्याशाखा द्वारा निर्मित कार्य के महत्वपूर्ण पैटर्न और संबंधों को प्रकट करना।
3. विश्लेषण द्वारा स्थापित समानताओं में विभेद कर विचारों का एक पदानुक्रम स्थापित करना।
4. विषय वस्तुओं एवं शिक्षा की सुविधा प्रदान करता है।

   इन दोनों प्रक्रियाओं का व्यवस्थित संगठन एवं संरचना करके ज्ञान के संरक्षण को बढ़ावा दिया जाता है।

ज्ञान संगठन–दृढ़ वर्गीकरण से लचीले आंतर्संबंधों तक

ज्ञान संगठन में सूचनाओं के साथ–साथ कई गतिविधियां की जानी अपेक्षित हैं। दृढ़ वर्गीकरण करना ज्ञान, सूचना एवं वस्तुओं के लिए प्रतिनिधित्व तथा सुव्यवस्थित ढंग से व्यवस्था प्रदान करना होता है।

विद्याशाखा अध्ययन से पूर्वजों द्वारा प्राप्त ज्ञान को अगली पीढ़ी तक पहुंचाकर उन्हें ज्ञानवान बनाने का कार्य किया जाता है।

विद्याशाखाओं द्वारा निर्मित एवं प्राप्त ज्ञान को वर्गीकृत करने हेतु प्रक्रिया में ज्ञान के बंटवारे से संबंधित मुद्दों को ज्ञान प्रबंधन का हिस्सा कहा जाता है। इससे व्यावसायिक व्यवहारों में संगठन एवं विभिन्न स्तरों पर भी ध्यान केंद्रित किया जाता है। सामाजिक जीवन से जुड़ी जितनी भी समस्याएं आती हैं, उनका समाधान करने हेतु ज्ञान का प्रयोग करने के लिए कुछ सूत्रधार संस्थाओं का निर्माण किया जाता है। ऐसे सूत्रधार शैक्षणिक संस्थानों द्वारा पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है। व्यावहारिक आवश्यकताओं के अनुरूप ज्ञान को वर्गों में/हिस्सों में बांटे जाने हेतु पृथक्करण भी किया जाता है।

प्राथमिक कक्षाओं में तथा उच्च शिक्षाओं में इस तरह का वर्गीकरण कर पाठ्यक्रमों में सुधार लाया जाता है। जीवनानुभवों से दूर अगर कोई पाठ्यक्रम है, तो उसे विद्याशाखा केंद्रित बनाकर विभिन्न विद्याशाखाओं से आंतर्संबंधित किया जाता है। इसी तरह पाठ्यक्रम के ढांचे को आंतरसंबंधित कर विस्तृत पक्ष एवं उपागमों को भी विकसित किया जाता है। इससे परविद्याशाखीय ज्ञान के दृष्टिकोण का निर्माण होता है। ज्ञान एवं सूचनाओं के प्रस्फोट भी हों तो, छात्र सूचना प्राप्ति द्वारा सीखते हैं।

अगर किसी आशय के द्वारा सूचना/जानकारी छात्रों को मिले मगर अधिक स्पष्टता के साथ वे उसे साझा नहीं कर सकते हैं तो उस ज्ञान–आशय को लचीले तथा आंतरसंबंधित ज्ञान संगठन में जोड़ने की आवश्यकता है। जिससे कि छात्र ज्ञान के विषय की सीमाओं और कठोर धारणाओं को नियंत्रित कर सकता है।

पारंपरिक विद्याशाखाएं भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, साहित्य, इतिहास, भाषा इन कई रूपों में बांटी गई हैं। इनका विषय ज्ञान असतत टुकड़ों से मिलकर बनता है जिनके बीच कोई भी प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता है। अलग–अलग विषयों में बांटा यह ज्ञान बच्चों को प्रदान किया जाता है, तब विभिन्न प्रत्ययों में अंतर्संबंधों तथा वास्तविक जीवन अनुभवों से जोड़ने में सफल होते हैं।

यही ज्ञान संगठन के दृढ़ वर्गीकृत ज्ञान से लचीले रूप के अंतरसंबंधित की ओर जाने वाली प्रक्रिया है।

ज्ञान संगठन के आंतरविद्याशाखीय मार्ग/उपागम

ज्ञान संगठन में आशय एवं अध्यापन प्रणाली इन दोनों का एकत्व एवं एकात्मिकरण अपेक्षित है। ऐसा होने से अध्यापन–परिणाम की एकता बढ़ती है। मगर यह विचार एकत्रित होना अत्यावश्यक है। अध्यापक भी इन्हें अविभाज्य ही देखते हैं। इस एकात्मिकरण से कुछ विशेषताएं सामने आती हैं जैसे–

(अ) ज्ञान संगठन अध्यापन यानी अतिरिक्त समृद्ध ज्ञान नहीं;

(ब) विद्यालयी स्तर पर संकल्पनाओं का गहरा आकलन है; तथा

(स) गहरे (Deep) आकलन का अध्यापन कार्य से अर्थपूर्ण एकात्मिकरण है।

इन्हीं विशेषताओं के हेतु एकात्मिकरण के लिए उपागम अभ्यास आवश्यक हो गया है। अध्यापन प्रणालियों के साथ उपागम अभ्यास की संकल्पना है।

शब्दकोश में उपागम– 'A way of dealing with teaching.'

"अध्यापक द्वारा किये गये ज्ञान संगठन के अनुरूप एवं योग्य उद्देश्यों की प्राप्ति तक जाने हेतु अध्यापक द्वारा चुने गये दृष्टिकोण एवं मार्ग को ही उपागम कहते हैं।"

शालेय विषयों का आंतरविद्याशाखीय स्वरूप

प्रचलित अभ्यासक्रम/पाठ्यक्रम में शालेय विषय विद्याशाखाओं से जुड़े हैं। विषयों के ज्ञान से विद्याशाखा की पहचान होती है। विषय की अभिरुचि, सखोल अभ्यास तथा संकल्पनाएं दृढ़ होना इसी के कारण छात्र विषय का चुनाव महाविद्यालयीन स्तर पर करते हैं। विद्याशाखीय ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया हर स्तर पर विविध विषयों से होती है।

विद्याशाखीय स्वरूप समझना इसके लिए– (i) पाठ्यक्रम, (ii) पाठशालाओं का नियोजन, (iii) वर्ग व्यवस्थापन, (iv) संघ नियोजन, (v) पूर्व तैयारी आवश्यक है।

उदाहरण के लिए– विषयवस्तु खेल है; तो–

1. संगीत – क्रीड़ागीत।
2. भाषा – समाचार।
3. गणित – विविध आकार के खेल–क्रीडांगण, उसके क्षेत्रफल, परिमिती।
4. सामाजिक शास्त्र – विविध देशों के यातायात, यात्रापत्र।
5. विज्ञान – खेल के कौशल्य का तंत्रज्ञान।
6. आरोग्य – इंधन, पर्यावरण, आहार, व्यायाम।
7. कला – इश्तेहार, पोस्टर्स, समाचार।

उपर्युक्त उदाहरणों से शालेय विषयों में आंतरविद्याशाखीयता कैसे लायी जाती है, यह हमने देखा।

आंतरविद्याशाखीय दृष्टिकोण से अध्ययन–अध्यापन करते समय विविध तंत्रों को उपयोग में लाया जाता है। ज्ञानरचनावादी दृष्टिकोण के तंत्र उपयोजित कर वर्ग वातावरण को अधिक शैक्षिक बनाया जाता है। आंतरविद्याशाखीय अध्यापन के लिए कुछ अलग तंत्र (Techniques) होते हैं, वे निम्न आकृतियों में दिये जा रहे हैं–

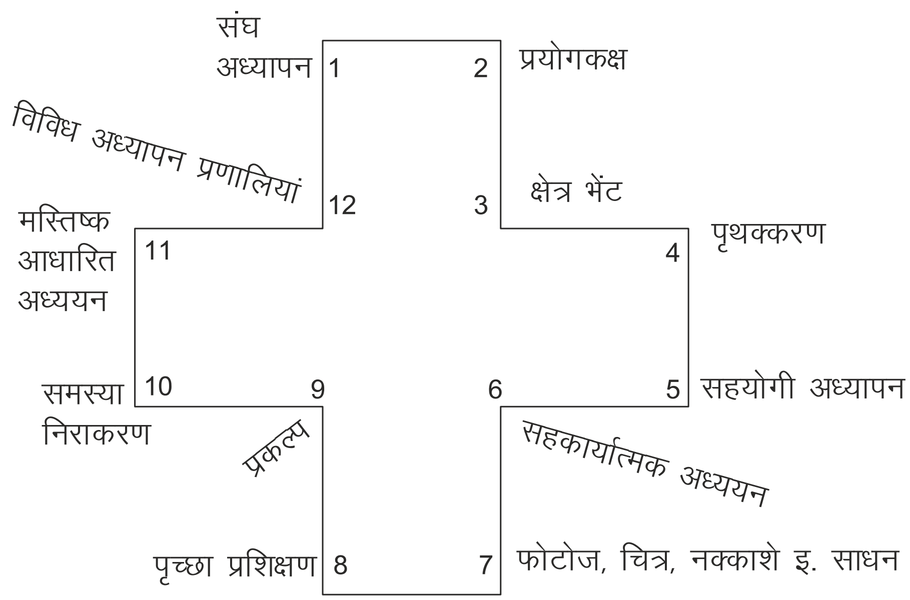

आंतरविद्याशाखीय अध्यापन तंत्र

आंतरविद्याशाखीय अध्यापन के कुछ उपागम निम्न होते हैं–

1. उद्गामी उपागम (Inductive Approach)
2. अवगमन उपागम (Deductive Approach)
3. विश्लेषणात्मक उपागम (Analytic Approach)
4. संश्लेषणात्मक उपागम (Synthetic Approach)

टिप्पणी

5. मार्गदर्शित शोध उपागम (Guided Discovery Approach)
6. विवेचनात्मक उपागम (Expository Approach)
7. संप्रेषणात्मक उपागम (Communicative Approach)
8. न्यूनतम अध्ययन क्षमता उपागम (Minimum level of learning Approach)

इन उपागमों के साथ विभिन्न अध्यापन प्रणालियों का भी चुनाव अध्यापकों द्वारा किया जाता है। इन प्रणालियों को अध्यापक एवं छात्र केंद्रीकरण के अनुसार वर्गीकृत किया गया है–

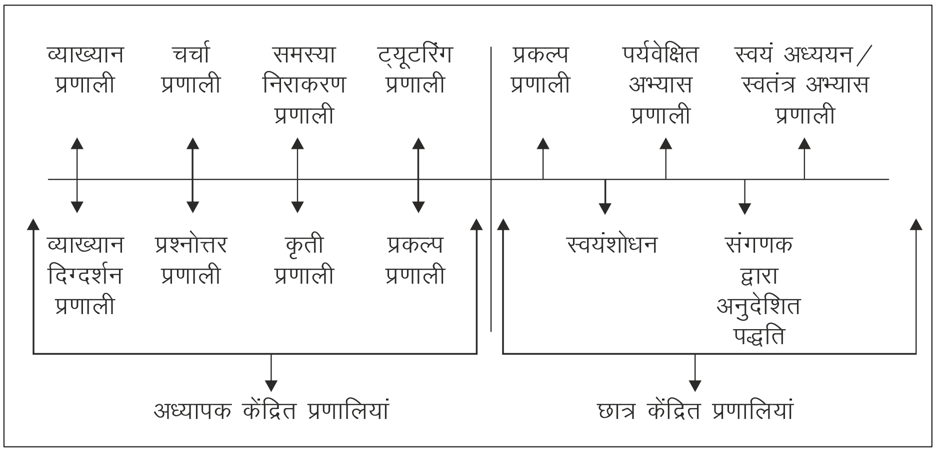

अध्यापन प्रणालियों का अध्यापक एवं छात्र केंद्रीकरण के अनुसार वर्गीकरण

ज्ञान संगठन के आंतरविद्याशाखीय मार्ग/उपागम का विचार करते समय आशय, अध्यापन प्रणालियां एवं उपागमों का एकात्मिकरण करके ज्ञानमीमांसा में प्रगल्भता लाने का छोटा सा प्रयास अध्यापक होने के नाते हमें करना है। आशय की विशिष्टता के अनुरूप विविध उपागमों से लेकर सूक्ष्म स्तर पर अध्यापन कौशलों तक योग्य अध्यापन वर्तनों का चुनाव करना यह आशय एवं अध्यापन के एकात्मिकरण के लिए आवश्यक होता है।

विद्यालयी ज्ञान के प्रायोगिक निष्कर्ष/अनुप्रयोग

शालेय विद्याशाखा और अध्यापकों की, विद्वत जनों की विचारशाखा को संगठित करने वाला घटक यानी आंतरविद्याशाखा की ओर देखा जाता है। ज्ञान संगठन के निष्कर्षों के लिए आंतरविद्याशाखा एक सृजनशील एवं पारंपरिक विचारों की सीमाएं पार करने वाला विषय है। विद्यालयी विषयों में छात्र, अनुसंधान और अध्यापक इनको विशिष्ट ध्येय के बारे में एक समुचित कृति में, व्यवसाय में तथा तंत्रज्ञान में समाविष्ट किया जाता है।

विद्यालयी ज्ञान संगठन के प्रायोगिक निष्कर्ष हेतु तथा अनुप्रयोग हेतु जो ज्ञान निर्मिति होती है, उसकी विविध पद्धतियां/प्रणालियां होती हैं। ज्ञान निर्मिति की ये प्रणालियां विद्यालयी विषयों के अनुसंधान की एवं सृजनशीलता निर्माण की पद्धतियां भी हैं। ज्ञान संगठन के हर विषय में इन पद्धतियों का वर्णन आता है; किंबहुना वह आना चाहिए।

ज्ञान निर्मिति की विविध पद्धतियां/प्रणालियां

1. समस्या निराकरण पद्धति (Problem-solving method)
2. उद्‌गमन–निगमन/अपगमन पद्धति (Inductive-Deductive Method)
3. प्रयोगात्मक पद्धति (Experimental Method)
4. वैज्ञानिक शोध (Scientific Research)
5. निरीक्षण (Observation)
6. शोध करना (Searching)
7. दस्तावेजों का अध्ययन (Learning by documents)
8. मुलाकात/साक्षात्कार (Interview)
9. सामाजिक एवं राजनीतिक घटनाओं का अभ्यास (Learning through social and political affairs)
10. मानवीय वर्तनों का निरीक्षण (Observation of Human Behaviour)
11. वर्णनात्मक निरीक्षण (Descriptive Observation)
12. व्यक्ति अभ्यास (Case Study)
13. सूचना/जानकारी का वर्गीकरण (Classification of Information)
14. जानकारी का अर्थनिर्वचन (Interpretation of Information)
15. दांव का अर्थनिर्वचन (Proof)
16. अनुभव (Experiences)
17. सर्वेक्षण (Survey)
18. विषय अभ्यास (Subject Learning)
19. यात्रा वर्णन (Travelling Description)
20. प्रादेशिक अभ्यास (Regional Studies)

सभी विद्याशाखीय विषयक ज्ञान के कुछ गृहितक होते हैं तथा आशय की विशेषताओं के अनुसार पृच्छा प्रणाली भी होती है। इन पृच्छाओं से हर विद्याशाखा सृजन और समृद्ध होती जाती है। अध्यापक को अपने विषय के संदर्भ में यह जानकारी पाना अत्यंत आवश्यक होता है।

विद्यालयीन ज्ञान में आंतरविद्याशाखीय उपागमों के अनुप्रयोग की विशेषताएं–

1. अध्ययन–अध्यापन प्रणाली में विभिन्न परिवेशों द्वारा यानी भौतिक (Physical), सामाजिक (social) और सांस्कृतिक (cultural) परिवेशों द्वारा छात्रों को ज्ञान की समझ देकर संभावित कड़ियां तथा अंतर्संबंधों के साथ विकसित करने का प्रयास किया जाता है।
2. छात्रों के सर्वंकर्ष विकास होने हेतु सर्वंकर्ष प्रयास किये जाते हैं।
3. आंतरविद्याशाखीय उपागमों द्वारा छात्रों को पाठ्यपुस्तक के आशय–इकाई पढ़ाने के बजाय छात्रों में पारस्परिक तथा अंतर्संबंधित आकलन का विकास कराया जाता है। इसके लिए विविध विद्याशाखाएं तथा पाठ्यविषयों की परंपरागत

टिप्पणी

सीमाओं के परे कई प्राथमिकताओं को सहभागिता के रूप में चुना जाता है।

4. अलग–अलग ऐसे उपागमों का उपयोग किया जाता है; जिससे छात्र विभिन्न दशाओं में सोचने का अवसर पाते हैं, इस प्रक्रिया हेतु प्रोत्साहन पाते हैं।
5. छात्रों को कृति केंद्रित बनाकर खुद योगदान देने एवं सहभाग लेने हेतु सहायता एवं प्रेरणा तथा उद्विपक दिये जाते हैं।

आंतरविद्याशाखीय शालेय विषयों के विविध अंगों द्वारा सोचा जाय तो, प्रचलित स्थिति में अध्यापक अपने–अपने विषय का पाठ्यक्रम परीक्षा की दृष्टि से पूरा करने में लगे रहते हैं। मगर कुछ रचनावादी कार्य करते हैं, उससे आनंदमयी शिक्षा का निर्माण होता है। छात्रों को अध्ययन में डुबोना, गहरा ज्ञान देना, विषय एवं विद्याशाखा के क्षेत्रों का सह–संबंध प्रस्थापित करना यह एक आह्वान सबके लिए है। आंतरविद्याशाखीय दृष्टिकोण को अपनाकर उस प्रकार से पाठ्यक्रम, पाठशाला एवं अध्यापन कार्य का सुसंगठित नियोजन करने से छात्रों को भी समर्थ एवं सक्षम बनाना आसान हो जाएगा।

अपनी प्रगति जांचिए

5. ज्ञान प्रबंधन की कितनी सीढ़ियां मानी जाती हैं?

   (क) तीन (ख) चार

   (ग) पांच (घ) सात

6. ज्ञान निर्माण की कौन–सी पद्धतियां या प्रणालियां होती हैं?

   (क) उद्गमन–निगमन पद्धति (ख) प्रयोगात्मक पद्धति

   (ग) (क) और (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

2.5 विद्यालयी ज्ञान के विभिन्न कार्य

जन्म लेने वाले हर बालक को शिक्षा मिलना उसका मूलभूत अधिकार होता है। जिसमें पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक तथा विश्वविद्यालयी शिक्षा का समावेश होता है। छात्रों के जीवनकाल में विश्वविद्यालयीन शिक्षा का समावेश होता है। छात्रों के जीवनकाल में विद्यालयी शिक्षा का काल अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। माध्यमिक शिक्षा के दौरान अध्ययन किये गये विषयों के आधार पर ही उच्च माध्यमिक शिक्षा के विषयों एवं विषय शाखाओं का चुनाव निर्भर होता है।

छात्रों द्वारा विषयों का चयन करने में अध्यापकों एवं अभिभावकों का मार्गदर्शन महत्वपूर्ण होता है। इसके अलावा कुछ महत्वपूर्ण घटक होते हैं, वे घटक हैं–

1. विद्यालय
2. विषय और विषय क्षेत्र
3. रोजगारपरकता
4. छात्रों का व्यक्तित्व विकास
5. परिवार की अभिवृत्ति

6. समाज की रूढ़िवादी व्यवस्था

7. शिक्षा की परम्परागत नीतियां

उपर्युक्त आकृति में दिखाए गए घटक छात्रों को बहुत ही प्रभावित करते हैं। विषयों के चयन का विचार करने के लिए हमें अपने देश की शिक्षा संरचना पर ध्यान केंद्रित करना होगा क्योंकि, देश में विद्यालयी शिक्षा की विस्तृत संरचना के कारण कई प्रकार के परिवर्तनों का अनुभव पाया है। विद्यालयों में ज्ञान संगठन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। जिसमें छात्र विभिन्न क्षेत्रों से परिचित होकर उस विषय के अनौपचारिक रूप को भी देखता–परखता है।

विद्यालयी शिक्षा की संरचना

स्वातंत्र्यपूर्व माध्यमिक शिक्षा–

(अ) ऐतिहासिक संदर्भ

ब्रिटिश देश में आने से पूर्व–एतद्देशीय शिक्षा प्रणाली थी। बाद में 'गुरूकुल' शिक्षा पद्धति का विस्तार हुआ। मुस्लिम कालखंड में औपचारिक व अनौपचारिक दोनों पद्धति से शिक्षा हुई। जैसे– (1) मकतब (2) खान्गाह (3) दरगाह (4) कुरान स्कूल ऐसी शिक्षा संस्थाएं थी। उच्च स्तर पर फारसी स्कूल, अरबी स्कूल, मदरसा ऐसी शिक्षा टेक्सॉनामी ब्रिटिशों ने तैयार की।

भारत में माध्यमिक शिक्षा का विकास दो चरणों में हुआ है–

- स्वातंत्र्य प्राप्ति पूर्व काल 1600–1947
- स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद का काल 1947 के बाद

मिशनरीयों का शिक्षाविषयक कार्य–

(1) इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी (1600)

(2) डच ईस्ट इंडिया कंपनी (1602)

(3) फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी (1664–1964)

(ब) लॉर्ड मैकाले ने 1935 में शिक्षा की रिपोर्ट को प्रस्तुत किया। उन्होंने निम्न शिक्षा वर्गीकरण (Texonomy) दिया–

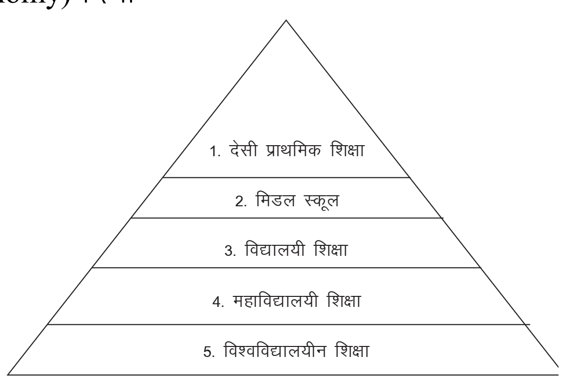

भारतीय शिक्षा अधिकार सुरक्षा कानून (1854) (Wood's Dispatch)

चार्ल्स इस यह कंपनी का सभापति था। इसमें भारतीयों की शिक्षा समस्याओं का अभ्यास हुआ, इसके बाद कंपनी के संचालकों ने 1854 में नयी शैक्षिक योजना

रिपोर्ट तैयार की। यही कंपनी का आज्ञापत्र 'वुड़का खलिता' भारतीय शिक्षा की सनद इस नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रो. एस.एन मुखर्जी के बारे में कहा गया है– "The Despatch is indeed a very important document"

टिप्पणी

भारतीय शिक्षा आयोग (हंटर आयोग) (1882–83)

1881–82 में भारत की शैक्षिक संख्यावारी डॉ. जे.पी. नाईक द्वारा प्रसिद्ध की गई। भारतीय शिक्षा प्रणालियों का विचार करने के लिए ब्रिटिश पार्लमेंट लॉर्ड रिपन को समिति का गठन करने की आज्ञा दी गई। उसके अनुसार रिपन ने 3 जनवरी, 1882 को भारतीय शिक्षा आयोग की घोषणा की। उसके अध्यक्ष हंटर थे। यही हंटर आयोग है। इसके बाद स्थानीय संस्थाओं द्वारा माध्यमिक पाठशालाओं की स्थापना हुई।

भारतीय विद्यापीठ आयोग (1902)

भारतीय विद्यापीठ आयोग ने विद्यापीठिय शिक्षा हेतु कुछ सिफारिशें की। परंतु लॉर्ड कर्जन ने 11 मार्च, 1904 को सरकारी प्रस्ताव के रूप में शैक्षिक योजना प्रकाशित की। उन्होंने माध्यमिक शिक्षा के गुणात्मक विकास की सिफारिशें की।

कलकत्ता विद्यापीठ आयोग सैलडर आयोग (1917)

1917 में सैडलर की अध्यक्षता में इस आयोग की स्थापना हुई, जिन्होंने माध्यमिक शिक्षा को इंटरमीडिएट वर्गों को विद्यापीठों से अलग करने की सिफारिश की।

हॉरटॉग समिति (1929)

1917 से 1927 इन 10 सालों की प्रगति का ध्यान रखकर हॉरटॉग समिति द्वारा सिफारिशें दी गई। जिसमें शिक्षा का दर्जा सुधार, सेवाशर्तें, वेतन में सुधार एवं माध्यमिक पाठ्शालाओं की सांख्यिकी दी गई।

सप्रू समिति (1934)

भारतीय माध्यमिक शिक्षा में योगदान देने वाली यह सप्रू समिति के नाम से जानी जाती है। माध्यमिक शिक्षा 11 वर्ष, सर्वसामान्य शिक्षा 8 वर्ष तथा 9वीं के बाद व्यावसायिक शिक्षा देने की सिफारिशें की।

ऑबट–वुड रिपोर्ट (1936–37)

माध्यमिक शिक्षा विकास हेतु ऑबट–वुड ने व्यावसायिक शिक्षा संस्थाओं के निर्माण की सिफारिशें की। उसके बाद तंत्रनिकेतन, कृषि संस्थाए एवं माध्यमिक पाठशालाएं निकाली गई, जिससे व्यावसायिक शिक्षा को योग्य स्थान मिला।

शिक्षा की वर्धा योजना (1937)

शिक्षा की 'मूलोद्योगी शिक्षा योजना' ही 'वर्धा शिक्षा योजना' के नाम से राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी ने शुरू की। इस योजना में शिक्षा किसी व्यवसाय ज्ञान पर आधारित हो तथा उसमें से मिलने वाले पैसे रूपयों से पाठ्शालाएं चलाई जाएं, यह कल्पना गांधीजी ने दी। अल्प अवधि में ही यह योजना फली फूली। मगर दुर्देव यह हुआ कि दो महायुद्धों के कारण इस योजना का गला कट गया।

सार्जंट योजना (1944)

दूसरे महायुद्ध के दुष्परिणाम संपूर्ण दुनिया भुगत रही थी। उसी दौरान सरकार ने सार्जंट की अध्यक्षता में शिक्षा विषयक समिति का गठन किया। जिसमें अंग्रेजी शिक्षा पर जोर

टिप्पणी

दिया गया। शिक्षा के गुणात्मक विकास, अध्यापक प्रशिक्षण पर ध्यान दिया। उससे प्रशिक्षण संस्थाएं एवं प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या बढ़ी।

स्वातंत्र्यप्राप्ति के पश्चात् माध्यमिक शिक्षा

1947 से लेकर आजतक

देश को स्वतंत्रता मिलने के बाद शिक्षा विकास करने हेतु एवं नये दृष्टिकोण से शिक्षा का विचार करने हेतु भारत सरकार ने विभिन्न आयोगों की स्थापना की।

1. विद्यापीठ शिक्षा आयोग/राधाकृष्ण आयोग (1948–49)
2. ताराचंद समिति
3. माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदलियार आयोग) (1952–53)
4. भारतीय शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग) (1964–66)
5. शिक्षा विषयक राष्ट्रीय नीति (1968)
6. अभ्यास क्रम/पाठ्यचर्या पुनर्विलोकन समिति (ईश्वरभाई पटेल समिति) (1977)
7. आदिशेष्या समिति (1978)
8. राष्ट्रीय शैक्षिक योजना रिपोर्ट (1979)
9. राष्ट्रीय शिक्षा योजना (1986)
10. राष्ट्रीय शिक्षा पुनरावलोकन समिति (राममूर्ति समिति) (1990)
11. जनार्दन समिति (1992)
12. राष्ट्रीय शैक्षिक सुधार योजना (1993)

इस तरह विभिन्न कमेटियां एवं आयोगों की रचना की गई थी। 1998 में शिक्षा की नई संरचना बनाई गई (Frame Work)। तथा उसके हर 10 सालों के बाद इसमें पुनर्रचना करने का काम होने लगा। 2008 में शिक्षा की नई पुनर्रचना बनाई गई तथा अभी फिलहाल 2018–19 की नई शिक्षा नीति प्रकाशित की गई जिसका अमल शिक्षा क्षेत्र में 2022 से होने वाला है, यह हम सब तो जानते ही हैं।

उपर्युक्त सभी कमेटियों/समितियों, आयोगों, संस्थाओं ने माध्यमिक/विद्यालयी शिक्षा हेतु बहुत महत्वपूर्ण भूमिका तो निभाई ही है मगर युग प्रवर्तन के साथ–साथ विद्यालयीन कार्य तथा उत्तरदायित्वों में भी परिवर्तन हुआ, निम्न कार्य हुए। विद्यालयी शिक्षा के द्वारा किये जाने वाले कार्यों में समावेशित है–

1. सांस्कृतिक आदर्शों/परम्पराओं को सुरक्षित रखने के कार्य।
2. प्रगतिशील दृष्टि से कार्य।
3. सामाजिक मुद्दों, जीवनमूल्यों, आदर्शों तथा सत्य की शिक्षा देने के कार्य।
4. बौद्धिक प्रशिक्षण हेतु कार्य।
5. चरित्र निर्माण एवं प्रशिक्षण हेतु कार्य।
6. सामुदायिक जीवन में प्रशिक्षण हेतु कार्य।
7. राष्ट्रभक्ति, प्रशिक्षण हेतु कार्य।
8. स्वास्थ्य एवं स्वच्छता हेतु कार्य।

टिप्पणी

इसके अलावा व्यक्तित्व विकास हेतु कार्य–जिसमें समावेशित हुए–

- शारीरिक विकास।
- बौद्धिक विकास।
- संवेगात्मक विकास।
- चारित्रिक विकास।
- सांस्कृतिक विकास/सौंदर्यात्मक विकास।
- व्यावसायिक विकास।

सामाजिक विकास से संबंधित कार्य–

- आदर्श नागरिकों का निर्माण करना।
- सामाजिक संस्कृति का हस्तांतरण एवं संरक्षण का कार्य।
- असत्य, विश्वास एवं सामाजिक बुराई को नष्ट करने के कार्य।
- कुशल नेतृत्व निर्माण हेतु कार्य।

छात्रों को विषय शाखा एवं विषयों के चुनाव का अवसर।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुद्लियार आयोग 1952–53) के अनुसार विद्यालयी पाठशालाओं के अभ्यासक्रमों में से छात्रों को अपनी विषयशाखाओं एवं विषयों को चुनने का एक अवसर जरूर प्राप्त होता था। आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के दो स्तर निश्चित किये थे–

(1) मिडल स्कूल/जूनियर माध्यमिक या सीनियर बेसिक

(2) हाईस्कूल या उच्च माध्यमिक

(अ) मिडल स्कूल/जूनियर माध्यमिक के स्तर पर विषय थे–

(1) भाषा (2) सामाजिकशास्त्र (3) सामाजिक विज्ञान (4) गणित (5) कला व संगीत (6) हस्त व्यवसाय (7) शारीरिक शिक्षण।

(ब) हाई स्कूल या उच्च माध्यमिक के स्तर पर निम्न विषय थे–

1. भाषा

(1) मातृभाषा एवं प्रादेशिक भाषा या अभिजात (प्राचीन भारतीय) भाषा का संयुक्त अभ्यास

(2) निम्न भाषाओं में से एक भाषा

(क) हिन्दी (मातृभाषा जिनकी नहीं है उनके लिए)

(ख) सामान्य अंग्रेजी (जूनियर माध्यमिक स्तर पर जिन्होंने अध्ययन नही किया; उनके लिए)

(ग) प्रगत अंग्रेजी (जूनियर माध्यमिक स्तर पर जिन्होंने अध्ययन किया है; उनके लिए)

(घ) एक आधुनिक भारतीय भाषा (हिन्दी के अलावा)

(ङ) एक आधुनिक परदेसी भाषा/अंतर्राष्ट्रीय भाषा (अंग्रेजी के अलावाः–जर्मन, फ्रेंच, जापानी, चीनी)

(च) एक अभिजात (प्राचीन भारतीय) भाषा

2. सामाजिक विज्ञान

1. सामान्य अभ्यासक्रम (सिर्फ पहले 2 सालों के लिए)
2. गणित और सामान्य विज्ञान (सामान्य अभ्यासक्रम सिर्फ पहले 2 सालों के लिए)

3. हस्त व्यवसाय

1. सूत कताई एवं विणकार्य
2. लकड़ीकाम/सूतार कार्य
3. धातुकार्य
4. बागबगीचा
5. सिलाई का काम
6. मुद्रणकला
7. कार्यशाला की आदतें
8. प्रतिकृति तैयार करना
9. सिलाई, सुई काम व काशिदा

4. विद्यालयी अध्ययन हेतु नीचे दिये गये 7 विषयों का चुनाव करने का अवसर–

वे गुटनिहाय विषय थे

गुट–1. मानवशास्त्र

1. एक प्राचीन (अभिजात) भाषा या फिर उपर्युक्त भाषा दो में से न चुनाव की हुई तीसरी भाषा
2. इतिहास
3. भूगोल
4. अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र के घटक
5. मनोविज्ञान एवं तर्कशास्त्र के घटक
6. गणित
7. संगीत
8. गृहशास्त्र

गुट–2. विज्ञान

1. भौतिकशास्त्र
2. रसायनशास्त्र
3. जीवशास्त्र
4. भूगोल
5. गणित
6. शरीरशास्त्र एवं आरोग्य विषय घटक (जीवशास्त्र विषय नहीं लिया होगा तो)

टिप्पणी

गुट–3. तंत्रविज्ञान

1. उपयोजित गणित और भौमितिय गणित
2. उपयोजित विज्ञान
3. यांत्रिक अभियांत्रिकी के घटक
4. विद्युत अभियांत्रिकी के घटक

गुट–4. वाणिज्य

1. वाणिज्य
2. लेखपालन (Accountancy)
3. वाणिज्य, भूगोल या अर्थशास्त्र व नागरिकशास्त्र के घटक
4. लघुलेखन एवं टंकलेखन

गुट–5. कृषि

1. सामान्य कृषि
2. पशु विज्ञान
3. वृक्ष विज्ञान, बागकार्य
4. कृषि रसायन एवं वनस्पतिशास्त्र

गुट–6. ललित कलाएं

1. कला का इतिहास
2. कला–चित्र संरचना एवं चित्रकला
3. रंगकला
4. प्रतिकृति तैयार करना
5. संगीतकला
6. नृत्यकला

गुट–7. गृहशास्त्र

1. गृह अर्थशास्त्र
2. पोषक आहार एवं पाककला
3. मातृव्यवसाय एवं बालसंगोपन
4. गृहप्रबंध एवं गृह शुश्रूषा (सेवा)

विद्यालयी स्तर पर शैक्षिक विषय शाखाओं एवं विषयों का चयन करना। छात्रों के लिए एक कठिन कार्य होता है। भारत में शिक्षा व्यवस्था में विविधता की महत्वपूर्ण भूमिका है। भाषा, शैक्षिक संस्थानों में विषयों, पाठ्यचर्या, भावी अध्ययन का क्षेत्र, रोजगार के अवसर, व्यक्तिगत अभिरूचि एवं पारिवारिक पार्श्वभूमि इत्यादि की विविधताओं के कारण छात्रों को विषय शाखाओं एवं विषयों के चयन में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

टिप्पणी

ज्ञान के चुनाव की वैधता

ज्ञान के द्वारा निर्मित विषयों की एवं विषय शाखाओं के चुनाव हेतु छात्रों को कठिनाईयां आती हैं। विद्यालयीन शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात उच्च माध्यमिक स्तर पर छात्र, उसका परिवार, समाज, विद्यालय आदि कारक अध्ययन हेतु किसी वर्ग एवं विषय विशेष के चयन को प्रभावित करते हैं। पर्याप्त परिपक्वता न होने के कारण एवं विषय तथा शाखाओं की भी पर्याप्त जानकारी न होने के कारण वे अपनी अभिरूचि का थोड़ा बहुत विचार कर मगर अन्यों के प्रभाव से विषयों एवं शाखाओं का चयन मान्य कर लेते हैं। विद्यालयी पाठ्यक्रम विषय समग्री के द्वारा छात्र ज्ञान ग्रहण करता है, तथा दैनंदिन जीवन से संबंधित होता है। शिक्षा का औपचारिक रूप देने के लिए विद्यालयी शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता होती है तथा ज्ञान संगठन को सही ढ़ंग से अवगत कराने की भी आवश्यकता होती है।

विद्यालयीन विषयज्ञान के चुनाव की कसौटी/मानदण्ड/निष्कर्ष

विद्यालयीन विषयों के चयन के बारे में हमने जानकारी पायी। यह ज्ञान शैक्षिक उद्देश्यों पर निर्भर करता है। वह सार्वभौमिकता तथा संस्कृति की विशेषता से संबंधित होता है। ज्ञान के चुनाव हेतु अधिगम, समुदाय की आवश्यकताओं का विश्लेषण किया जाता है। उच्च माध्यमिक शिक्षा हेतु छात्रों द्वारा किये गये विषय एवं शाखा चुनाव की यह कसौटी है। इस हेतु कुछ मानदण्ड/निष्कर्ष निर्धारित किये हैं। वे मानदण्ड हैं–

1. समग्रता
2. विभिन्नता तथा लचीलापन
3. सामुदायिक केंद्रिता
4. अवकाश
5. सहसंबंध
6. गतिविधि
7. उपयोगिता
8. लचीलापन
9. खेल
10. संरक्षण
11. लोकतांत्रिक मूल्य
12. समानता

विषयों का ज्ञान हमें ज्ञानेंद्रियों के अनुभव, तर्क, अधिकार एवं अन्य कई स्रोत (Source) से मिलता है। इस ज्ञान की पुष्टि करना भी आवश्यक होता है। इसी कारण विषयज्ञान एवं शाखा चुनाव के मानदण्डों की जानकारी अत्यावश्यक है।

1. समग्रता– ज्ञान का चुनाव छात्रों को सही ढंग से करना आना चाहिए मगर अपरिपक्वता के कारण वह नहीं कर पाता। ज्ञान का चुनाव उसके समग्र अनुभव पर निर्भर होना चाहिए। जो कि आगे चलकर छात्रों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में पूरक एवं पोषक हो सकता है। कक्षाध्यापन में अध्यापक केवल शैक्षिक परिप्रेक्ष्य द्वारा, अध्यापनशास्त्र द्वारा विषय ज्ञान पहुंचाते हैं। अगर मनोवैज्ञानिक विचारधारा का भी प्रयोग हुआ तो ज्ञान समग्र रूप से छात्र स्वीकार करके उसकी उपयोगिता भी साबित कर सकेंगे।

2. विभिन्नता एवं लचीलापन– छात्रों को जो ज्ञान दिया जाता है वह उन्हें जीवन में उपयोजन करने तथा व्यक्तित्व विकास में पूरक एवं पोषक हो। बालकों के सर्वंकष विकास में ज्ञान की विभिन्नता तथा लचीलापन बना रहना चाहिए; न कि एककेंद्री एवं ज्ञान कठोरता। अध्यापकों द्वारा विविध प्रणालियों अधिगमों के उपयोग तथा शिक्षा तकनीकी का प्रयोग होगा तो छात्रों तक यह विभिन्नता से एवं लचीलेपन से पहुंचाने का भविष्य में भी फायदा हो सकता है।

3. सामुदायिक केंद्रिता (Group Centred)– पाठ्शालाएं, कक्षाएं यह सब समाज की तरह गुटों में तथा समुदायों की गुट मानसिकताओं का ध्यान रखते हुए उनकी आशा, आकांक्षाएं एवं आवश्यकताएं भी विचारपूर्वक ज्ञान कक्षा में आनी चाहिए। हालांकि ग्रुप मानसिकता भी कहीं न कहीं छात्रों की स्वतंत्र विचारधाराओं से ही बनती है। इसीलिए ज्ञान चुनाव में भी विभिन्न श्रेणियों द्वारा समुदाय विकास हो सकता है। समुदायों के लिए कौन से संसाधन उपयुक्त बन सकते हैं; ऐसे मानवीय एवं भौतिक संसाधनों के लिए सर्वेक्षण किया जाना चाहिए।

4. अवकाश– कभी–कभी छात्र एक ही काम करके तथा एक ही प्रकार की कृतियों से उब जाते हैं। कक्षा में उन्हें समीक्षा रखना भी उतना ही आवश्यक होता है; जितना उनका अध्ययन होना है। अध्यापन के द्वारा दिया जाने वाला विषय ज्ञान छात्रों को अगर सही से दिया जाय तो वह योग्य दिशा से प्रशिक्षित हो सकता है, तथा उससे पाये ज्ञान की पुष्टि लगातार होकर ज्ञान की अभिवृद्धि भी होगी। छात्रों के सर्वांगीण विकास हेतु शारीरिक, मानसिक, भावनिक, सौंदर्य विषयक तथा आध्यात्मिक अंग से भी व्यक्तित्व बढ़ना चाहिए। मूल्य शिक्षा एवं संस्कृति निर्माण के जरिए छात्रों के सुप्त गुणों का विकास अपेक्षित है। संगीत, वादन, नृत्य, शिल्पकला, योग आदि कृतियों से व्यक्तित्व विकास अवकाश का एक अंग भी है।

5. सहसंबंध– कक्षा कोई भी हो विषय ज्ञान के बीच अंतर्सबंध होने चाहिए। किसी एक विषय की पाठ्यपुस्तक में दी जाने वाली इकाइयों तथा उसी कक्षा के अन्य विषय भी होने चाहिए। यह खड़ा .... (Verticle) और आड़ा ....(Horizontal) दोनों बाजुओं से हो। केवल विषय का संकीर्ण सेवाओं के बजाय ज्ञान का व्यापक सहसम्बन्ध जोड़ा जाय। उससे छात्रों की व्यापक दृष्टि भी विकसित होगी।

6. गतिविधि– कक्षा में अध्यापकों द्वारा निर्धारित कार्य सक्रिय होने हेतु कई गतिविधियों का निर्माण किया जाना चाहिए। एक ही कृति से छात्र निष्क्रिय हो जाते हैं। इसलिए केवल अध्ययन अगर गतिविधि माध्यम से होगा तो क्रियात्मकता पोषक होती है। कक्षा के लिए विभिन्न योजनाओं का अवलंबन किया जाय। जैसे कि प्रकल्प बनाना, टीम वर्क, सामाजिक सेवा कार्य, खेल स्पर्धाएं, सांस्कृतिक कला विशेषों के जरिए ये गतिविधियां बनाई रखनी चाहिए। छात्रों के सुप्त गुणों का विकास भी इन्हीं गतिविधियों पर निर्धारित करना है। औपचारिक एवं अनौपचारिक ज्ञान अगर गतिविधियों से केंद्रित किया जाय तो छात्रों को अध्ययन में भी कोई दिक्कतें नहीं होंगी।

7. उपयोगिता– ज्ञान का महत्व उसकी उपयोगिता पर निर्भर करता है। केवल ज्ञान मिलना, पास होना जरूरी नहीं मगर सही समय पर, सही जगह, सही काम के लिए सही तरीके से उसका मूल्य पता चलने के लिए उसकी उपयोगिता भी निर्भर करती है। वैसे प्रसंग एवं स्थानों पर जो छात्र अगर उसका उपयोग करते हैं तो यही उसके जीवन में कुशलता, व्यावसायिकता और निडरता लाने में काम आती है।

8. लचीलापन— छात्रों की सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया में अध्यापक का प्रमुख सहभाग होता है। अध्यापकों द्वारा छात्रों को दिये जाने वाले विषय ज्ञान को विभिन्न संदर्भो से जोड़कर उसमें लचीलापन लाना यह सहज कृति है मगर उसे कौशल्यपूर्ण ढ़ंग से किया जाना चाहिए। छात्रों को उनकी आकलन कक्षा की आसपास की स्थानिक परिस्थितियों के साथ जोड़कर विषयज्ञान प्रस्तुति होने पर अपनेपन का निर्माण भी हो सकता है। पहचान के संदर्भों से लचीलापन बना रहता है।

9. खेल (Play Mode)– खेलते–खेलते सीखना, सीखाना यह शिक्षाविदों एवं मनोवैज्ञानिकों का दिया मंत्र है। खेल विधि एक प्रभावी अंग है, शिक्षा का जिससे अच्छे परिणाम सामने आते है।

विभिन्न कौशल्य, मानवी संबंध, कृतियां, उन कृतियों के परिणाम, निर्णय क्षमता और मानवी व्यवहार इनसे संबंधित विविध विषयों के आशय पढ़ाने के लिए अभिरूपता और खेल इन प्रतिमानों का उपयोग दृढ़िकरण एवं सुधारों के लिए उपयोगी होते हैं। खेल के द्वारा 'टीम वर्क' का जज्बा निर्माण होकर सहयोग, सहनशीलता, अनुभव, विचार, कार्यप्रणाली तथा एकसंघता ऐसे गुणों का विकास किया जाता है। इसलिए खेल प्रणाली द्वारा कक्षाध्यापन भी प्रभावी होकर छात्रों में ज्ञान पाने की सहजवृत्ति विकसित होती है।

10. संरक्षण— विषय ज्ञान के माध्यम से ज्ञानवृद्धि तत्व वृद्धिगत होता है। विद्याशाखाओं से प्राप्त ज्ञान का प्रसार व प्रचार होने हेतु ही अध्यापकों द्वारा ज्ञान नई पीढ़ी को संक्रमित करने का काम होता है। ज्ञान का संवर्धन, संक्रमण ही ज्ञान का संरक्षण होता है। शिक्षा एक ऐसा शस्त्र है जो हर बालक/छात्र, हर व्यक्ति, हर समाज, हर राष्ट्र के लिए भविष्य का निर्माण, संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसारण के कार्य के लिए योगदान देता है।

11. लोकतांत्रिक मूल्य— शिक्षा पाना यह हर व्यक्ति का मूलभूत एवं प्रथम अधिकार माना जाता है। इसलिए बालक के हर स्तर पर उसे शिक्षा के माध्यम से ज्ञान मिलते रहना अनिवार्य भी माना गया है। अगर शिक्षा आसानी से मिलेगी तो विषय ज्ञान की प्राप्ति भी सहज ढंग से होगी। देश, काल, परिस्थिति का तो सब पर असर होता है मगर हम और अधिकारों के जरिए छात्रों को लोकतांत्रिक पद्धति से ज्ञान मिलना एक लोकतांत्रिक मूल्य भी है। कई शिक्षाविदों ने लोकतांत्रिक मूल्य प्रणालियों का निर्माण कर शिक्षा प्रणाली में आधुनिकता लायी है। इस प्रणाली द्वारा विषय ज्ञान लेने देने में आसानी होती है।

12. समानता— 'न्याय, स्वातंत्र्य, समता, बंधुता एवं समानता' यह सभी तत्व हमारे घटना/संविधान की पूर्वपीठिका (Preamble) में निर्धारित किये गये है। समानता का पालन सफलता की ओर जाने वाली मानव जाति की महत्वपूर्ण सीढ़ी होती है। इससे सभी को अपना व्यक्तित्व बनाने का अवसर प्राप्त होता है। अपने देश की विविधताओं के चलते कई स्तर, विभाग, जातियां, परिस्थितियां हमें हर रोज दिखाई देती हैं। अगर समानता तत्व का पालन किया जाए तो, वैचारिक मतभेदों की कमी करने का काम अपने आप होकर सभी को समानता के अवसर मिल सकते हैं। ताकि सबको अपना व्यक्तित्व सुंदर बनाने में मदद मिल सकती है।

उपर्युक्त दिये इन्हीं विस्तृत मानदण्डों के आधार पर विषय ज्ञान का चुनाव अगर किया गया तो केवल छात्र ही नहीं बल्कि अध्यापक, शिक्षा प्रणाली भी प्रभावी ढंग से अपना कार्य कर सकती है।

अभिकरण / एजन्सिज

विद्यालयीन विषयों के चयन हेतु किसी दूसरे का प्रभाव एवं प्रमाणता / निकषों की जानकारी हमने प्राप्त की। किसी भी व्यवसाय का दर्जा (grade) तथा उसकी गुणवत्ता यह समाज में उसके उपयोग क्या होते हैं; इस पर निर्भर है। अपने देश में शिक्षा व शिक्षा व्यवसाय की परंपरा बहुत पुरानी है। शिक्षा संघटना यह संकल्पना शतक पूर्व की ही है। उसे समझ लेंगे।

संगठन / अभिकरण

"संगठन यानी विशिष्ट कार्य की पूर्ति हेतु निर्माण किया हुआ व्यक्ति समूह। यह व्यक्ति समूह किसी एक व्यवसाय, उद्योग एवं संस्था के नाम से जाना जाता है। उदाहरण– माध्यमिक शिक्षक संघ, शिवाजी विश्वविद्यालय। राष्ट्रीय स्तर पर हर देश में एक शिक्षा विभाग होता है; जो सभी स्तरों के शिक्षा पर नियंत्रणात्मक देखभाल करता है। अपने देश में मानव संसाधन विकास मंत्रालय (HRDM- Human Resources Development Ministry) कार्यरत है। पाठ्यचर्या तथा पाठशाला शिक्षा विभाग, साक्षरता एवं उच्च शिक्षा विभाग मिलकर बना होता है। प्रत्येक राज्य का एक शिक्षा विभाग होता है। शिक्षा को भारतीय संविधान में मूलभूत आवश्यकता के साथ–साथ समवर्ती सूची में रखा गया है। विद्यालयी शिक्षा यह केवल समाज, राज्य या राष्ट्र स्तर पर विचाराधीन विषय नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाला संगठन हैं लगभग सभी देशों में तथा राष्ट्रांतर्गत विचाराधीन विषय माना जाता है।

सरकार / शासन एवं अध्यापन संघटनाओं की ओर से किये गये प्रयास–

शासन के द्वारा राष्ट्रीय शैक्षिक संशोधन / अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT) का निर्माण अध्यापक एवं शिक्षा सुधार के लिए किया गया है। भारत में मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा विद्यालयों के ज्ञान का संगठन किया जाता है। मंत्रालय ही शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु नीति बनाता है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा तथा साक्षरता विभाग के अंतर्गत ही एन.सी.ई.आर.टी. की स्थापना होकर स्वायत्तता स्थापित की गई है। राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत यह ऐसा संगठन है जो विद्यालयों के ज्ञान, संगठन, पाठ्यचर्या तथा माध्यमिक शिक्षा के विभिन्न प्रकार के शिक्षाक्रम / अभ्यासक्रम (Courses) के निर्माण पर कार्य करता है। राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान द्वारा (आंगनवाड़ी) ज्ञान संगठन के दिशा निर्देश दिये जाते हैं। जो एकीकृत बाल विकास सेवा (आय.सी.डी.एस.) योजना के अंतर्गत शिशुओं / बाल शिक्षा पर देखभाल एवं पूर्व प्राथमिक शिक्षा पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं।

संगठन तीन स्तरों पर कार्य करते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर तीन अलग–अलग संघटनाएं कार्यरत हैं वे हैं–

(अ) केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सी.बी.एस.ई.)

(ब) इंडियन स्कूल सर्टिफिकेट परीक्षा (सी.आई.एस.ई.)

(क) राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी संस्थान (एन.आई.ओ.एस.)

यह तीनों संघटनाएं परीक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम तैयार कर रहे हैं। राज्य स्तर पर भी ऐसी ही संस्था कार्यरत होती है।

टिप्पणी

संस्थाएं

1. NCERT राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद– इस संस्था की स्थापना 1961 में की गई। इस संस्था की निम्न कार्यप्रणाली की अपेक्षा है–

शिक्षा एवं पाठ्यचर्या पुनर्निर्माण हेतु उपागम

(अ) (i) पाठ्यक्रम पुनर्रचना करना।

(ii) पाठ्यक्रम का विकास करना।

(iii) पाठ्यक्रम हेतु अध्यापन साहित्य की निर्मिति करना।

(iv) मूल्य मापन के तंत्र विकसित करना।

(आ) अध्यापकों के सेवापूर्व एवं सेवांतर्गत प्रशिक्षण कार्यक्रमों को अमल करना।

(इ) शैक्षिक अनुसंधान को उत्तेजना देना।

(ई) पाठ्यक्रम के द्वारा नवविचारों की जानकारी अध्यापकों तक पहुंचाना।

विद्यालयीन अध्यापकों की गुणवत्ता का विकसन

(i) अनुसंधान व विकास।

(ii) सेवांतर्गत एवं सेवापूर्ण प्रशिक्षण।

(iii) विस्तारसेवा एवं प्रसार।

प्रकाशन विभाग

विद्यालयी अध्यापकों के गुणवत्ता बढ़ोतरी एवं विकास इसके लिए यह प्रकाशन विभाग कार्यरत है। पाठ्यपुस्तकों का निर्माण, शैक्षिक मासिक, पाक्षिक एवं नियतकालिकों की निर्मिति एवं प्रकाशन करना। शालेय शास्त्र, प्राथमिक शिक्षा के लिए वार्तापत्र– ऐसे विभिन्न प्रकाशन करवाये जाते हैं।

प्रज्ञावान छात्रों का शोध व शिक्षा

यह विभाग विभिन्न स्तरों के प्रज्ञावान छात्रों को ढूंढकर उनका राष्ट्रीय प्रज्ञा शोध परीक्षा के बारे में मार्गदर्शन करता है।

प्रज्ञावान अध्यापकों को प्रोत्साहन

विद्यालयी शिक्षा स्तर पर प्रयोगशील तथा नवोपक्रमशीलता द्वारा विकास योजनाएं आयोजित की जाती हैं। जिस कारण अध्यापक एवं प्रशिक्षकों के लिए निबंध स्पर्धाओं का, अनुसंधान प्रकल्पों का आयोजन कर उस पर कार्य करने वालों को शिष्यवृत्ति प्रदान की जाती है। इसी तरह वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा जनजागृति करने वाले अध्यापकों के लिए राज्य एवं जिला स्तर पर भी विज्ञान प्रदर्शनों का आयोजन किया जाता है।

2. राज्य शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण संस्था (SCERT)– राज्य स्तर पर 'राज्य शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण संस्था' कार्यरत होती हैं। जो विद्यालयी शिक्षा के लिए निम्न प्रकार के कार्य करती हैं।

(i) पाठशालेय शिक्षा, निरंतर शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा एवं अध्यापक प्रशिक्षण में परिवर्तन लाना।

(ii) पूर्व प्राथमिक शिक्षा से उच्च माध्यमिक स्तर के संस्थाओं की जांच करने वाले अधिकारियों को सेवांतर्गत प्रशिक्षण देना।

(iii) अध्यापक प्रशिक्षण संस्था, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक पाठशाला एवं कनिष्ठ महाविद्यालयों के अध्यापकों को सेवांतर्गत प्रशिक्षण देना।

(iv) अध्यापन साहित्य का निर्माण करना।

(v) शैक्षिक समस्याओं का एवं अध्यापक प्रशिक्षण का अनुसंधानात्मक अध्ययन करना।

(vi) अध्यापक संघटना एवं विषय अध्यापक संघटना इन दोनों के कार्य में समन्वयन करना।

(vii) सरकार के शैक्षिक विकास प्रकल्प पूर्ण करना।

इस संस्था के अलग–अलग 13 विभाग होते हैं–

(i) प्रशिक्षण

(ii) विस्तार सेवा

(iii) आदिवासी बोली

(iv) अनुसंधान

(v) मूल्यमापन

(vi) अध्यापक प्रशिक्षण

(vii) व्यावसायिक शिक्षण व प्रशिक्षण

(viii) प्रकाशन

(ix) पत्र द्वारा शिक्षा

(x) पाठ्यचर्या विकासन

(xi) प्राथमिक शिक्षा व प्रशिक्षण

(xii) बाल शिक्षा

(xiii) लोकसंख्या/जनसंख्या शिक्षा।

अध्यापकों के शैक्षिक कार्य सुधार हेतु विभिन्न उपागमों का आयोजन – निबंध स्पर्धा। निबंध वाचन स्पर्धा। कृति अनुसंधान।

3. राज्य विज्ञान प्रशिक्षण संस्था (SSTI)– इस संस्था की स्थापना विज्ञान का पुरस्कार एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण की जनजागृति करने हेतु होती है। राज्य स्तर पर यह संस्था बहुत ही लोकप्रिय है। इस संस्था के निम्न उपक्रम होते हैं–

(i) विज्ञान अध्यापकों का उद्बोधन।

(ii) विज्ञान अध्यापन प्रकल्प।

(iii) दत्तक पाठशाला समूह योजना (Adopt)

(iv) पत्रद्वारा/पत्राचार प्रशिक्षण योजना।

(v) विज्ञान साहित्य।

(vi) विज्ञान मंच योजना।

टिप्पणी

(vii) राष्ट्रीय प्रज्ञा शोध परीक्षा मार्गदर्शन।

(viii) विज्ञान रुचि मण्डल।

(ii) विज्ञान प्रदर्शन।

(x) विद्यार्थी विज्ञान शिविर।

राज्य विज्ञान प्रशिक्षण संस्थान के माध्यम से शालेय स्तर पर छात्रों के लिए विज्ञान प्रदर्शनी का आयोजन, विज्ञान भाषण, विज्ञान दृष्टिकोण का निर्माण यह प्रमुख उद्देश्य होता है। अध्यापकों के द्वारा शिक्षा संस्थानों में नवप्रवाह तथा वैचारिक विकास के बीज बोने का काम किया जाता है।

4. राज्य आंग्लभाषा संस्था (SECI)– कई राज्यों मं आंग्ल भाषा संस्था की स्थापना अंग्रेजी शिक्षा विकास हेतु की गई है। इस संस्था के कार्य निम्नानुसार होते हैं।

(i) माध्यमिक अंग्रेजी अध्यापकों का उद्‌बोधन।

(ii) अल्पकालीन अंग्रेजी सत्र तथा दीर्घकालीन अंग्रेजी सत्र–आयोजन इसके द्वारा
- अंग्रेजी अध्यापन संबंधी नया दृष्टिकोण समझाना।
- अंग्रेजी अध्यापकों की भाषा समृद्ध करना।
- अंग्रेजी अध्यापकों के भाषा कौशलों का विकास करना।

(iii) शैक्षिक दृष्टि से अविकसित विभाग के लिए उपक्रम
- आदिवासियों के लिए तथा आदिवासी क्षेत्र में कार्यरत अध्यापकों के लिए एक हफ्ते का कृतिसत्र आयोजित करना।

(iv) भाषिक कौशलों का विकास करने के लिए भाषिक प्रयोग कक्ष।

(v) शैक्षिक साहित्य का निर्माण
- श्रवण, संभाषण कौशल्य विकास के लिए साधन/साहित्य।

5. राज्य पाठ्यपुस्तक निर्मिति तथा पाठ्यचर्या अनुसंधान मंडल (STDSRC)– कोठारी आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार राज्यों में पाठ्यपुस्तक निर्माण एवं पाठ्यचर्या अनुसंधान की स्थापना की जानी है। इस संस्था के कार्य होते हैं–

(i) पाठ्यपुस्तकों का निर्माण एवं पाठ्यचर्या तथा पाठ्यपुस्तकों के संबंध में अनुसंधान।

(ii) माध्यमिक व प्राथमिक के अध्यापकों को उनकी प्रगति में मदद करना।

(iii) शालेय पाठ्यपुस्तकों, हस्तपुस्तिकाओं, स्वाध्याय पुस्तिकाओं एवं शैक्षिक साहित्य का निर्माण करना।

उपर्युक्त उद्देश्यों को सामने रखकर इस संस्था की निर्मिति की जाती है।

6. राज्य शैक्षिक तंत्रज्ञान संस्था (SI of E&T STETS)– इस संस्था की स्थापना भी कोठारी आयोग की सिफारिशों के अनुसार की जाती है। हर राज्य में ऐसी संस्थाएं स्थापित की गई हैं। इस संस्था के निम्न कार्य होते हैं–

(i) पाठशालाओं को दूरदर्शन मंच दिलाना।

(ii) शालेय चित्रवाणी पाठलेखन प्रशिक्षण का आयोजन।

(iii) अध्यापकों ने शालेय चित्रवाणी का उपयोग कैसे किया जाए, इस हेतु चर्चा सत्रों का आयोजन।

(iv) शालेय आकाशवाणी पाठलेखकों को प्रशिक्षण देना।

(v) शालेय चित्रवाणी के स्वरूप, निर्मिति एवं प्रक्षेपण हेतु कार्य।

7. विस्तार सेवा केंद्र (Extention Services Centres)– 1956 में केंद्र सरकार द्वारा विस्तार सेवा केंद्रों की स्थापना की गई। हर राज्य के हर जिले में एक विस्तार सेवा केंद्र की स्थापना करना अनिवार्य किया गया।

कार्य

(i) विद्यालयी स्तर पर कृति अनुसंधान करने हेतु अध्यापकों को प्रवृत्त करना।

(ii) दृक श्रव्य साधनों का निर्माण तथा उनका परिणामकारक उपयोग करने का मार्गदर्शन करना।

(iii) अध्यापकों के लिए चर्चा सत्र, कार्यशालाएं, परिसंवादों का आयोजन कर अध्यापकों का मार्गदर्शन करना।

(iv) नयी–नयी अध्यापन पद्धति तथा अध्यापन तंत्रों का परिचय अध्यापकों के लिए करना।

(v) विषय अध्यापकों के लिए चर्चासत्र तथा परिसंवादों का आयोजन करना।

(vi) नई मूल्यांकन संकल्पनाएं, पर्यवेक्षण तंत्रों की जानकारी प्राप्त कराना।

(vii) कृति अनुसंधान पर आधारित शैक्षिक निबंध वाचन हेतु प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन करना।

8. अध्यापक संघटनाएं– अध्यापक संघटनाएं अलग–अलग शैक्षिक विषयों पर चर्चासत्र, परिसंवादों को आयोजित कर शिक्षकों का अध्यापन स्तर बढ़ाने का प्रयास करती हैं। उसी प्रकार अध्यापक संघटनाएं अपने प्रकाशन विभाग के द्वारा अध्यापकों को विभिन्न शैक्षिक प्रश्नों पर लेखन करने हेतु प्रोत्साहन एवं प्रेरणा देते हैं।

राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर पाठ्यचर्या का निर्माण कर उसका अमल करते, शिक्षा प्रणाली के संबंधित सारे घटकों का विकास करना यही अभिकरण/एजन्सियों का कार्य माना जाता है।

ज्ञान चुनाव की वैधता

ज्ञान के चुनाव की प्रक्रिया से ज्ञान की धारणा में बदलाव आया है। ज्ञान चुनाव की वैधताओं से ज्ञान का निर्धारण एवं उपयोगिता आसान सी हो जाती है। ज्ञान की उपयोगिता से विषय ज्ञान और छात्रों की समझ में अंतर्संबंध होते है। ज्ञान के सामाजिक–सांस्कृतिक सिद्धांत तथा राजनैतिक आर्थिक सिद्धांतों को तैयार करने के लिए ज्ञान, उत्पादन के लिए, वैधता प्रदान करने के लिए कार्य तर्कसंगत कार्य होता है। ज्ञान वैधता का प्रमाणिकरण से मूल्यों का संबंध बना रहता है। मगर ज्ञान चुनाव को वैधता प्राप्त होने के लिए यही सामाजिक–सांस्कृतिक एवं राजनैतिक–आर्थिक आधार एवं प्रभाव जानना बहुत आवश्यक है।

सामाजिक–सांस्कृतिक आधार

भारतीय समाज एवं भारतीय संस्कृति यह विद्यालयी छात्रों को अपने विषय चुनाव के लिए प्रभावित करती है। हर समाज के अपने मानदंड होते हैं, वे काल–परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। समाज से हमेशा यही अपेक्षा की जाती है की, उनके द्वारा विद्यालयी छात्रों के विषय चयन हेतु ऐसी मदद एवं मार्गदर्शन मिले जिससे की छात्रों को विशिष्ट व्यवसाय, शिक्षा के वर्ग (शाखा), शिक्षा के कार्य, लैंगिक शिक्षा तथा विशेष बालकों को शिक्षा दिलाने में प्रथम स्थान देना अत्यावश्यक होता है। समाज यह सहाय्यता कर सकता है।

शिक्षा शाखाओं में विषयों का चयन करने के अवसर प्राप्त होते हैं। जैसे विज्ञान विषय यह सबसे बेहतर, उसके बाद वाणिज्य शाखा तथा उसके नीचे कला शाखा मानी जाती है। विज्ञान शाखा की कठिनता भी अधिक होने के कारण विज्ञान वर्ग को चुनने वाले छात्रों को कई वैकल्पिक विषय चुनाव के लिए मिलते हैं; अन्य शाखाओं के छात्रों से। इस तुलना में वाणिज्य एवं कला शाखा छात्रों को विषय चुनने के अवसर कम मिलते हैं। भारतीय समाज में स्त्री–पुरुष भेदाभेद मुख्य विषमता मानी जाती है। इस विषमता के कारण लिंग भेद की समस्या का सामना लड़कियों को ज्यादा करना पड़ता है।

लड़कियों को शिक्षा की जरूरत क्या है? यहां से लेकर कम मेहनतवाले विषयों का चुनाव करने की सलाह दी जाती है, तथा विषय चुनाव के अवसर ही न देकर लड़कियों पर अत्याचार की तलवार हमेशा सरपर टंगी रखी जाती है। लड़कों को डॉक्टरी शिक्षा, इंजिनियरींग, मिल्ट्री, आर्मी, नेवी, एअर फोर्स तथा गणित, विज्ञान जैसे कठिन विषयों के चुनाव के लिए प्रोत्साहन व प्रबलन दिया जाता है, मगर लड़कियों को आट्र्स/कला शाखा, पाक कला, गृह विज्ञान, संगीत, ललित कलाओं का, सामाजिक अध्ययन से जुड़े विषय चुनने का निर्णय दिया जाता है। या बंधन डालकर वही शिक्षा पूरी करने की सलाह दी जाती है।

या यूं कहिए की माध्यमिक शिक्षा के बाद शादी तय होने तक या शादी होने तक का सफर तय करने हेतु उच्च्य माध्यमिक या महाविद्यालयीन शिक्षा की औपचारिकता पूरी की जाती है। इस प्रकार की सामाजिक वृत्तियों से लड़कियों पर वर्ग/कक्षा, शाखा तथा विषय चुनाव पर अधिक परिणाम होता हमें दिखाई देता है। एक और सामाजिक सुझाव समाज में दिया जाता है। तथा कई जगह यह अमल में लाया जाता है कि, लड़कों को घर से दूर अच्छे कॉलेजों/महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में, छात्रावासों में प्रवेश देकर उच्च शिक्षा पाने हेतु मार्गदर्शन किया जाता है; मगर लड़कियों को केवल शिक्षा हेतु घर से दूर भेजना, बिल्कुल अहमियत नहीं दिया जाता। दूर न जाने दिया जाने की वजह से घर के आसपास के उच्च शिक्षा संस्थाएं एवं महाविद्यालय जो सबसे करीब हो, उसे प्रवेशित किया जाना है; फिर विषय कोई भी हो। उसे विषय या शाखा चुनने का कोई अवसर नहीं दिया जाता। मगर आधुनिकता के प्रवाह के अनुसार अब लड़कियों को उन्नति का विचार भी किया जाता है। मगर इस तुलना में लड़कियों को समाज एवं कुटुंब का एक श्राप मानने की प्रथा है, उससे लड़कियों पर शिक्षा के लिए बड़े ही अधिकार एवं हक जताएं जाते हैं। परंतु अपने देश के कई राज्यों में महिला शिक्षा की ओर ध्यान केंद्रित नहीं किया जाता,

यह वंश परंपरागत ढंग से चलता आ रहा है; इसलिए लड़कियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान केंद्रित करना आवश्यक हो जाता है।

टिप्पणी

हमारे समाज का और एक महत्वपूर्ण हिस्सा होते हैं, विशेष आवश्यकताओं वाले बालक–बालिकाएं। विशेष बालकों की व्यंगता भी कई प्रकार की होती हैं। उनकी अपंगता के अनुसार उन्हें विषय शाखा एवं विषय चयन करने को कहा जाता है। जबकि उन्हें उनकी रुचि एवं अभिरुचि के अनुसार वर्ग व विषय चयन करने का अवसर मिलना चाहिए।

छात्रों को समुदाय एवं स्थानीय वातावरण के संदर्भों को अपने ज्ञान से जोड़कर महत्व अर्जित करते आना चाहिए। छात्रों के ज्ञान की परिभाषा में अनुभव ही बेहतर माध्यम होता है। वही ज्ञान दुनिया से भी उसे जोड़ता है। बालकों के स्थानीय परिवेश में केवल भौतिक ही परिवेश नहीं होता बल्कि प्राकृतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक भी होता है। समुदायों के साथ–साथ बालक के जीवन से रिश्तेदार, आस–पड़ोस वाले लोग, बाल–साथीयों का स्रोत महत्वपूर्ण होता है। इनके द्वारा दिया जानेवाला ज्ञान बिल्कुल सहज एवं प्राकृतिक होता है। परिवार द्वारा तथा कक्षा के द्वारा सुनी गई कहानियां, लोककथाएं, चुटकुले, बाल कविताएं, गीत इन सबसे बालक का ज्ञान अभिवृद्ध होता है। इसलिए सामाजिक–सांस्कृतिक संसार के अनुभवों को भी पाठ्यक्रम का भाग बनाया जाना चाहिए। सामाजिक–सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक परिवेश के साथ दृढ़ संबंध, अंतर्क्रिया, उनकी समझ तथा स्वयं कृतियों से सौंदर्यानुभूति की क्षमताओं का विकास होता है।

राजनीतिक अर्थशास्त्र के आधार

शिक्षा के आधार एवं लक्ष्य राष्ट्र की राजनीतिक एवं अर्थशास्त्रीय पार्श्वभूमि पर भी निर्भर करते हैं। उसी के विचारों को पाठ्यचर्या में सम्मिलित किया जाता है। ताकि शिक्षा के सभी लक्ष्यों को साध्य किया जाए। हमारे देश की लोकतांत्रिक राजनैतिक व्यवस्था है। इसके अंतर्गत कई राजनीतिक गुट/दल कार्यरत होते हैं। भिन्न–भिन्न राजनीतिक दलों की विभिन्न विचारधाराएं शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित करती है। तथा विद्याशाखाओं के निर्माण में योगदान देते हैं।

राजनीतिक दलों की अपनी विचारधारा के अनुसार पाठ्यचर्या में कुछ परिवर्तन तथा नये विषयवस्तुओं का समावेशन किया जाता है। राजनीतिक दलों की विचारधारा तथा दृष्टिकोण भी विषय विद्याशाखा बनाने में तथा छात्रों को विकासावस्था की ओर ले जाने हेतु पूरक व पोषक वातावरण का निर्माण करते हैं।

देश की अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखते हुए देश की शिक्षा नीति तय होती है। शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु शिक्षा के हर स्तर विचार किया जाता है। यह आर्थिक विचार ज्ञान चुनाव के व्यावहारिकता से संबंध रखते हैं। शिक्षा संस्थाओं का क्रियान्वयन, उनकी भौतिक सुविधाएं, शिक्षा सामग्री, प्रशिक्षित अध्यापकों का निर्माण, भरती, उनका अध्यापकिय प्रभावी कार्य होने हेतु दी जानेवाली पूरक सुविधाएं इन सभी का संबंध अर्थशास्त्र से आता है। इस हेतु जो खर्च/व्यय होता है वह सभी स्तरों से किया जाता है। शैक्षिक संस्था खुद अपने स्तर पर, सामाजिक समुदाय अपने स्तर पर तथा सरकारें (केंद्र एवं राज्य) अपने स्तर पर व्यय का निर्धारण करते हैं।

बालकों की विषय शाखा एवं विषयों के चुनाव पर उनके परिवार की आर्थिक स्थिति पर भी निर्भर करता है। परिवारों का जीवनयापन, रहनसहन, खानपान, पहनावा इसके साथ–साथ परिवार के बालकों के शिक्षा हेतु भी व्यय करना पड़ता है। अगर आर्थिक स्थिति ठीकठाक है तो बालकों को अच्छी शिक्षा संस्थानों में दाखिला देकर प्रवेशित किया जाता है। मगर देश के हालातों से मजबूर, गरीब, दारिद्रय रेखाओं के नीचे जीने वाले लोग बालकों की शिक्षा पर उतना खर्च नहीं कर सकते। इसी कारण बालकों को परिवार की समस्याओं से भी जूंझना पड़ता है।

कई बार शिक्षा संस्थाओं को बालकों के प्रवेश शुल्कों पर निर्भर रहकर अपना गुजारा करना पड़ता है। मगर कई जगह राजनीतिक नेतृत्वों द्वारा चलाई जानेवाली संस्थाओं द्वारा शिक्षा के सभी स्तरों से वित्तीय संसाधनों को जुटाने के कारण शिक्षा आसान होती है।

केंद्र सरकार द्वारा शिक्षा विषयक नीति बनायी जाती है। इस हेतु पिछले शिक्षा नीतियों का जायजा लिया जाता है। कुछ प्रभावी परिवर्तन किये जाते है। यह कार्य प्रत्यक्ष सरकारी नियंत्रणानुसार किये जाते हैं। संवैधानिक अधिकार एवं संविधि कानूनों पर आधारित राज्य शिक्षा नीति के निदेशक तत्व सरकार के लिए सभी शिक्षा स्तरों अमल करने के बाध्य होते हैं। माध्यमिक शिक्षा के सही अमल हेतु मुदालियार आयोग द्वारा सिफारिशें तथा 1968 एवं 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अधीन रहकर भी माध्यमिक शिक्षा का विचार किया गया है।

इस तरह शिक्षाध्ययन में छात्रों को विषयशाखा एवं विषयों के चुनाव में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिप्रेक्ष्य अपनी भूमिका निभाते हैं।

विद्यालयी ज्ञान के चुनाव का समस्याकरण, परिवर्तन एवं सातत्यता हेतु चर्चा/समझ एवं तर्क तथा विवादों की पहचान

विद्याशाखाओं द्वारा उद्धृत ज्ञान का संबंध विद्यालयी अध्यापक एवं छात्रों से आता है। विषयशाखा, विषयज्ञान, पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें आदि सभी अमानवी घटकों के विचार करते वक्त शिक्षाविदों एवं अध्यापकों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस इकाई में हमने विद्यालयी शिक्षा की संरचना का अभ्यास करके विषय ज्ञान के चुनाव एवं प्रक्रिया की जानकारी पायी है। एक महत्वपूर्ण सोपान की तरफ ध्यान केंद्रित किया गया– जो माध्यमिक शिक्षा के छात्र हैं; उन्हें विषयों के चुनाव पर विचार–विमर्श किया गया तथा जो माध्यमिक शिक्षा पूर्ण कर चुके हैं, उन छात्रों को अपनी विषय शाखा चुनने का मार्गदर्शन भी विचाराधीन रहा।

स्वातंत्र्य पूर्व काल में मिशनरीयों ने शिक्षाविषयक जो कार्य किया, उस वक्त एक बड़ा वादविवाद चला। वह था की, भारतीयों को किस भाषा में से शिक्षा दी जाय? अंग्रेजी भाषा में से या फिर संस्कृत भाषा में से? यह वादविवाद चल ही रहा था तब 1813 में लॉर्ड बेंटिंग ने सनदीय कानून प्रसिद्ध किया। उस कानून के 43 अधिनियम में कहा गया था, "भारतीयों के शिक्षा हेतु हर साल एक लाख रुपयों का खर्च किया जाए।" इस विधान के तथा अन्य वादग्रस्त विषयों पर लॉर्ड मैकाले से कानून विषयक सलाह मांगी गयी। लॉर्ड मैकाले ने भारतीयों के शिक्षा विषयक समस्या पर जो सलाह दी, वही सलाह 'लॉर्ड मैकाले के मिनिट्स' के नाम से जाना जाता है।

टिप्पणी

माध्यमिक शिक्षा के विकास एवं प्रचार–प्रसार हेतु विभिन्न विवादों की पहचान हेतु ब्रिटिश काल के दौरान की शिक्षा का विस्तृत अभ्यास करेंगे।

ब्रिटिश काल के दौरान माध्यमिक शिक्षा; मैकाले का इतिवृत्त (1935)

लॉर्ड मैकाले ने 1913 के सनदीय कानूनों के 43वें अधिनियम/कलम का बारीकी से अभ्यास किया। उसके साथ ही भाषीय वादसंबंधी अपने विचार इस इतिवृत्त में जाहिर किये। मैकाले एक ब्रिटिश इतिहासकार, निबंधकार, वक्ता तथा एक्सिकयुटिव्ह कॉन्सिल के सलाहकार थे। उन्होंने काफी चर्चा एवं विचार–विमर्श के बाद लिखित विवरण दिया। यही है 'मैकाले का विवरणपत्र।' यह विवरणपत्र 7 मार्च, 1935 के दिन प्रसिद्ध किया गया।

मैकाले ने 'भारतीयों को अंग्रेजी भाषा में से शिक्षा दी जाय क्योंकि अंग्रेजी भाषा दुनिया की सर्वश्रेष्ठ भाषा है।' यह सलाह दी। उनके मतानुसार– 'अंग्रेजी शिक्षा लेने के कारण इस देश में एक ऐसा वर्ग निर्माण होगा जिसका रक्त एवं वर्ण भारतीय होगा मगर उसकी अभिरुचि, विचार, नैतिकता और विद्वता इन बारे में वह पूर्णतः अंग्रेजी बना हुआ होगा।' इस मिनिट के द्वारा यह उम्मीद की गई थी कि, 'भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी नैतिकता सिखाई जाय तथा ऐसे प्रशिक्षित भारतीय लोगों को भारत के ब्रिटिश राज के मजबूत स्तंभ बनाया जाय।'

इसके अलावा किए गए प्रावधान (Provisions)–

1. भारतीयों की शिक्षा पर खर्च किये जाने वाले एक लाख रुपयों का कैसे खर्च किया जाय; यह ब्रिटिश सरकार तय करेगी।
2. 'साहित्य' (Literature) इस शब्द का अर्थ केवल 'संस्कृत' और 'अरबी साहित्य' इतना ही नहीं बल्कि 'अंग्रेजी साहित्य' भी है।
3. 'विद्वान/विद्वतजन' इस शब्द का अर्थ केवल 'संस्कृत पंडित' एवं 'मुस्लिम मौलवि' इतना नहीं है, बल्कि अन्य भाषा को जानने वाले विद्वान भी समाविष्ट हैं।

उपर्युक्त स्पष्टीकरण के कारण भारतीय छात्रों को पारंपरिक शिक्षा देनी है या अंग्रेजी माध्यम में से भाषा व साहित्य की शिक्षा दी जाय? यह नया वाद शुरू हुआ। तब मैकाले ने अन्य कुछ टिप्पणियां भी निम्न तरह से दी।

- दुनिया की सर्वश्रेष्ठ भाषा अंग्रेजी भाषा है।
- राज्यकर्ताओं की तथा उच्चवाणियों की भाषा अंग्रेजी है। ब्रिटिशों को ही उच्च वार्णिय के रूप में संबोधित किया गया था।
- पूर्व देशों में व्यापार वृद्धि के लिए एवं सत्ता संपादन करने हेतु अंग्रेजी भाषा ही योग्य है।
- किसी भी व्यक्ति की प्रकृति को जो अच्छा है वही सिखाएं, जिव्हा/जीभ को क्या अच्छा लगता है? मतलब अभिरुचि का ख्याल रखने की जरूरत नहीं है।
- ब्रिटिशों को एक ऐसे वर्ग का निर्माण करना था जो की रक्त एवं वर्ण से संपूर्ण भारतीय हो परंतु संस्कृति, नीतिमूल्य, बुद्धि और अभिरुचि के बारे में अंग्रेजी होने चाहिए।

- युरोपीय साहित्य एवं विज्ञान इनका भारतीय समाज में प्रसार करना। यह ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य था।

इन सारी सलाहों एवं सिफारिशों से पता चल गया कि मैकाले का कहना क्या था? दृष्टिकोण क्या था? कुछ लोगों ने इस विवरणपत्र का स्वागत किया तो कुछ ने सटिकता व्यक्त की। भारतीयों के आरोग्य की चिंता ब्रिटिशों को है; उसी हिसाब से शिक्षा का प्रसार होगा/ किया जायेगा, अंग्रेजी भाषा में ही विद्‌वान तैयार करना, तथ भारतीय भाषाओं की कुचेष्टा करके भारतीय शिक्षा नीति निश्चित की गई। पौर्वात्य शिक्षा संस्थाएं बंद कर उस जगह पर अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय शुरू किये गये। इस तरह लॉर्ड मैकाले की यह सिफारिश को लॉर्ड बैंटिंग ने स्वीकार की और अंग्रेजी शिक्षा की नींव भारत में रची गयी। इस तरह ही अंग्रेजी माध्यम की पाठशालाएं स्थापन हुई। नौकरी के लालच से भारतीय लोग अंग्रेजी सिखने लगे। भारतीय भाषाओं की किताबों की जगह अंग्रेजी भाषिय किताबें बिकने लगी।

1852 तक भारत में माध्यमिक शिक्षा हेतु 52 पाठशालाओं का निर्माण हो चुका था। मैकाले के मिनिट्स ने एक सीधी शिक्षा नीति तथा शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित किया। अंग्रेजी पाठशालाओं की स्थापना, संस्कृत पाठशाला एवं अरबी मदरसों को बंद किया। स्थानीय भाषाओं की उपेक्षा की। भारतीय संस्कृति एवं धर्म का विरोध किया। जन शिक्षा का त्याग किया।

उस काल में कई विद्वत जनों ने इस पर सटीकता जाहिर की, मगर आज हमें दिखाई देता है कि, भारत की युवा पीढ़ी ब्रिटिश, अमेरिका, कनाडा, जर्मन, फ्रांस तथा ऑस्ट्रेलिया इन देशों में स्थलांतरण करते हैं; कर रहे हैं। भारत का आज का समाज मन, महाविद्यालय तथा विद्यापीठों की स्थिति का जायजा लेकर निर्णय लेता है। मैकाले का उस समय विचार कितना प्रभावी था यह आज हमें प्रतीत हो रहा है। अंग्रेजी शिक्षा का महत्व आज समझ में आ रहा है।

विद्यालयी पाठ्यचर्या योजनाएं/रूपरेखा/ढांचा (1975, 1988, 2000, 2005) नई शिक्षा नीति 2019–2022

पूर्वपीठिका/परिचय– पूर्व प्रथमिक, प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक, महाविद्यालयीन शिक्षा के पाठ्यचर्यो की पाठ्यक्रम रूपरेखा कोठारी आयोग ने सुझाए हुए सिफारिशों के अनुसार 10+2+3 यह था। पाठ्यक्रम विकसन यह एक निरंतर चलनेवाली प्रक्रिया है। जिसमें राष्ट्रीय लक्ष्य, सामाजिक आकांक्षाएं तथा विद्याशाखाओं के विषय ज्ञान को ध्यान में रखना पड़ता है। उस हिसाब से विद्यालयीन शिक्षा के पाठ्यक्रम को विकसित करने हेतु प्रयास हुए। और कोठारी आयोग की सुझायी 10+2+3 इस रूपरेखा को 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति द्वारा मंजूरी दी गई। इस रूपरेखा को शिक्षा का समान तत्व मानकर सम्पूर्ण देश में अमल किया गया।

1975 की विद्यालयी पाठ्यक्रम योजना नीति– इस पाठ्यक्रम रूपरेखा हेतु राष्ट्रीय शैक्षिक योजना 1968 का परिचय करना आवश्यक है।

परिचय– 4 एप्रिल 1967 के दिन शिक्षा की राष्ट्रीय नीति तय करने के लिए कोठारी आयोग की सिफारिश के अनुसार डॉ. श्री त्रिगुण सेन की अध्यक्षता के अंतर्गत

समिति का गठन हुआ। इस समिति ने राष्ट्रीय शिक्षा की नीति की रूपरेखा तैयार कर कुछ मार्गदर्शक तत्वों का निर्धारण किया। वे मार्गदर्शक तत्व–

1. मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा,
2. शिक्षा का दर्जा/स्तर, वेतनमान एवं शिक्षा,
3. भाषाओं का विकास,
4. शैक्षिक अवसरों की समानता,
5. प्रज्ञावंत बालकों का शोध,
6. कार्यानुभव एवं राष्ट्रीय सेवा,
7. विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान,
8. कृषि एवं उद्योगों का प्रशिक्षण,
9. पुस्तक निर्मिती,
10. परीक्षाएं,
11. माध्यमिक एवं महाविद्यालयीन शिक्षा पर जोर,
12. अंशकालीन शिक्षा एवं पत्राचार शिक्षा,
13. साक्षरता एवं प्रौढ शिक्षा का प्रसार व प्रचार,
14. खेल एवं क्रीड़ा विकास,
15. अल्पसंख्यकों की शिक्षा,
16. शैक्षिक संरचना का विकास।

उपर्युक्त 16 मार्गदर्शक तत्वों के आधार पर 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति को गति देने का कार्य हुआ। इन सिफारिशों को पहली बार दस वर्षीय पाठशाला के लिए पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। (The Curriculum for Ten Year School Framework) जिसे एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा 1978 में विकसित किया गया। 1968 की शिक्षा नीति पर आधारित यह फ्रेमवर्क 1975 में जाहिर (Declare) हुई मगर प्रत्यक्ष रूप उसे 1978 की Framework में रूपांतरण हुआ।

इस तरह 1978 के बाद 10 वर्ष में नई शिक्षा नीति बनाई जाने की योजना तय हुई। 1988 की राष्ट्रीय विद्यालयी पाठ्यचर्या बनने से पहले राष्ट्रीय स्तर पर नई नीति की 1986 की आवश्यकता आन पड़ी।

1988 की विद्यालयी पाठ्यक्रम योजना/नीति

1968 की शिक्षा नीति की कुछ सिफारिशें 1978 की शिक्षा नीति में नकारी गई। वह सिफारिशें थी–

(क) शैक्षिक विकास के प्राधान्यक्रम में बदलाव,

(ख) उच्च माध्यमिक व विद्यापीठ स्तर पर चुनकर प्रवेश निकष,

(ग) मुख्य विश्वविद्यालयों की स्थापना,

(घ) पाठशालों को चुनकर सुधार करना,

टिप्पणी

(ङ) दो स्तरों पर पाठशाला पाठ्यक्रम,

(च) नई शैक्षिक रूपरेखा का संयोजन तथा भारतीय शिक्षा सेवा संघ स्थापना

(छ) राज्यों की अनुलेखों में शिक्षा गणना।

1977 में राजकीय स्थित्यंतर (बदलाव) आये। जनता पक्ष द्वारा 10वीं तक की शिक्षा पुनर–अवलोकन हेतु ईश्वर भाई पटेल समिति की स्थापना हुई। और उच्च माध्यमिक शिक्षा हेतु आदिशेषय्या समिति की स्थापना हुई। उनके अनुसार परीक्षण हुआ और उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा का मसौदा 1979 में दिया। परंतु राजकीय अस्थिरता के कारण वह विचाराधीन नहीं हुआ। भारत देश की जनसंख्या बढ़ रही थी, वैसी निरक्षरता भी चरम सीमा पर थी। शिक्षा व्यवस्था का पुनरवलोकन तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी के नेतृत्व में किया गया। 1985 में राष्ट्र के एक संदेश में उन्होंने नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की। जो राष्ट्रीय मनुष्य बल विकास मंत्रालय (National Human Resources Development Ministry) ने 1986 के राष्ट्रीय शिक्षा नीति के रूप में घोषित किया। यही शिक्षा के पुनर्गठन के रूप में भी जाना जाता है। इसी पार्श्वभूमि में द्वितीय प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 1988 का निर्मित रूप है/माना जाता है। इस रूपरेखा ने मूल्यांकन के सुझाव दिये।

1986 की इस राष्ट्रीय विद्यालयी पाठ्यक्रम रूपरेखा में 10 आधारभूत तत्वों का समावेश किया गया। वे मूल आधारभूत तत्व हैं–

1. भारतीय स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास।
2. भारतीय संविधानात्मक जिम्मेदारियां।
3. राष्ट्रीय अस्मिता पालन हेतु आवश्यक आशय।
4. भारत की सामयिक, सांस्कृतिक विरासत।
5. समानतावाद, लोकतंत्र एवं धर्म निरपेक्षता।
6. स्त्री–पुरुष समानता।
7. सामाजिक समस्या एवं अड़चनों का निर्मूलन।
8. पर्यावरण का संरक्षण।
9. छोटे परिवार का आदर्श।
10. वैज्ञानिक मनोभावों का जतन।

1988 के राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा की विशेषताएं

1. लचीला एवं उपक्रमशील पाठ्यक्रम,
2. बालक केंद्रि अध्यापन,
3. बालकों का सर्वकष विकास,
4. किमान/कम से कम न्यूनतम अध्ययन क्षमताओं का विकास (M.L.A.D)
5. मूल्यों की शिक्षा,
6. कार्यानुभव,
7. क्रीड़ा एवं शारीरिक शिक्षा,

8. मूल्यांकन प्रणाली एवं परीक्षाओं में सुधार,
9. अध्यापकों का प्रशिक्षण
10. प्राथमिक एवं माध्यमिक पाठशाला सुविधाएं एवं सहुलियतें,
11. सेवाभावी संस्थाओं (NGOs) की सहभागिता।

इस रूपरेखा ने मूल्यांकन के बदलाव के सुझाव दिये तथा पाठशालाओं के सभी स्तरों में सिखने के न्यूनतम स्तर के अध्ययन को परिभाषित किया।

सन् 2000 की तीसरी पाठ्यचर्या की रूपरेखा

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT), दिल्ली इस संस्था ने 1986 के राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा की जो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या तैयार की थी– वह राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 1988 को "राष्ट्रीय पाठ्यचर्या : एक रूपरेखा" इस नाम से तैयार हुआ। 1992 से लेकर आगे इस राष्ट्रीय पाठ्यचर्याओं की शालेय शिक्षा में अमल करना शुरू हुआ।

9वीं पंचवार्षिक योजना के (1997–2002) विवरण में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में परिवर्तन करने की सूचना की गई, तद्अनुसार NCERT द्वारा पाठ्यक्रम का विकास करने की जिम्मेदारी स्वीकार कर जनवरी 2000 के नये तैयार किये गये शालेय राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की योजना हुई।

देश के कई शिक्षाविद्, अध्यापक, विश्वविद्यालय, अनुसंधान संस्थाएं, प्रशासक इन सबने अपनी प्रतिक्रिया देकर योग्य बदलाव सुझाकर नवंबर 2000 में सरकार को प्रदर्शित/सादर किया गया। वही NCERT ने 'शालेय शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा' नामक पुस्तिका प्रकाशित की। इस रूपरेखा की समिति के अध्यक्ष थे– प्रो. जगमोहन सिंह रजपूत।

राष्ट्रीय शालेय शिक्षा पाठ्यचर्या रूपरेखा (2000) के महत्वपूर्ण घटक

1. संदर्भ एवं विचारार्थ तथ्य।
2. प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम की रचना।
3. उच्च माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम की रचना।
4. मूल्यांकन।
5. कार्यपद्धति का आयोजन।

इन महत्वपूर्ण घटकों के आधार से पाठ्यचर्या के तीन आधार स्तंभ माने गये (i) प्रासंगिकता, (ii) समानता (iii) उत्कृष्टता।

राष्ट्रीय विद्यालयी पाठ्यचर्या में सम्मिलित पाठ्य विषय आशय घटक

1. एकसंघ समाज हेतु शिक्षा
   - सभी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का समान अवसर। उदाहरण– लड़कियों की शिक्षा, विशेष बालकों के लिए शिक्षा, सुविधाओं से वंचित लोग (अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़े वर्ग तथा सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से) वंचित घटकों की शिक्षा, प्रज्ञावंतों की शिक्षा।

2. राष्ट्रीय अस्मिता को जगाना, सांस्कृतिक घटकों का जतना।
3. स्वदेशी ज्ञान तथा मानवता हेतु भारतीय संस्कृति का योगदान।
4. जागतिकीकरण के परिणामों का सामना करना।
5. जानकारी एवं यातायात तंत्रविज्ञान का आवाहन झेलना।
6. शिक्षा व जीवन मूल्यों का परस्पर संबंध जोड़ना।
7. मूल्य संवर्धन हेतु शिक्षा।
8. प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण।
9. पर्यायी मुक्त पाठशाला व्यवस्था।
10. पाठ्यचर्या में कुछ विषयों को अनिवार्य करने हेतु एकात्मिकरण किया गया। वे विषय थे–

    साक्षरता, पर्यावरण शिक्षण, कुटुंब/परिवार पद्धति, समूह शिक्षा, उपभोक्ता/ग्राहक शिक्षा, पर्यटन शिक्षा, एड्स शिक्षा, मानवी अधिकार शिक्षा, लोकसंख्या शिक्षा।
11. औद्योगिक कार्यजगत तथा शिक्षा का संबंध जोड़ना।
12. पाठ्यक्रम का बोझ/वजन कम करना।
13. छात्रों की ओर जानकारी का एक स्रोत/मार्ग हे इस दृष्टि से देखा जाय।
14. ज्ञान, भावना एवं कृति इन में सामंजस्य निर्माण करना।
15. सांस्कृतिक वैशिष्टों का अंतर्भाव शिक्षाशास्त्र में होने के हेतु प्रयास।
16. सौंदर्यविषयक संवेदनाओं का विकास।
17. सातत्यपूर्ण एवं सर्वकष व व्यापक मूल्यांकन योजना।
18. पाठ्यक्रम विकसन में अध्यापकों का सहयोग।

इस पाठ्यचर्या में कुछ नये क्षेत्रों की पहचान करायी गई। जिसमें समाविष्ट थे–

- मूल्य शिक्षा
- मूलभूत/मूल घटक (core points)
- एतद्देशीय पाठ्यक्रम– भारतीय परंपरा, लोकसंस्कृति, लोकगीत, पारंपरिक नृत्य, वेशभूषा, वाक्य आदि।
- कम से कम अध्ययन क्षमता (M.L.A.)– बाल केंद्रित शिक्षा, कृतिशील अध्यापन, स्वयं अध्ययन, सातत्यपूर्ण व्यापक मूल्यांकन, निदानात्मक एवं उपचारात्मक अध्यापन, कृति अनुसंधान का उपयोजन।
- शिक्षा के सर्वसाधारण उद्देश्यों का निर्धारण।
- छात्रों की पार्श्वभूमिका अभ्यास।
- विषय योजना/अध्ययन योजना (सभी स्तरों पर)
- विविध स्तरों पर पाठ्यक्रम के क्षेत्र–

  (क) भाषा, (ख) त्रिभाषा सूत्र, (ग) संस्कृत, (घ) हिन्दी, (ङ) अन्य देशी भाषा/परकिय भाषा, (च) गणित, (छ) विज्ञान एवं तंत्रज्ञान, (ज) सामाजिक शास्त्र,

टिप्पणी

(झ) आरोग्यदायी उत्पादक जीवन कला, (ञ) अध्यापन योजनाएं, (ट) अध्यापन का माध्यम, (ठ) अध्यापन कालावधी, (ड) मुक्त अध्यापन प्रणाली।

- उच्च माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम रचना
- मूल्यांकन
- कार्य–प्रणाली का व्यवस्थापन
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2000 अमल होते कई नई चीजों का समावेश किया गया।

विद्यालयी पाठ्यचर्या योजना रूपरेखा (2005)

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 का उद्धरण गुरुदेव रविन्द्रनाथ टैगोर के निबंध 'सभ्यता और प्रगति' से हुआ है। जिसके द्वारा उन्होंने "बालकों के सृजनशीलता एवं उदार आनंद बालकों की पूंजी" मानी जाने की योजना दी है।

राष्ट्रीय शिक्षा रूपरेखा 2005 के कुछ मार्गदर्शक सिद्धान्त थे–

1. ज्ञान को पाठशाला के बाहरी जीवन से जोड़ा जाय।
2. अध्ययन में रटन्त प्रणाली ना हो।
3. पाठ्य विषयों के आशय की चर्चा केवल पाठ्यपुस्तक केन्द्रित न रहे।
4. कक्षा के विभिन्न कक्षों की गतिविधियों से जोड़कर एवं पाठ्यक्रम को लचीला बनाया जाय।
5. अध्यापन द्वारा राष्ट्रीय मूल्यों को सिखाकर छात्रों को आदर्श नागरिक बनाया जाय। राष्ट्रीय महत्व के बिन्दुओं को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाय।

इस रूपरेखा को पांच भागों में विभाजित किया गया–

1. शिक्षा परिप्रेक्ष्य।
2. अध्ययन का ज्ञान।
3. पाठ्य आशय की चर्चा के क्षेत्र, पाठशाला की अवस्थाएं एवं आकलन।
4. विद्यालय एवं कक्षा का वातावरण।
5. व्यवस्थागत सुधार।

उपरोक्त मार्गदर्शक सिद्धांत एवं वर्गीकृत भागों के द्वारा एन.सी.एफ. 2005 में निम्न पाठ्यक्रम क्षेत्रों को समावेशित किया है।

(i) भाषा, (ii) गणित, (iii) विज्ञान, (iv) सामाजिक विज्ञान, (v) कार्य–कौशल्य, (vi) कला, (vii) शांति, (viii) स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, (ix) आवास और अधिगम।

2005 की पाठ्यचर्या की विशेषताएं/सिफारिशें

1. प्राथमिक स्तर पर भाषा का माध्यम मातृभाषा में हों।
2. शिक्षा सूत्र 'ज्ञात से अज्ञात की ओर, मूर्त से अमूर्त की ओर' इनका अधिक प्रयोग हो।
3. सूचना को ज्ञान नहीं माना जाना चाहिए।

टिप्पणी

4. विशाल पाठ्यक्रम एवं मोटी किताबें ना हो। वह शिक्षा प्रणाली की असफलता का प्रतीक माने गये।
5. मूल्यों की शिक्षा/उपदेशों द्वारा नहीं बल्कि उपयोजन द्वारा दी जाय।
6. छात्रों की ओर से निपुणता की अपेक्षा न करने की सलाह अभिभावकों को दी गई।
7. छात्रों को पाठशाला के बाहर के जीवन से तनावमुक्त वातावरण प्रदान करना।
8. जो छात्र तर्क पूर्ण बहस के द्वारा अपने मौलिक विचार शिक्षा में प्रस्तुत करता है, उन्हें अच्छी धारणाएं देकर, अच्छे छात्रों का दर्जा दिया जाय।
9. सामूहिक खेलों के बाद संघ भावना विकसित रहे एवं वही खेल के बिना भी बने रहने की सलाह दी जाय।
10. पुस्तकालयों से बालकों को स्वयं किताबें चुनने का अवसर दिया जाय।
11. सांस्कृतिक कार्यक्रमों में मनोरंजन के साथ–साथ सौंदर्यानुभूति को बढ़ावा दिया जाय।
12. अध्यापकों के विकास हेतु शैक्षिक संसाधन/स्रोत व नवाचार आदि समय पर सुविधाएं दी जाय।
13. शिक्षा अधिगम परिस्थितियों में मातृभाषा का प्रयोग हो।
14. सजा/दंड (Fine) एवं पुरस्कार (बक्षिश) की भावना को सीमित रखा जाय।
15. समुदायों को मानवीय संसाधन के रूप में प्रयुक्त होने के अवसर दिये जाय।
16. छात्रों, अध्यापकों को मौलिक लेखन करने हेतु कल्पना विकास कृति को प्रोत्साहन दिया जाय।
17. सह शैक्षिक गतिविधियों में छात्रों को अभिभावकों से भी जोड़ा जाय।
18. पाठ्यक्रम का निर्धारण मानसिक स्तर एवं योग्यता के अनुसार हो।
19. शांति शिक्षा को बढ़ावा– महिलाओं के प्रति आदर एवं जिम्मेदारी का दृष्टिकोण विकसित करने की कार्यक्रम का आयोजन करना।
20. छात्रों के समावेशी वातावरण का निर्मिति कर बालकों का सर्वंकष विकास करने वाली पाठ्यचर्या/पाठ्यक्रम हो।

2005 के शिक्षा रूपरेखा ने शिक्षा प्रणाली को कई नये आयाम दिये। जिसमें शिक्षा के ज्ञान को, सूचना के सही अर्थ को समझा और सांझा किया गया। छात्रों की अध्ययन गति पर ध्यान, छात्रों की भाषा को समझने का प्रयास अधिकतम होने पर जोर दिया गया। अध्यापक की भूमिका उत्प्रेरक माना गया। बालकों के आकलन का दैनिक गतिविधियों से जोड़ा गया एवं प्राथमिक स्तर पर भाषा का प्रयोग/माध्यम मातृभाषा ही हो, इस पर जोर दिया गया।

विद्यालयी विषयों के ज्ञान की प्रक्रिया हेतु विभिन्न कार्य तथा विषय ज्ञान के चुनाव, निकषों के बारे में अध्ययन हमने किया। ज्ञान चुनाव का परिवर्तन अभ्यासने हेतु स्वातंत्र्योत्तर काल में बनायी गयी राष्ट्रीय शिक्षा रूपरेखाएं (National Curriculum

Framework) भी अध्ययन की। वर्ष 2005 के बाद 2019 से नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का उद्घोषण हो चुका है। जिसका अमल शिक्षा में 2022 से होने वाला है। "विद्याशाखाएं एवं विषयों की समझ/आकलन" इस बी.एड. अभ्यासक्रम के पाठ्यक्रम में इसका अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए नई 'राष्ट्रीय शैक्षिक योजना 2020' की अल्प जानकारी एवं विशेषताओं का अध्ययन करेंगे क्योंकि 35 सालों बाद शिक्षा में बड़े परिवर्तन होने वाले हैं। जिनको अपनाना प्राप्त परिस्थिति में मुश्किल तो लग रहे हैं, मगर अपनाने से शिक्षा क्षेत्र में पुननिर्माण होकर शैक्षिक, सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रों पर भी प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए इस इकाई में National Education Policy 2020 - Major Transformational Reforms in Education Sector का जायजा लिया जा रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति/शैक्षिक योजना 2019–2020

सारांश

केंद्रिय मंत्रिमंडल द्वारा 29 जुलाई, 2020 के दिन राष्ट्रीय शिक्षा योजना को मान्यता दी गई। शिक्षा व्यवस्था में समूल तथा समग्र परिवर्तन लाने समक्ष अनेक मुद्दों को इस योजना में शामिल किया है। यह योजना शासन की भूमिका एवं कार्यक्रम की रूपरेखा है। यह योजना तत्कालीन आवश्यकताओं पर उपाय देगी।

इस योजना के अत्यंत महत्वपूर्ण घटक–

1. नया नामकरण– केंद्रिय मनुष्य बल विकास मंत्रालय का नामकरण/नाम बदल कर अब 'शिक्षा मंत्रालय' कर दिया गया है।
2. भारतीय उच्च शिक्षा आयोग (HECI) की स्थापना।
3. लचीली योजना बनायी गयी है।
4. 'राष्ट्रीय' शिक्षा विषयक योजना है।
5. भारतीय भाषाओं का अध्ययन अध्यापन अनिवार्य किया गया है।
6. राष्ट्रीय अनुसंधान न्यास (N.R.F.) स्थापना हुई है।
7. व्यावसायिक शिक्षा हेतु भरसक प्रयास।
8. पूर्ण स्वातंत्र्य शालेय, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा संस्थाओं को पूर्ण स्वातंत्र्य का तत्व अमल किया जाएगा।
9. अध्यापकों का अध्यापकत्व पुनप्रस्थापित कर उन्हें शिक्षा व्यवसाय में अधिकाधिक लोगों को, युवा वर्गों को सहभाग लेने हेतु शिक्षक प्रशिक्षण क्षेत्र में परिवर्तन लाना है।
10. अध्यापन में छात्र केंद्रित तथा बाल केंद्रित प्रणाली लानी हैं।
11. भारत में सदैव शासन मुक्त शिक्षा व्यवस्था लाने हेतु समाज पोषण का मार्गदर्शन तत्व अमल किया जाएगा।
12. वित्त विपुलता/अर्थ सहाय्य– व्यावसायिक संस्थाओं के कानूनों में सुधार लाकर कार्पोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी के माध्यम से शिक्षा में योगदान करने की अनिवार्यता लायी गयी है।

13. जागतिकीकरण (Globalisation)– भारतीय ज्ञान का पहले से ही क्षेत्र विस्तारित हो चुका है; दुनिया के सर्वोत्तम 100 विद्यापीठों का कैम्पस खोलने की मंजूरी दी गई है।
14. समग्र पाठ्यक्रम– उच्च शालेय स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक विशेष विषयों के साथ आधे गुणों का समग्र पाठ्यक्रम (Holistic Course) अनिवार्य किया गया है।
15. भारत बोध पाठ्यक्रम– 'भारत का ज्ञान' इस के अंतर्गत सांस्कृतिक, आध्यात्मिक ज्ञान का पाठ्यक्रम भी नई शिक्षा योजना में है।
16. पारदर्शक गुणवत्ता का व्यवस्थापन– गुणवत्ता निर्धारण हेतु अलग–अलग व्यावसायिक शिक्षाक्रमों को नियमन करनेवाली संस्थाओं की मंजूरी।
17. उद्योजकता में समावेश– उद्योगों का आर्थिक योगदान के साथ शैक्षिक स्वरूप में भी सहभाग होने की प्रक्रिया प्रभावी करने का प्रयास जारी है।
18. कला एवं सामाजिक विषयों की राष्ट्रीय स्तर पर संस्थाएं– सर्वंकष एवं बहुआयामी शिक्षा हेतु विद्याशाखीय शिक्षा व अनुसंधान विद्यापीठ की स्थापना की गई है।
19. भारत केंद्रित– 'भारत' देश को सभी स्तरों पर केंद्रिभूत रखा गया है। सभी विषयों की विषयाशाखाओं के संदर्भिकरण हेतु यह आवश्यकता है।
20. पारंपरिक वैद्यकीय प्रणाली– योग, आयुर्वेद इनके लिए पारंपरिक वैदयकिय प्रणाली का 'आयुष' का भी वैद्यकीय शिक्षा में सभी स्तरों पर प्रयोग किया जाएगा।

    इन सभी घटकों का अगर योग्य पद्धतियों से अमल किया गया तो ही मेकाले मुक्त शिक्षा व्यवस्था का निर्माण होगा।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के अपेक्षित शिक्षा परिवर्तनीय स्तर

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना–2019 में भारत को केंद्र स्थान में मानकर ऐसी शिक्षा प्रणाली को कल्पित किया जा रहा है जो सबको उच्च दर्जा की शिक्षा प्रदान कर अपने राष्ट्र को सात्यता से न्याय व चैतन्यमय ज्ञानी समाज के रूप में परिवर्तित करने का योगदान दे सकेगी।

इस योजना में विचाराधीन महत्वपूर्ण स्तर–

1. शालेय स्तर (High School)
2. उच्च शिक्षा (Higher Education)
3. अध्यापक शिक्षण (Teacher Education)
4. पेशाविषयक / व्यावसायिक शिक्षा (Professional Education)
5. राष्ट्रीय अनुसंधान न्यास (National Research Foundation)
6. शिक्षा में तंत्रविज्ञान (Technology in Education)
7. प्रौढ़ शिक्षा (Adult Education)
8. भारतीय भाषाओं को चालना (Appreciation for Indian Language)
9. शिक्षा हेतु आर्थिक व्यवस्था (Financial Management for Education)

10. राष्ट्रीय शिक्षा आयोग समिति (Committee for NPE)
11. भविष्यकालीन नियोजन (Planning for Future)
12. शिक्षा हेतु अर्थ सहाय्य (Financial Help for Education)

35 सालों बाद शिक्षा की योजना बदलने वाली हैं। यही इस नये शैक्षिक योजना की विशेषताएं भी है। इसे 14 वर्ष आयु के विद्यार्थी शिक्षा अधिकार के कक्ष में आये हैं, इसके पहले यह आयु गट 6 से 14 वर्ष का था।

स्तर अनुसार बदलाव

- 5 वर्ष मूलभूत शिक्षा (Fundamental Education) आयु 4 से आयु आठ तक।
- 3 वर्ष की प्रारंभिक पाठशाला (Preparatory Education) आयु से 9 से 11वे वर्ष तक।
- 3 वर्ष की माध्यमिक शिक्षा (Middle Education) आयु 12 से 14वे वर्ष तक।
- 4 वर्ष की माध्यमिक उच्च माध्यमिक शिक्षा (Secondary and Higher Education) आयु 15 से 18 वर्ष तक।

ऐसे ही 5+3+3+4 की शिक्षा पैटर्न तय की गयी है। इस पैटने के महत्वपूर्ण विशेषताएं नीचे दी गई है।

1. बोर्ड वर्ष (Board Yr) यह 12वीं कक्षा में होगा।
2. महाविद्यालयी शिक्षा 4 वर्ष की होगी।
3. एम.फिल यह शिक्षाक्रम/कोर्स पूर्णतः बंद किया जाएगा।
4. 1ली से 5वी तक के छात्रों को केवल मातृभाषा, स्थानिक भाषा और राष्ट्रीय भाषा सिखाई जाएगी। उर्वरित विषय भी अगर अंग्रेजी रहा/बच गया तो वह सिर्फ विषय के तौर पर सिखाया जाएगा न कि भाषा अध्ययन के तौर पर।
5. बोर्ड की परीक्षा को कम महत्व रहेगा।
6. 9वीं से 12वीं तक सत्र परीक्षाएं होंगी (Semester Examination)
7. महाविद्यालयी शिक्षा में पदवी/स्नातक अध्ययन 3 व 4 सालों की होगी। मतलब स्नातक अभ्यास के पहले वर्ष में प्रमाणपत्र मिलेगा, दूसरे वर्ष में पदविका मिलेगी तथा तीसरे वर्ष स्नातक यानी डिग्री (Graduation) पदवी मिलेगी।
8. जो छात्र अनुसंधान हेतु उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहेंगे, उनके लिए 4 वर्ष का डिग्री प्रोग्राम होगा तथा जो छात्र पदवी/डिग्री के बाद नौकरी करना चाहेंगे उनके लिए 3 सालों का डिग्री प्रोग्राम होगा।
9. छात्रों को अब एम.फिल. करना नहीं पड़ेगा। मतलब अनुसंधान करनेवालों के लिए पदवी/स्नातक और अधिक 1 वर्ष का मास्टर अभ्यासक्रम ऐसी 4 सालों की डिग्री करनी होंगी। इसके बाद वे सीधे पीएच.डी. (Ph.D) कर सकेंगे।
10. छात्रों को अन्य कोर्स भी करते आएंगे। उच्च शिक्षा में (Higher Education) 2035 तक स्कूल में पढ़नेवालों की संख्या 50% तक बढ़ाने का उद्देश्य है।
11. दूसरी ओर अगर किसी छात्र को एक कोर्स के मध्यंतर में आकर दूसरा कोर्स करने की इच्छा हुई तो मर्यादित काल के लिए वह पहले कोर्स से बाहर आकर,

ब्रेक लेकर दूसरा कोर्स पूरा कर सकता है। दूसरा कोर्स पूरा कर लेने पर फिर से पहले कोर्स को प्रवेशित होकर वो भी पूरा कर सकता है।

12. उच्च शिक्षा में सुधार– श्रेणिबद्ध शैक्षिक (Graded Academic) प्रशासकीय (Administrative), आर्थिक स्वायत्ता (Financial Autonomy) समाविष्ट की गई है।
13. ई–कोर्सेस–प्रादेशिक एवं स्थानीय भाषाओं में ई–कोर्सेस शुरू होंगे।
14. आभासी प्रयोगशालाएं (Virtual Laboratories) विकसन किया जाएगा।
15. राष्ट्रीय शैक्षिक विज्ञान मंच National Educational Technological Forum (NEFT) शुरू होंगे।
16. सभी सरकारी (Government) एवं निजी (Private) मान्यता प्राप्त विद्यार्थियों के लिए अभिमत विद्यापीठों (Deemed University) की नियमावली एक समान होगी।
17. बहुविद्याशाखीय शिक्षाक्रम (Multidisciplinary Courses)– अलग–अलग विषयों को एकत्रित करके उसका एक विषय बनाकर आंतरविद्याशाखीय घटकों द्वारा अध्ययन करना संभव होगा। इसमें वरिष्ठ (Major) और निम्न (Minor) ऐसे विषयों का विभाजन होगा।
18. अर्थ/वित्त व्यवस्था या अन्य कारणों से होनेवाला ड्रॉप आउट रेट कम होगा। छात्रों को इसकी व्यवस्था विविध स्तरों पर कर दी जाएगी।
19. जिन छात्रों को जो विषय सीखना है; वह सिखने का अवसर दिया जाएगा।
20. बहुभाषिक शिक्षा– छात्रों को अध्यापन करते वक्त अध्यापकों ने केवल एक ही भाषा में अध्यापन करने से अच्छा होगा की प्रादेशिक भाषा का भी सुयोग्य उपयोग करें।
21. लॉ (Law) एवं वैदयकिय (Medical) शिक्षा छोड़कर अन्य सभी उच्च शिक्षा के एक ही छत के नीचे लाये जाएंगे।
22. शिक्षा में निवेश– शिक्षा में निवेश (Investment) यह जीडीपी के छः प्रतिशत तक करेंगे। फिलहाल यह प्रमाण 4.43 प्रतिशत है।
23. छात्रों को प्रगति पत्रक (Progress Report Card) बदलेगा।
24. मूल्यांकन– अध्यापकों के साथ–साथ छात्र भी स्वयं मूल्यांकन करेंगे।
25. सभी महाविद्यालयों के लिए एक ही सामयिक पात्रता प्रवेश परीक्षा (CET–Common Entrance Test/NETE– National Eligibility Testing Exam) होगी।

    उपर्युक्त सभी विशेषताओं एवं नियमों को ध्यान में रखकर शैक्षिक सत्र शुरू किये जाएंगे।

    (प्रो. भुपेश एस शुक्ल– शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के सौजन्य से)

स्वतंत्र्योत्तर काल की सभी शिक्षा नीतियों, रूपरेखाओं (Framework) का अध्ययन किया है। आनेवाली पीढ़ी के छात्र एवं नये अध्यापकों की पीढ़ी को भी सभी राष्ट्रीय शिक्षा आयोग/पाठ्यचर्या योजना का अध्ययन इससे आसान होगा तथा उनकी तुलनात्मक अध्ययन से भी ज्ञान में अभिवृद्धि होने में मदद मिलेगी।

अपनी प्रगति जांचिए

7. भारत में माध्यमिक शिक्षा का विकास कितने चरणों में हुआ है?
   (क) दो (ख) तीन
   (ग) चार (घ) पांच
8. विद्यालयी शिक्षा के द्वारा किए जाने वाले कार्यों में समावेशित है–
   (क) सांस्कृतिक आदर्शों को सुरक्षित रखने का कार्य।
   (ख) बौद्धिक प्रशिक्षण हेतु यथार्थ।
   (ग) स्वास्थ्य एवं स्वच्छता हेतु कार्य।
   (घ) उपर्युक्त सभी

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ग)
3. (ख)
4. (घ)
5. (क)
6. (ग)
7. (क)
8. (घ)

2.7 सारांश

प्रत्येक विद्याशाखा में से ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता किसी भी एक व्यक्ति के पास नहीं होती, क्योंकि विद्याशाखाओं का स्वरूप ही विशिष्ट होता है। ऐसे समय में विद्याशाखाओं का कौन–सा मूलभूत ज्ञान छात्रों को देना है? कौन–से आयु में देना है? उसके आधार से छात्रों में कौन–कौन से अपेक्षित परिवर्तन, अभिरुचि, अभिवृत्तियां बदलनी चाहिए? इस संदर्भ में निर्णय लिये जाते हैं।

अभ्यासक्रम के अनुसार पाठ्यक्रम तैयार किये जाते है। इस पाठ्यक्रम में प्रत्येक आशय का अनुलेखन किया जाता है। यद्यपि समयानुसार बदलती परिस्थितियों के सहयोग, अनुभव लेकर उचित परिवर्तन के साथ आशय का विस्तारित समावेश पाठ्यपुस्तकों में किया जाता है। अभ्यासक्रमों पर पड़ने वाले अलग–अलग संप्रदायों का प्रभाव भी सैद्धांतिक आधार के द्वारा अपेक्षित है। निसर्गवाद, आदर्शवाद, कार्यवाद, वास्तववाद ऐसे पुराने सैद्धांतिक आधारों के साथ उद्योन्मुख तात्विक संप्रदायों का प्रभाव भी पड़ता है।

टिप्पणी

अभ्यासक्रम के द्वारा पाठ्यक्रम नियोजन का मुख्य उद्देश्य होता है– 'मानवी विकासावस्था' मानव का शारीरिक, भावनिक, बौद्धिक विकास यह धीरे–धीरे सीढ़ियों द्वारा होता है।

विद्याशाखाएं बहुत ही विस्तृत होती है तथा उनका वर्गीकरण भी भिन्न होता है। व्यावहारिक रूप में भिन्न–भिन्न विद्याशाखाएं एक–दूसरे से अंतर्मिश्रित भी होता है। इसीलिए विद्याशाखाएं विषयों के एकत्रिकरण का संकल्पनात्मक विवेचन करना आवश्यक बनता है।

विद्याशाखाओं को संरचनात्मक रूप में प्रस्तुति यह अपने आप में एक कला है। अध्यापकों द्वारा अपने विषय का प्रदर्शन, विषय ज्ञान का स्वरूप पूर्ण विश्लेषण के साथ छात्रों के सामने करते आना भी अपने आप में एक कलात्मकता मानी जाती है।

विद्याशाखीय संरचना में संकल्पना, तत्व यह सब श्रेणीबद्ध रचना के रूप में होते है। यह रचना पिरामिड की तरह होती है।

जैसे–जैसे विद्याशाखा संरचना विस्तृत होती जाती है वैसे–वैसे उपशाखाओं का विशेषीकरण होते जाता है। इसका अर्थ यही है की, कम से कम/छोटी से छोटी संकल्पना का ज्यादा से ज्यादा ज्ञान प्राप्त करना। यानी अध्यापक को विद्याशाखीय उपशाखाओं में अतिशय छोटी एवं जानकारी युक्त, सूक्ष्मता के साथ जाल सदृश्य ज्ञान प्राप्त होता है।

सीखने की प्रक्रिया सक्रिय रूप से की जाती है। छात्र/व्यक्ति अपने क्षमता के अनुरूप तथा वातावरण के साथ सक्रिय होकर अंतरक्रियाएं करते हैं। अपनी क्षमता एवं कार्यकक्षा में किसी नये विचारों को शामिल करते हैं। पाठ्यचर्या का स्रोत ज्ञान होता है तथा वह विषयवस्तु के चयन में सहायक होता है। पाठ्यक्रम को पाठ्यपुस्तक के ज्ञान से भी जोड़ा जाता है। विद्यालय में विषयों द्वारा की जानेवाली शिक्षा को ही पाठ्यक्रम कहलाता है।

शिक्षा प्रणाली में अध्यापकों द्वारा अध्यापक कार्य की कृति को पाठ्यक्रम का अमल करना होता है। इस प्रक्रिया में निर्धारित विषयों का अध्यापन ही पाठ्यक्रम होता है। पाठ्यक्रम की विचारधारा शिक्षा की मनोवृत्तियों, विचारधाराओं में परिवर्तन लाती है। शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित नहीं रह जाता।

बौद्धिक विचार, अनुभव और ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने की और चीजों को समझने की मानसिक प्रक्रिया है। ज्ञान और पाठ्यक्रम इसी कारण एक ही सिक्के के दो पहलू भी होते है। पाठ्यक्रम का निर्माण विभिन्न शिक्षा के विभिन्न प्रकृतियों द्वारा भी होता है। जिसमें समावेश होता है– (क) मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों, (ख) वैज्ञानिक प्रवृत्तियों द्वारा तथा (ग) समाजशास्त्री प्रवृत्तियों द्वारा पाठ्यक्रम का निर्माण होता है।

मानव समाज का प्रमुख आधार होता है, सामाजिक समूह। व्यक्ति अपने शैक्षिक, व्यावसायिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सभी प्रकार के विकास के कार्यों के साथ संबंध, व्यवहार आदि कार्यों में समूह की मदद लेता है। सामाजिक समूह से ही उसका व्यक्तित्व बनता, बिगड़ता है। इसलिए वह समूह से अपने आप को अलग नहीं कर सकता। समूह के बिना जीवन। व्यक्ति के लिए असंभव है तथा समूह के बिना व्यक्ति

का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। समाजीकरण की प्रक्रिया का दृढिकरण कर के व्यक्ति वस्तुनिष्ठता से व्यक्तिपरकता की ओर जाने की प्रक्रिया में स्थैर्य एवं एकात्मकता प्रस्थापित करता है।

टिप्पणी

व्यक्ति का संबंध जन्म से लेकर मृत्यु तक समाज से रहता है। जैसे सबसे पहले परिवार, मित्र, पड़ोसी, समाज, सामाजिक गोत्र, जातियां, उपजातियां, व्यवसाय प्रदेश/प्रांत, राष्ट्र एवं विश्व इन कड़ियों के जरिए संबंध बनाए रखता है। सामाजिक समूहों से वह बहुत कुछ सिखता है। खुद भी सिखाता है। यही आंतर्व्यक्तिपरक ज्ञान है।

निसर्गतः 'ज्ञान' एक जीव होने वाली यंत्रणा होती है। इस यंत्रणा के अलग–अलग भागों का कार्यात्मक वर्गीकरण करके उन्हें अलग–अलग विद्याशाखाओं के नाम दिये तो भी उनके मूलभूत एकत्व के विचार को छोड़ा नहीं जा सकता। तंत्रविज्ञान की भाषा में इतना ही कह सकते हैं, की "ज्ञान यह एक महाप्रणाली होकर विद्याशाखा यह उसकी प्रणालियां हैं, विद्याशाखांतर्गत उपशाखाएं ही उपप्रणालियां होती हैं।"

जन्म लेनेवाले हर बालक को शिक्षा मिलना यह उसका मूलभूत अधिकार होता है। जिसमें पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक तथा विश्व विद्यालयीन शिक्षा का समावेश होता है। छात्रों के जीवनकाल में विद्यालयीन शिक्षा का समावेश होता है। छात्रों के जीवनकाल में विद्यालयी शिक्षा का काल अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। माध्यमिक शिक्षा के दौरान अध्ययन किये गये विषयों के आधार पर ही उच्च माध्यमिक शिक्षा के विषयों एवं विषय शाखाओं का चुनाव निर्भर होता है।

2.8 मुख्य शब्दावली

- **व्यवस्थापन** : व्यवस्था करना।
- **समावेशन** : अधिकार या वश में करना।
- **उपयोजन** : उपभोग।
- **समन्वय** : संयोग या नियमित क्रम।
- **वैचित्र्य** : विलक्षण या असाधारण।
- **स्थैर्य** : स्थिरता।
- **संकल्पना** : धारणा।
- **अंतर्बोध** : मन का ज्ञान।
- **फ्रेमवर्क** : संरचना।
- **परिप्रेक्ष्य** : देखने अथवा सोचने की दृष्टि विशेष

2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. विद्यालयी विषयों में ज्ञान को किस प्रकार से संगठित किया जाता है? संक्षेप में बताइए।

2. ज्ञान निर्माण की विशेषताएं बताइए।
3. विद्यालयी शिक्षा द्वारा किए जाने वाले कार्यों का संक्षेप में विवेचन कीजिए।
4. लॉर्ड मैकाले द्वारा किए गए शिक्षा के वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. विद्यालयी विषय ज्ञान के क्षेत्र पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
2. ज्ञान निर्माण की दृष्टि से शैक्षिक यात्राओं का महत्व बताइए।
3. ज्ञान निर्माण की पद्धतियों का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019–2020 को विस्तार से विवेचित कीजिए।
5. टिप्पणी लिखिए–

   (क) सार्वभौमिक ज्ञान, (ख) स्थानीय ज्ञान, (ग) संस्कृतिबाध्य ज्ञान

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

- Deng. Z., (2003), *School Subjects and Academis Disciplines,* In A. Luke, A. Woods, & K. Weir (Eds) Curriculum, Syllabus design and equity: A Primer and model. Routledge.
- Goodson, I.F. & Marsh, C.J. (2005), *Studying School Subjects: A Guide,* Routledge.
- Hollis, Martin, (2000), *The Philosophy of ?Social Science: An Indroduction,* Cambridge University Press.
- Hudson, D. (1987), *Science Curriculum Change in Victorian England: A Case Study of the Science of Common Things,* In I. Goodson (Ed.), International Prespectives in curriculum history, Croom Helm.
- Kumar Krishna, (2004), *What is Worth Teaching?* (3rd edition), Orient Blackswan.
- Montuschi, E. (2003), *Objects of Social Science,* London: Continuum Press.
- Nagel, Ernest, (1979), *The Structure of Science: Problems in the Logic of Scientific Explanation,* Routledge, London.
- NCERT, (2005), *National Curriculum Framework,* NCERT, New Delhi.
- NCERT, (2005), *Position Paper on Curriculum, Syllabus and Textbooks,* NCXERT, New Delhi.